निराला-काव्य पर बंगला का प्रभाव

लेखक

इन्द्रनाथ चौधुरी एम० ए० (अंग्रेजी हिंदी)

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, हंसराज कॉलिज दिल्ली

भूमिका लेखक

डॉ० नगेन्द्र डी० लिट्०

अध्यक्ष हिन्दी विभाग

दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रकाशक

श्री भारत भारती प्राइवेट लिमिटिड

१ अनसारी रोड, नया दरियागज,

दिल्ली-६

प्रथम सस्करण—१९६४

मूल्य—पाच रुपये

मुद्रक
दि प्रिटसमन
नई दिल्ली

दो शब्द

निराला हिन्दी के युगप्रवर्तक क्रान्तदर्शी कलाकार हैं। जीवन के समान अपने साहित्य में भी वे अपूर्व दृढ़ता और आत्मविश्वास के साथ प्रकट होते हैं। निराला जी जन्म से बंगाली थे और कुल-परम्परा से उत्तरप्रदेशवासी। हिन्दी और बंगला के समृद्ध साहित्यों के साथ साथ संस्कृत तथा अंग्रेजी का भी उन्होंने गंभीर अध्ययन किया था। उनकी काव्य-कला में इस समन्वय का मौलिक एवं विकसित रूप मिलता है।

निराला की काव्य-कला का सम्यक् मूल्यांकन करने के लिये सामान्यतः बंगला साहित्य और विशेषतः विवेकानन्द एवं रवीन्द्रनाथ के साहित्य के प्रभाव का विश्लेषण उपयोगी है और श्री इन्द्रनाथ चौधुरी ने इस दिशा में प्रस्तुत प्रयत्न किया है। इन्द्रनाथ चौधुरी हमारे पूर्व छात्र एवं सहयोगी हैं। परिवार से बंगाली होते हुए भी उन्होंने अपनी शिक्षा हिन्दी के माध्यम से प्राप्त की है। हिन्दी एम० ए० में प्रवेश लेने से पूर्व दिल्ली विश्वविद्यालय से ही वे अंग्रेजी एम० ए० कर चुके थे। सन् १९६० में हिन्दी एम० ए० की परीक्षा में इनको प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान मिला था और इस वर्ष इन्होंने पी एच० डी० के लिये 'आधुनिक हिन्दी और बंगला काव्यशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन विषय पर शोध प्रबंध भी प्रस्तुत कर दिया है।

प्रस्तुत पुस्तक एम० ए० के विशिष्ट निबन्ध के रूप में लिखी गई थी। इसमें प्रभाव शब्द की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत कर उन सूत्रों का अनुसंधान किया गया है जिनका निराला के साहित्य में बंगीय सम्पर्क के फलस्वरूप सहज ही समावेश हो गया था। वस्तुतः प्रभाव-ग्रहण किसी प्रकार की हीनता का सूचक न होकर मौलिक समन्वय-क्षमता एवं व्यक्तित्व की उदारता का ही द्योतक है। जिस कवि का सर्जनात्मक व्यक्तित्व जितना व्यापक और महान होता है वह उतने ही व्यापक क्षेत्र से प्रभाव और प्रेरणा ग्रहण करता है। स्वयं रवीन्द्रनाथ इसका ज्वलन्त उदाहरण हैं। अपने पूर्वजों से जितना उन्होंने ग्रहण किया है उतना तुलसीदास को छोड़कर शायद ही किसी कवि ने किया हो। मैं श्री इन्द्रनाथ चौधुरी को उनकी इस प्रथम प्रकाशित रचना पर आशीर्वाद देता हूँ। मेरी कामना

है कि उनके अध्ययन के फलस्वरूप हिन्दी और बंगला साहित्यों में पारस्परिक सहयोग बढ़ता रहे और भारतीय साहित्य को अधिकाधिक समृद्धि प्राप्त होती रहे।

अध्यक्ष हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-६
दिनांक ११ ६ ६४

—नगेन्द्र

प्राक्कथन

पारिवारिक परम्परा से बंगाली तथा जन्म से हिन्दी भाषी होने के कारण मुझे शैशव काल में ही भारत की दो समृद्ध भाषाओं एवं साहित्यों की अर्चना का सौभाग्य समान रूप से मिलता रहा है। सर्वप्रथम मैंने अपनी माताजी से बंगला सीखी या पड़ोसियों से हिन्दी, यह प्रयत्न करने पर भी मैं स्मरण नहीं कर पाता। परन्तु जब पाठशाला के नियम के अनुसार मुझे अपनी शिक्षा के लिए हिन्दी और बंगाली में से एक को छोड़ देना पड़ा तो मैंने बंगला की अपनी शिक्षा पाठशाला से बाहर पूरी की। कालेज में आकर बी० ए० में बंगला, संस्कृत एवं अंग्रेजी साहित्य दिल्ली विश्वविद्यालय की परीक्षा के लिए मैंने पढ़े। प्रभाकर तथा साहित्यरत्न की परीक्षाओं ने मेरे हिन्दी प्रेम को प्रश्रय दिया। एम० ए० में फिर हिन्दी विषय लेकर मैंने अपने अध्ययन में सामरस्य स्थापित करने का प्रयास किया है।

इस प्रकार अंग्रेजी, संस्कृत तथा बंगला का पाथेय लेकर जब मैं हंसराज कालेज में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष (अब रीडर, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय) डॉ० ओमप्रकाश जी के सम्पर्क में आया तो उनकी शान्त, गम्भीर एवं उदार दृष्टि ने मेरे साहित्य-जीवन का पथ सदा के लिए निश्चित कर दिया। मुझको लगा कि चार चार साहित्यों का प्रसाद लेकर मैं दीन नहीं रह सकता मेरा जीवन राष्ट्रभाषा की रचनात्मक सेवा के लिए ही अर्पित होना चाहिए। अंग्रेजी की एक कहावत है कि शैशव की कामनाएं यौवन में पूरी होती हैं, क्या प्रत्येक जीवन का यही सत्य है?

एम० ए० हिन्दी-परीक्षा के लिए एक निबन्ध लिखने की अनुमति मैंने पूज्य डॉ० नगेन्द्र जी से मांगी। डाक्टर साहब ने सहर्ष अनुमति देते हुए मुझे निराला जी पर कार्य करने का सुझाव दिया। यही प्रस्तुत निबन्ध की जीवन-गाथा है।

प्रस्तुत निबन्ध में निराला जी के काव्य पर बंगीय प्रभाव का विश्लेषणात्मक एवं आलोचनात्मक सूत्रों को प्रदर्शित करते हुए, ऐतिहासिक तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन किया गया है। इसमें विषय प्रवेश के अतिरिक्त

पाच अध्याय है। विषय प्रवश म प्रभाव' पर तात्विक विवचन किया गया है। प्रथम अध्याय म निराला क कृतित्व और व्यक्तित्व पर विवचन है। दूसर अध्याय म निराला के प्रतिपाद्य पर बगला प्रभाव की मीमासा की गई है। तीसरे म निराला क कला पक्ष पर और चतुथ म निराला के गीत पर बगीय प्रभाव की समीक्षा है। पाचवा अध्याय उपसहार है। तदनन्तर चार परिशिष्ट हैं। प्रथम म निराला द्वारा अनूदित बगला कविताओ का विश्लेषण है। दूसरे और तीसरे म निराला द्वारा लिखित बगला कविता और निराला की हिन्दी-कविताओ के बगला अनुवाद का सक्षिप्त विवचन है। चतुथ परिशिष्ट म निराला की कतिपय परोडियो पर विचार किया गया है। अन्त म हिन्दी बगला सस्कृत, अग्रेजी की उन पुस्तकों की सूची है जिनकी इस निबन्ध क लिखने म सहायता ली गई है। इस प्रकार २०० पृष्ठ के इस निबन्ध में मैंने कविवर निराला पर बगीय प्रभाव का सामा य विवेचन प्रस्तुत किया है, मेरी विशष दृष्टि कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रभाव क विश्लषण म तत्पर रही है। मुझे विश्वास है कि मेरा यह विनम्र प्रयास कविवर निराला क अध्ययन म सहायक होन क साथ साथ उत्तरभारत क दो समृद्ध साहित्यो को निकटतर लाने म भी सफल हो सकगा।

इस निबन्ध को लिखते हुए मुझे अपन निरीक्षक डा० ओमप्रकाश जी स विशेष सहायता प्राप्त हुई जिसके लिए मैं उनक प्रति सवदा क लिय आभारी हू। दिल्ली विश्वविद्यालय मे हिन्दी विभाग की रीडर श्रद्धेया डा० (श्रीमती) सावित्री सिन्हा जी स इस निबन्ध की रूपरेखा एव पाण्डुलिपि क लिय समय समय पर मुझे अमूल्य सहायता मिली है। मैं उनक प्रति हृदय स कृतज्ञ हू। गुरुवय पूज्य डॉ० नगन्द्र जी की कृपा से ही मरा आधुनिक का य म इतना अनुराग हुआ और विषय निर्वाचन से लकर इस निब ध की पूर्णता तक उनम अनेक प्रोत्साहन मुझे मिलता रहा है। व हिन्दी विभाग की सृष्टि म व्याप्त अन्तरात्मा हैं। यदि मैं जीवन म उनका योग्य शिष्य सिद्ध हो सका तो अपन को धन्य समझूगा।

निराला जयन्ती स० २०२०। —इन्द्रनाथ चौधुरी

विषय-सूची

बंगला मेरी वैसी ही मातृभाषा है जैसी हिन्दी

—निराला

विषय-प्रवेश

वर्तमान निबंध का आलोच्य विषय है, 'निराला के काव्य पर बंगला का प्रभाव'। सशक्त कवि या लेखक के अनुकरणकारियों का किसी भी साहित्य में अभाव नहीं होता। वैसे तो क्षमताहीन अनुकरणकारी कवि या लेखक अनुकरण के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर पाते परन्तु जिन लोगों में क्षमता है उनमें अनुकरण में कभी भी निज वैशिष्ट्य का लोप नहीं होता। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य' में बिहारी के सम्बन्ध में लिखते हुए कहते हैं कि दूसरे कवियों के विचारों को प्रेरणारूप में आत्मसात कर उनकी सहायता से कुछ नई बात कहना अच्छे कवियों का काम है जिस प्रकार बिहारी ने पुराने कवियों के भाव का ग्रहण किया था उसे सँवारा था, उसे अपना बना लिया था।[1] यह 'अपना बनाने' की प्रक्रिया ही वास्तविक भाव प्रभाव की प्रक्रिया है। आधुनिक युग के साहित्य से एक दृष्टान्त लें तो हम कह सकते हैं कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने एक निबन्ध में 'निर्वाक्-कुण्ठिता नित्य-संचारिणी उपेक्षिता ऊर्मिला' का वर्णन कर काव्य रसिकों का ध्यान उस ओर आकृष्ट किया और मैथिलीशरण गुप्त ने उपेक्षिता ऊर्मिला के इस भाव से प्रभावित होकर अपना अमर महाकाव्य 'साकेत' हिन्दी को प्रदान किया। इस भाव प्रभाव में कहीं भी मौलिकता का अभाव नहीं दिखाई पड़ता। वास्तव में जीवन के सम्पूर्ण अंगों का जो वरण करना चाहता है, दूसरे के प्रभाव से वह बच नहीं सकता। निराला जी ने स्वयं लिखा है—

> दूसरे के भाव लेकर प्रायः सब कवियों ने कविताएँ लिखी हैं परन्तु वहाँ हर एक कवि ने दूसरे के भाव पर विजय प्राप्त करने की, उससे बढ़कर अपना कोई विशेष चमत्कार दिखलाने की चेष्टा की है।[2]

रवीन्द्रनाथ के विषय में लिखते हुए प्रमथनाथ बिशी ने भी यही बात कही है 'प्रभाव साहित्य का केवल उपादान है व्यापार में जैसे मूल धन। दूसरों के मूल धन पर रवीन्द्र ने बहुत मुनाफा कमाया है, इसीलिये उन्हें ऋणी होकर रहना

---

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी-साहित्य, पृ० ३४

२ निराला पंत और पल्लव

नहीं पड़ा।'

प्रभाव का मुख्य स्रोत

निराला जी के विषय में भी बिल्कुल यही बात कही जा सकती है। रवीन्द्र जहाँ कालिदास, वैष्णव कवि चण्डीदास, विद्यापति, बिहारीलाल[2] तथा शैली, कीट्स आदि से प्रभावित हुए थे वहाँ निराला मुख्यतया रवीन्द्रनाथ तथा सामान्यतया विवेकानन्द और अन्य बंगाली कवियों के काव्य तथा विचारधारा से प्रभावित हुए। इस सम्बन्ध में निराला के आलोचकों का मत उद्धृत किया जा सकता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कहना है—

'निराला जी पर बंग भाषा की काव्य शैली का प्रभाव समास में गुम्फित पद वल्लरी, क्रियापद के लोप आदि में स्पष्ट झलकता है।'[3]

डा० रामविलास शर्मा का कहना है—

कलकत्ते की भाव्य नौटंकी संस्कृति के इलावा युवावस्था में उनका सम्पर्क बंगाल की दो महान सांस्कृतिक धाराओं से हुआ। एक तो श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के नेतृत्व में बंगाल के नवीन सांस्कृतिक जागरण से और दूसरा स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित श्री रामकृष्ण मिशन से। इन दोनों का उन पर स्थायी प्रभाव पड़ा है। और इसमें सन्देह नहीं कि अपने साहित्यिक जीवन के आरम्भ काल में उन्हें पहले इन्हीं से प्रेरणा मिली।[4]

गिरीशचन्द्र तिवारी भी निराला की शिक्षा दीक्षा के सम्बन्ध में लिखते हुए बंगीय प्रभाव का उल्लेख करते हैं—

बंगला में उस समय रवीन्द्र युग का प्रारम्भ था। सर्वत्र उनके साहित्य की ख्याति छा रही थी। फिर हिन्दी की चर्चा कौन करता। बंगाल की सभी पाठशालाओं में बंगला की ही प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती थी। पिताजी ने इन्हें पाँच वर्ष की अवस्था में ही पढ़ने के लिए पाठशाला भेज दिया। कुछ ही वर्षों के उपरान्त इनका प्रेम बंगला भाषा की ओर बढ़ा। बंगाल सर्वदा से अत्यन्त भावुक प्रान्त रहा है और बंगला भाषा भावुकता की प्रतिमूर्ति। भाषा की ही प्रशंसा करते हुए बंकिमचन्द्र ने कहा है—

बंगभार वधू मुख तार मधु

फिर बालक सूर्यकान्त को कितनी भावुकता बंगला और बंगालियों से मिला

1 प्रमथनाथ बिशी रवीन्द्र काव्य प्रवाह, द्वितीय खण्ड
2 बंगला कवि
3 रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी-साहित्य का इतिहास
4 रामविलास शर्मा निराला पृष्ठ ८७

इसकी साक्षी तो उनकी कृतियाँ ही हैं।'[१]

डॉ० रामरतन भटनागर भी इसी बात की पुष्टि करते हैं—

'इन दोनों बंगला-कवियों (रवीन्द्रनाथ तथा विवेकानन्द) का प्रभाव निराला के काव्य में बराबर बना रहा, परन्तु निराला ने उस प्रभाव को आत्मसात कर लिया। ऐसे स्थल बहुत कम मिलेंगे जहाँ उनके भाव उपर्युक्त कवियों की प्रतिध्वनि मात्र हैं। 'राम की शक्ति पूजा' (१९३६) पर माइकेल मधुसूदन के मेघनाद-वध का प्रभाव भी लक्षित है। अतः स्पष्ट है कि आधुनिक हिन्दी-काव्य में जो 'छायावाद' के नाम से प्रसिद्ध है उस पर सीधे तौर से बंगला-काव्य का प्रभाव निराला की रचना द्वारा आया। परन्तु निराला के व्यक्तित्व की सजीवता और मौलिकता ने इस प्रभाव को कहीं भी आगे नहीं बढ़ने दिया। स्वयं उनके काव्य में जो रहस्यवादिता है वह निरुद्देश्य यात्रा जैसी रोमांटिक कविताओं और गीतांजलि जैसी रहस्यवादी कविताओं की रहस्यवादिता से भिन्न एवं नये प्रकार की वस्तु है। फिर भी मूल स्रोतों की एकदम उपेक्षा नहीं की जा सकती।'[२]

बंगाल के अन्य कवियों के प्रभाव के सम्बन्ध में लिखते हुए डा० रामरतन भटनागर अन्य एक स्थान पर कहते हैं—

'बंगला के रवीन्द्रनाथ, अतुलप्रसाद सेन और काजी नजरुल इस्लाम के गान जिस श्रेणी के हैं, उसी श्रेणी की चीजें निराला ने हिन्दी में दी हैं।'[३]

इसी प्रकार बंगला के दूसरे कवियों के प्रभाव के सम्बन्ध में लिखते हुए डा० बच्चनसिंह कहते हैं—

'प्रारम्भिक काल में बंगला के श्रेष्ठ कलाकार—रविबाबू, चंडीदास, विवेकानन्द और वैष्णव कवियों का प्रभाव भी उन पर था।'[४]

वैष्णव कवियों के प्रभाव के सम्बन्ध में डा० राम विलास शर्मा ने भी अपना मत प्रकट किया है। उनका कहना है—

निराला ने अपने निबन्ध 'चण्डीदास' (१९२०) में—वैष्णव कवियों पर रविबाबू ने जो कविता लिखी है—उसका वर्णन किया है। उसमें उनकी भक्ति के इस मानवीय रूप की ओर उन्होंने संकेत किया है। जिन कवियों ने राधा और कृष्ण की तन्मयता का ऐसा प्रभावशाली वर्णन किया था, उन्होंने अवश्य ही अपने जीवन में उस तन्मयता का अनुभव किया होगा। रविबाबू ने इन पर लेख

१ गिरीशचन्द्र तिवारी कवि निराला और उनका काव्य-ग्रन्थ

२ रामरतन भटनागर कवि निराला—एक अध्ययन, पृष्ठ ७३

३ वही पृष्ठ २३०

४ बच्चनसिंह क्रान्तिकारी कवि निराला, पृष्ठ ५

और कविताएँ ही नहीं लिखीं वरन् उनकी शैली के अनुकरण पर 'भानुसिंह पदावली' की रचना कर डाली थी। बंगला की रोमांटिक कविता का एक स्रोत यह वैष्णव कवि भी थे। हिन्दी के नए कवि जो बंगला भी जानते थे, अनिवार्य रूप से इन कवियों की ओर आकृष्ट हुए। निराला जी ने वैष्णव कवियों की शृंगार साधना पर आगे चलकर लेख भी लिखे और गोविन्ददास के गीतों का हिन्दी में अनुवाद भी किया। उन्होंने रोमांटिक कवि की तन्मयता को अपना आदर्श बनाया है।"[1]

शांतिरंजन बंद्योपाध्याय भी निराला पर बंगीय प्रभाव का उल्लेख करते हुए कहते हैं—

'छायावादी युग तथा हिन्दी-काव्य-साहित्य के सबसे अधिक शक्तिशाली कवि निराला हैं। बंगाल देश (महिषादल) में इनका जन्म हुआ था। बंगाल में ही पले हैं और बंगला-साहित्य के प्रभाव से सविशेष प्रभावान्वित हैं। यथा—

गन्ध व्याकुल-कूल उर सर
लहर कच कर कमल मुख पर
हृय अलि स्वर स्पर्श शर सर
गूँज बारबार। (रे कह)
निशा प्रिय उर शयन सुख धन
सार या कि असार? (रे कह)

इस प्रकार की छन्दभंगी हिन्दी-कविता में पहले नहीं थी। इस विषय में निराला निःसन्देह रवीन्द्रनाथ के ऋणी हैं।'[2]

---

1 रामविलास शर्मा: निराला, पृ० ६६

2 छायावादेर युगेर तथा आधुनिक हिन्दी काव्य साहित्येर सब चेये शक्तिशाली कवि निराला। बांगला देश (महिषादल) ए जन्म। बांगला देशे मानुष। बांगला साहित्येर प्रभावे प्रभावान्वित सविशेष। यथा:

गन्ध व्याकुल कूल उर सर
लहर कच कर कमल मुख पर
हृय अलि स्वर स्पर्श शर सर
गुञ्ज बारबार। (रे कह)
निशा प्रिय उर शयन-सुख धन
सार या कि असार? (रे कह)

ए—धरणेर छन्दभंगी हिन्दी कवितार आगे छिल ना। ए—व्यापारे निराला निःसन्देह रवीन्द्रनाथेर काछे ऋणी—आधुनिक भारतीय साहित्य, पृष्ठ ८७

परन्तु उपर्युक्त आलोचकों के मतों के विरुद्ध प्रभाव की बात को न मानते हुए आलोचक 'मानव' कहते हैं—

"गम्भीर अध्ययन के अभाव में हिन्दी के कुछ मुँहफाड़ लेखक रहस्यवादी रचनाकारों को रवीन्द्र से प्रभावित कह डालने में तनिक भी लज्जा का अनुभव नहीं करते। मेरी सम्मति में ऐसे बकवादी न तो रहस्यवाद का यथार्थ तात्पर्य समझते हैं, न रहस्यवाद की ऐतिहासिक परम्परा का अभिज्ञान ही उन्हें है और न ही वे रवीन्द्रनाथ और निराला को ही भली भाँति समझते हैं।"[1]

परन्तु क्या 'मानव' हम निराला के शब्दों पर भी अविश्वास करने को कहेंगे? निराला ने स्पष्ट लिखा है—

'मैं यहाँ अवश्य बँगला का विरोध नहीं कर रहा, उसके आधुनिक अमर साहित्य का मुझ पर काफ़ी प्रभाव है।'[2]

वास्तव में 'मानव' 'प्रभाव' का अर्थ नहीं समझ पाये।

प्रभाव किसे कहते हैं?

'प्रभाव' शब्द की व्युत्पत्ति में परवर्ती रचना पर पूर्ववर्ती रचना के प्रभुत्व की द्योतना स्पष्ट है। किन्तु परवर्ती रचना का पूर्वगामी के प्राण रस से पुष्ट होना ही आवश्यक है—अभी कोई बात साहित्य के क्षेत्र में कही नहीं गई है। डॉ० धूर्जटीप्रसाद गुप्त का कहना है 'पारिभाषिक में सहयोग से वृद्धि को लोग प्रभाव कहते हैं।'[3] डॉ० विमल कान्ति समद्दार इसको और स्पष्ट कर देते हैं। उनका कहना है कि प्रभाव सामान्यतः दो प्रकार का होता है। एक तो दुर्बल अक्षम अनुकरण जो साहित्य का आलोच्य विषय नहीं बन सकता है परन्तु एक दूसरे प्रकार का प्रभाव है जिसकी गणना—प्रबल यद्यपि सूक्ष्म होने के कारण ही—प्रभाव रूप में की जा सकती है जो परवर्ती लेखक के बीच अपने भाव तथा पारिभाषिकता का परिमण्डल इस प्रकार सञ्चारित करता है कि उसके नूतन आश्रय से उसको और स्वतन्त्र रूप में देखा नहीं जा सकता है। ऐसे लेखक अपनी प्रतिभा के बल से उसे अपना बना लेते हैं। परवर्ती लेखक की रचना की जहाँ अवश्य ही मौलिकता का प्राप्य सम्मान सहृदय पाठक स्वयं ही प्रदान करते हैं। इस प्रकार के प्रभाव न अप्रत्यक्ष रूप में तथा प्रत्यक्ष भाव में परवर्ती साहित्य को श्रीसम्पन्न

---

1 'निराला काव्य की दिशाएँ' पुस्तक में उद्धृत

2 'परिमल' की भूमिका, पृ० ७

3 प्रतिदर्श महर्षि ग्रन्थ के लेख 'प्रभाव क्या है' वक्तव्य, पृ० ६८

किया है। इन सभी ेत्रा म माहित्य प्रभाव अनुराग जात है।[1]

वास्तव म ग्म प्रकार के अनुरागजनित प्रभाव की ही गणना साहित्य म हाती है और प्रत्येक साहित्य म इस प्रकार का प्रभाव दृष्टिगोचर है तथा प्रत्यक ेश के आलोचक इस प्रकार के प्रभाव का नियमानुकूल मानत है। सस्कृत के कवि कह गय ह—

कविरनुहरतिच्छायामथ कुकवि पदानि्क चौर ।
सवप्रबन्धहर्त्रे साहसकर्त्रे नमस्तस्म ॥

अर्थात दूसरा की छाया मात्र का लेन वाला कवि कहलाता है भाव का अपहरण करने वाला कुकवि कहलाता है जा भाव के साथ ान्दावली का भी अपहरण करता है वह चोर कहलाता है और जो पद, वाक्य और ग्रथ समेत सारे काव्य का अपहरण करता है उस साहस करने वाल का दूर स ही नमस्कार है। मस्कृत के आचाय आनन्दवधनाचाय न ्वन्य आलोक क चतुथ उद्योत म और राजशेखर ने काव्यमीमामा के १२ व १३ वें अध्याया म इस सबध म विवचन किया है। आनन्दवधनाचाय कहते है—

यदपि तदपि रम्य यत्र लोकस्य किञ्चित
स्फुरितमिदमितीय बुद्धिरभ्युज्जिहीते ।
अनुगतमपि पूवच्छायया वस्तु ताहक
सुकविरुपनिबध्नन निन्द्यता नोपयाति ॥

(ध्वन्या० ४।१६)

अर्थात जिस कविता म सहृदय भावक का यह सूझ पडे कि हाँ इसम कुछ नूतन चमत्कार है फिर उसम पूवकवि का छाया ही क्या न झलकती हा तो भी कोई हानि नही। ऐसा कविता क निर्माता सुकवि अपनी बधच्छाया' स पुराने भाव को नूतन रूप देन क कारण निन्दनीय नही समझे जा सकते। यही प्रभाव' का वास्तविक रूप है।

---

१ प्रवत अथच मूलत सूक्ष्म बलियाइ मने नानाय प्रभाव क गणना कर यान्त पार याहा परवर्ती लसक अन्य आपनभाव आ पारिपार्श्विकतार परिमरन्न एमनमावे सचारित करे ये ताहार नूतन आश्रय इन्न उनाक आर स्वतंत्र करिया देखा चल ना एरणी लेखक उन्हाके आपनार प्रतिभा बले आपनार करिया तोलेन। अवाचान रचना के मखाने अवश्य मालिकतार, प्राप्य सम्मान सहृदय पाठक स्वन्न प्रदान करिया थाकेन। एइ श्रेणीर प्रभाव सवत्र आ भवकाल परवर्ती साहित्य के अमिभूत करिया छ। एइ सकल चेत्र साहित्य प्रभाव अनुरागनान रवीन्द्र काव्य पाश्चिमेर प्रभाव

२ कवि हृदय पृ० ७६

डा० गुलाबराय का कहना है कि अच्छा कवि यदि छाया भी ग्रहण करता है तो उसमें एक नवीन जीवन भर देता है। वह अपने पूर्ववर्ती कवि की कृतियों में नया चमत्कार उत्पन्न कर देता है।[1] इस प्रकार हम देखते हैं कि 'मानव' अपने तर्क में मौलिकता के प्रश्न के आवेग में फँसकर 'प्रभाव' के वास्तविक अर्थ को नहीं समझ सके। डा० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय मानव के तर्कों का उत्तर देते हुए एक अंग्रेजी आलोचक का मत उद्धृत करते[2] कहते हैं—

उधार लेना और बात है प्रभावित होना और बात। निराला का काव्य रवीन्द्र की कला का अनुकरण नहीं है पर यह भी ठीक है कि निराला ने प्रेरणा के लिए रवीन्द्र की ओर देखा है उसी पद्धति को अपनाया है।[3] और इसमें दोष भी नहीं है और यह बहुत स्वाभाविक भी है। जैसाकि हम पहले कह चुके हैं कि जो जीवन के सम्पूर्ण अंगों का वरण करना चाहता है वह दूसरे के प्रभाव से बच नहीं सकता। रवर्ट लिन्ड तो प्रभाव को ही आधुनिक काव्य की कसौटी बताते हैं—

What is most important in modern poetry is not that which distinguishes it from the poetry of yesterday but that which makes it in its degree one with the poetry of Homer and Sappho, of Shakespeare[4]

इस सम्बन्ध में विलियम कुलन ब्रायंट की उक्ति बहुत ही ठीक है—

The art of poetry is not perfected in a day It is brought to excellence by slow degrees, from the first rude and imperfect attempts of versification to the finished productions of its greatest masters The gorgeousness of poetic imagery the curious felicities of poetic language the music of poetic numbers the spell of words that act like magic on the heart, are not created by one poet in any language in any country An innumerable multitude of sentiments of illustrations, of impassioned forms of expression of harmonious combinations of words both fixed in books and floating in coversation must

---

१ गुलाबराय सिद्धान्त और अध्ययन, पृ० ६१

२ Borrowal is one thing and influence is quite another thing

३ विश्वम्भरनाथ उपाध्याय निराला—काव्य कला और कृतियाँ

४ On poetry and the modern men

previously exist either in the vernacular language of the poet or in some other which he has studied and whose beauties and riches he seeks to transport into his own before he can produce any work which is destined to live [1]

टी० एस० इलियट भी बिल्कुल यही बात कहते हैं—

No poet no artist of any art has his complete meaning alone His significance, his appreciation is the appreciation of his relation to the dead poets and artists [2]

मौलिकता

परन्तु प्रभाव के भय म यह हम कभी नही कहना चाहेंगे कि निराला म मौलिकता नही है। निराला न जो कुछ ग्रहण किया है अपनी प्रतिभा के बल स उस अपनी सपदा बना लिया है और यही अच्छे कवियो का काम होता है। प्रभाव तो मनुष्य पर तब तक पडेगा, जब तक उसम जीवन है। जहाँ जीवन का वग अधिक है प्राण धारा का बहाव तज है उसी स्थान से उसका ऐश्वय छितराएगा ही। आलोक सीमा म बधना नही चाहता। उसका धम ही प्रकाशित होना और प्रकाशित करना है।[3] इस 'प्रभाव' के अतिरिक्त सम्पूर्ण मौलिक भावो को लकर भी निराला जी न काव्य का प्रणयन किया है क्योकि कवि का पूववर्ती कलाकारो म कितना भी सम्बन्ध क्या न हो कोइ कवि किसी विचार को सागोपाग नही उतार लेता है। जसाकि गुलाबराय का कहना है—

विचार के भी कई पहलू होते ह। जो पहलू जिसको अपील करता है वह उसको अपने विवचन का विषय बनाता है और उसम नवीनता पदा कर देता है।[4]

निराला जी म भी इस प्रकार की नवीनता के अनेक निदशन प्राप्त हो जात है परन्तु मौलिकता हमारा आलोच्य विषय नही है अत मौलिकता के प्रश्न मे हम बचन की ही चेष्टा करेंगे। यद्यपि हमारे लिए प्रभाव का विषय[5] मौलिकता सापेक्ष है क्योकि इस प्रकार के प्रभाव का दृष्टान्त ससार के प्रत्येक साहित्य म प्राप्त होता है तथा ससार के विख्यात आलोचकगण इसको मौलिक साहित्य मानत हैं जसाकि उपयुक्त प्रभाव क्या है के अतगत विचारो स स्पष्ट हो

१ On originality and imitation American Criticism
२ Tradition and the individual talent Selected Essays
३ हजारीप्रसाद द्विवेदी साहित्य का मम पृ० ५०
४ सिद्धान्त और अध्ययन पृष्ठ ६७
५ विस्तृत आलोचना 'प्रभाव क्या है' के अ तगत की गई है।

जाता है। जिसे हम मौलिक कहते हैं उसमें प्राचीन परम्परा प्राप्त चिन्तन का योगदान रहता है। एक विद्वान का कहना है कि सामाजिक मंगल के अनुकूल परम्परा प्राप्त चिन्तन और विचारधारा से परिष्कृत तथा नवीन परिस्थिति पर विजय की आकांक्षा से समृद्ध व्यक्तित्व का रसमय और ग्राह्य बनाकर अभिव्यक्ति करने में भी साहित्यिक मौलिकता या साहित्यिकता हो सकती है। इस प्रकार मौलिक उस साहित्य को कहा जाएगा जहां कवि प्राचीन विचार धारा का ग्रहण कर उसका नवीकरण करता है। अतः हमारी दृष्टि में प्रभाव मौलिकता सापेक्ष है। आलोच्य निबन्ध की आलोचना इन्हीं विचारों के आधार पर की जायगी।

प्रभाव की उपयोगिता

विषय के अन्तर्गत प्रभाव की उपयोगिता पर भी विचार कर लेना होगा। प्रश्न है कि आलोच्य निबन्ध की उपयोगिता क्या है। इसके उत्तर में हम कह सकते हैं कि प्राचीन साहित्य की तुलना में आधुनिक साहित्य विशेष रूप से बहु प्रधान है। अतएव काव्य जिज्ञासा के साथ ही कवि की मानसिक स्थिति की जिज्ञासा का महत्व अति निविड है और मानसिक स्थिति के प्रश्न का हल करने के लिए कवि के जीवन पर बाह्य परिस्थितियों का प्रभाव तथा अन्य कवियों के काव्य का प्रभाव अथवा तुलनात्मक भाव-साम्य का निरूपण आवश्यक है। भाव साम्य तथा विचार-साम्य एक सार्वभौमिक सत्य है जैसाकि निराला स्वयं कहते हैं—

सभ्यता के आदिकाल से लेकर आज तक जितनी बड़ी-बड़ी बातें साहित्य के पृष्ठों में लिखी हुई मिलती हैं, उनके बाह्य रूपों में साम्य न रहने पर भी वे एक ही सत्य का प्रकाश देती हैं। आज तक मानवीय सभ्यता जहां-कहीं एक दूसरी सभ्यता से टकराकर बनी आई है वहां उनके बाह्य रूपों में ही वैषम्य रहा है, वेश भूषणों, आचार व्यवहारों तथा उच्चारण और भाषाओं का ही बहिरंग भेद रहा है। उन सभ्यताओं के विकसित रूप देखिए तो एक ही सत्य का अटल अपार महिमा वहाँ मिलती है।[1]

इस प्रकार 'प्रभाव' की आलोचना द्वारा विचार-साम्य जैसे एक चिरन्तन तथ्य पर प्रकाश पड़ता है। इसके अतिरिक्त, सहृदय पाठक किसी काव्य के अध्ययन के समय उसमें निर्दिष्ट किसी विशेष भाव या वाक्भंगियों का कोई प्रकाश्य अथवा प्रच्छन्न अभिव्यक्ति को, किसी दूसरे कवि के काव्य में साम्य देखता है तो वह एक नूतन आनन्द में पुलकित हो उठता है। निराला की सन्ध्या सुन्दरी को ही ले लीजिए—

---

[1] मुसलमान तथा हिन्दू कवियों के विचार-साम्य, प्रबन्ध-पद्म

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या सुन्दरी परी सी
धीरे—धीरे—धीरे

उक्त पंक्तियां रसिक पाठकों के मन में रस-संचार करने में समर्थ हैं। किन्तु कविता-पाठ के समय जिनको निम्न पंक्तियां और स्मरण हो आएंगी—

नामे सन्ध्या तन्द्रालसा, सोनार आंचल खसा
हाते दीपशिखा।

वे कुछ अधिक रसाप्लुत होंगे इसमें सन्देह नहीं। कारण, इसके पीछे हटल की मनोवैज्ञानिक थियोरी आफ एसोसियेशन का योगदान रहेगा। हटल के अनुसार यदि किसी वस्तु के साथ हम अपने किसी पूर्व स्मरण का सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं तो हम अधिक आनन्द प्राप्त होता है। कवि, जो दूसरे कवि के काव्य का नवायन सम्भव कर सका है, इस बात को कविता पाठ करते हुए हृदयंगम कर सहृदय मात्र, जिनको दोनों भाषाओं का ही ज्ञान है एक विशेष प्रकार के आनन्द से उल्लसित हो उठता है। यह एक प्रकार का अभिनव रस परिवेषण है। इस अभिनव रस के सम्बन्ध में लिखते हुए डा० विमलकान्ति समद्दर कहते हैं कि जिस प्रकार नितान्त परिचित प्रियतम को सदा नए नूतन वेश में देखने की चेष्टा वैष्णव कवियों ने की है—कभी दानी रूप में कभी योगी वेश में तो कभी नाविक रूप में—वैसे ही यह भी एक प्रकार का नवीन रसास्वादन प्रयास है।[१]

निबन्ध की रूप रेखा

रवीन्द्रनाथ अपनी 'जीवन स्मृति' की रचना कर जिन प्रभाव उपादानों की सहायता से उनका जीवन गठित हुआ है उनको स्पष्ट कर गए हैं। परन्तु निराला जी ने ऐसी कोई जीवन स्मृति की रचना नहीं की इसीलिए प्रभाव की रेखाएं हमारे लिए अस्पष्ट सी हैं। प्रभाव की रेखाएं उनके काव्य में ही केवल हम खिंची मिल सकती हैं और वहीं से उनका चयन हम करना पड़ेगा।

प्रस्तुत निबन्ध की सामग्री 'विषय प्रवेश' को छोड़कर पाँच प्रकरणों में विभक्त की गई है—

१—व्यक्तित्व और कृतित्व।

---

१ प्राणेर एकान्त परिचित प्रियतम के नव नव वेशे वैष्णव कविगण ये देखिबार चेष्टा करियाछेन—कखनो दान वेशे कखनो योगीवेशे, कखनो नाविक वेशे ए येमनइ एक प्रकार नवीन रसास्वादन प्रयास रवीन्द्रकाव्ये कालिदासेर प्रभाव

२—निराला के प्रतिपाद्य पर बंगला-प्रभाव।

३—निराला के कला-पक्ष पर बंगला प्रभाव।

४—निराला के गीत पर बंगला प्रभाव।

५—उपसंहार।

इसके अतिरिक्त निबन्ध की परिधि के साथ एक परिशिष्ट भी जोड़ दिया गया है जिसमें निम्नलिखित पर विवेचन है—

१—निराला द्वारा अनूदित बंगला-कविताएँ।

२—निराला की कविताओं का बंगला अनुवाद।

३—निराला द्वारा लिखित एक बंगला-कविता।

४—निराला द्वारा बंगला-कविताओं पर लिखी गई पैरोडी।

प्रभाव का माध्यम है—व्यक्ति। एक व्यक्ति किन परिस्थितियों में और किस प्रकार किसी विशेष साहित्य से कैसे प्रभावित हुआ यह उसके व्यक्तित्व तथा कृतित्व के ऐतिहासिक तथा मनोवैज्ञानिक अध्ययन से पता लग जाता है। इसीलिए प्रथम अध्याय में निराला के व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर ऐतिहासिक तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन किया गया है। इस प्रकार इस अध्याय के अन्तर्गत तीन विभिन्न विषयों पर हमने विचार किया है—

१—वंश परिवार तथा व्यक्ति

२—कृतित्व

३—पारिपार्श्विक परिस्थितियाँ तथा युगीन विचार धाराएँ

दूसरे अध्याय में निराला के प्रतिपाद्य अर्थात् उनके विचार-तत्त्व पर बंगला प्रभाव का विवेचन किया गया है। इसमें मुख्यतया रवीन्द्र की दार्शनिक मान्यताओं का निराला पर प्रभाव प्रदर्शित कर निराला के दार्शनिक विचारों की मीमांसा की गई है। चूँकि ये विचार केवलमात्र अनुकरण नहीं हैं इसीलिए अनुभूतिजन्य प्रभाव-सूत्रों पर विवेचन करते हुए रवीन्द्र के दार्शनिक विचारों के प्रभाव विस्तार का अध्ययन निराला के निम्न प्रिय विषयों के आधार पर किया गया है—

१—विराट चित्र

२—प्रकृति

३—नारी प्रेम

४—मानवतावाद

५—भक्ति

परवर्ती काल में आकर निराला की अनुभूतियों पर संसार के दुःखदैन्य का कठोर आघात पहुँचने पर उनके विचारों का स्वरूप ही बदल जाता है और वह

निम्न दो रूपों में उनके काव्य में प्रकट होता है—

१—सामाजिक विद्रोह

२— यथ्य

इन दो विचारों पर बगला प्रभाव का भी विवेचन किया गया है। इसके उपरान्त, रवीन्द्र की विषय वस्तु के अनुरूप जो निराला की विषय वस्तु है उस पर आलोचना भी प्रस्तुत की गई है। जो सख्या में ६ है—

१—पुरातन वैभव का स्मरण

२—संस्कृति

३—स्वदेश प्रेम

४—मृत्यु

५—महापुरुषों की प्रशस्ति

६—कविता सम्बन्धी

यहाँ तक विचार पक्ष अर्थात बुद्धितत्व पर विवेचन होता है। बुद्धितत्व के उपरान्त निराला की कल्पनाजात भाव भूमियों पर बगीय प्रभाव की आलोचना प्रस्तुत की गई है। कविता में विचार भाव का आधार ग्रहण कर उपस्थित होता है और भाव का उन्मेष कल्पना की सहायता से होता है। इसीलिए बुद्धितत्व के साथ ही काल्पनिक भावनाओं का भी विवेचन आवश्यक है। विचार पक्ष भाव पक्ष के अन्तर्गत है क्योंकि भावपक्ष के दो रूप होते हैं बौद्धिक तथा भावमय अथवा काल्पनिक। बुद्धितत्व में सत्य और शिव की रक्षा होती है और कल्पना अथवा भावतत्व से सुन्दर का निर्माण होता है। इसलिए इस अध्याय के अन्त में निराला के सौन्दर्य-दर्शन पर विवेचन और उस पर बगीय प्रभाव की भी आलोचना की गई है। इस प्रकार सम्पूर्ण अध्याय की विषय वस्तु निराला का सत्य शिव तथा सुन्दर पर बगीय प्रभाव की आलोचना है।

तृतीय अध्याय में निराला की कला पर बगीय प्रभाव का विवेचन है। आधुनिक युग की प्रभावस्वरूप कलाभिव्यक्ति में व्यक्तिगत अभिव्यजना का प्रभाव बहुत ही अधिक पड़ा है और व्यक्तिगत अभिव्यजना का सम्बन्ध कल्पना के साथ बहुत अधिक है। अतः निराला के कलापक्ष को हमने दो भागों में विभक्त कर लिया है—

१—*कल्पनागत रूप विन्यास*

२—कलागत रूप विन्यास

कल्पनागत रूप विन्यास के अन्तर्गत कल्पनाजात अभिव्यक्ति के तीन रूपों पर विवेचन किया गया है और उस पर बगीय प्रभाव की आलोचना प्रस्तुत की गई है—

१—रूपक

२—प्रतीक

३—बिम्ब

कलागत रूप विधान के अन्तर्गत परम्परानुसार निराला की कला के विभिन्न रूपों पर बंगीय प्रभाव की इस प्रकार मीमांसा की गई है।

१—अलंकार (पाश्चात्य अलंकारों के प्रभाव पर भी विवेचन किया गया है)

२—पदविन्यास जिसके अन्तर्गत भाषा और शैली को लिया गया है

३—छन्द

इस अध्याय के अन्त में कला के अन्तिम रूप—भाव और भाषा की एकरूपता—पर विवेचन कर यह प्रमाणित किया गया है कि निराला की कला और वस्तु रवीन्द्र की तरह संपृक्त हैं और कला का यही श्रेष्ठ रूप है।

चतुर्थ अध्याय में निराला के गीतों पर बंगीय प्रभाव का विवेचन निम्नलिखित विषयों के आधार पर किया गया है—

१—प्रार्थना प्रधान गीत

२—नारी-सौन्दर्य प्रधान-गीत तथा प्रेम-गीत

३—प्रकृति प्रधान गीत

४—स्वदेश प्रेम के गीत

५—दार्शनिक गीत

अन्त में सम्पूर्ण निबन्ध का उपसंहार प्रस्तुत किया गया है जहाँ निराला की मौलिकता पर शंका प्रकट न करते हुए भी उस प्रश्न की उपस्थापना नहीं की गई है। कारण प्रस्तुत निबन्ध में मौलिकता पर विवेचन अपेक्षित नहीं है।

निबन्ध की परिधि के साथ एक 'परिशिष्ट' भी संयुक्त है जहाँ निराला द्वारा अनूदित बंगला-कविताओं पर विवेचन प्रस्तुत किया गया है। निराला के लिए अनुवाद व्यक्तित्व सापेक्ष रहा है अर्थात् अनुवादक के व्यक्तित्व की छाप अनूदित विषय पर स्पष्टतः लक्षित होती है। और इस प्रकार अन्ततः अनुवाद न हो सकने के कारण इन अनूदित कविताओं की आलोचना प्रस्तुत की गई है जिनका 'प्रभाव' के अन्तर्गत समाहार हो गया है। निराला की कविताओं के बंगला अनुवाद के साथ ही निराला द्वारा लिखित एक बंगला-कविता की भी आलोचना प्रस्तुत की गई है जो उनकी काव्य-पुस्तक में प्राप्त है। इसके अतिरिक्त परिशिष्ट के अन्तर्गत रवीन्द्र की दो-एक कविताओं पर लिखित निराला की पैरोडियों का भी विवेचन किया गया है क्योंकि ये भी प्रभाव के कारण ही लिखी गई जान पड़ती हैं।

प्रथम अध्याय

व्यक्तित्व और कृतित्व

प्रस्तुत निबंध के आलोच्य विषय के अनुसार निराला जी के व्यक्तित्व तथा उनकी कृतियों पर सर्वप्रथम दृष्टिपात करना होगा। प्रभाव का माध्यम है व्यक्ति एवं व्यक्ति किन परिस्थितियों में और किस प्रकार किसी विशेष साहित्य से कम प्रभावित हुआ वह उसके व्यक्तित्व तथा कृतियों के इतिहास मूलक अध्ययन से ही पता चल सकता है। यह ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत निबंध का पट भूमिका होगी जिसमें निराला जी के काव्य पर बंगला साहित्य के प्रभाव की रेखाएं स्पष्ट और स्वच्छ हो सकेंगी। वैसे भी प्राचीन साहित्य की तुलना में आधुनिक साहित्य विशेष रूप से मह प्रधान है। अतएव काव्य जिज्ञासा के साथ ही कवि की मानसिक स्थिति के प्रति भी हमारी जिज्ञासा बनी रहती है। इस मानसिक स्थिति के ज्ञान के लिए कवि के जीवन समय का क्रमिक अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। हिपालाइट टेन[१] ने कवि व्यक्तित्व के निरीक्षण के लिए तीन वस्तुओं की आवश्यकता बताया है—कवि या लेखक का वंश परिवार पारिपार्श्विक परिस्थितियां और उस युग का विचार धारा तथा विश्वास। इस प्रकार इस अध्याय के अंतर्गत तीन विभिन्न विषयों पर हम विचार करेंगे—

१—वंश-परिवार तथा व्यक्ति 

२—कृतियां

३—पारिपार्श्विक परिस्थितियां तथा युगीन विचारधाराएं

इन तीनों पर विचार करने से ही इन विषयों के अन्तर में अन्तर्धारा रूप प्रवाहित निराला के व्यक्तित्व का परिचय हमें प्राप्त हो सकेगा। व्यक्तित्व का विकास ही मनुष्यत्व का विकास तथा सभ्यता का विकास है। मानव जो काम करता है उसे उसके व्यक्तित्व का वास्तविक फल कहा जा सकता है व्यक्तित्व यदि वृक्ष है तो कृति उसका फल। वृक्ष की प्रकृति पर फल की प्रकृति निर्भर करती है अतएव व्यक्तित्व के ज्ञान से ही कृतियों का ज्ञान हो सकता है। वैसे भी यह

१ टेन हिस्ट्री ऑफ इंग्लिश लिटरेचर

२ *प्रमथनाथ विशी नेहरू—व्यक्ति तथा व्यक्तित्व*

सर्वविदित है कि कलाकार के कृतित्व को समझने के लिए उसके जीवन की परिस्थितियों तथा विभिन्न घात प्रतिघातों का अध्ययन आवश्यक है क्योंकि उनकी सहायता से ही हम कलाकार की चेतना का ज्ञान प्राप्त होता है।

वंश परिवार तथा व्यक्तित्व

सन १८९६ ई० की वसन्त-पंचमी का दिन। बंगाल के घर घर में सरस्वती पूजा के आयोजन में सब व्यस्त हैं। वासंती की अपूर्व हरीतिमा बंगाल की अनुपम शोभा को और भी बढ़ा रही है। निराला जी कहते हैं— वहाँ (बंगाल में) मलय पवन बहता है संयुक्त प्रान्त (हिन्दी प्रान्त) में नहीं। बंगाल में ऋतु पहले आती है।[1] रवीन्द्रनाथ की कल्पना में यह शोभा और भी स्पष्ट हो गई है। बहुत दूर का असीम आकाश आज वनराजि—नीला पृथ्वी के सिरहाने पर झुक पड़ा। कानों कानों में कहा मैं तुम्हारा हूँ। मेरे अश्रु आज चंचल हुए हैं क्या यह तुम देख नहीं पाती हो? मेरा वक्ष आज तुम्हारे श्यामल हृदय के समान ही श्यामल बन गया है।[2]

बसन्त तार गान लिखे याय धूलिर परे कि आदरे।
ताइ से धूला उठे हेसे बारे बारे
बारे बारे रूपर साजि आपनि भरे कि आदरे॥

(वसन्त अपना गाना धूलि पर लिखता है इसलिए तो वह धूलि बार बार हँस उठती है। बार-बार अपने रूप की डाला स्वयं ही कितने प्यार से भरती है)[3]

और वसन्त ने उसी प्यार से बंगाल के महिषादल स्थान में रहने वाले पं० रामसहाय त्रिपाठी के घर को भी सजा दिया। सरस्वती के वर पुत्र सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला का जन्म उसी दिन हुआ। वासंती और वाग्देवी दोनों ही खुशी में झूम पड़ीं और सौन्दर्य तथा विद्या से उसे विभूषित किया। यह अच्छा ही था कि निराला के पिता पं० रामसहाय जी गढ़ाकोला, जिला उन्नाव के रहने वाले होने पर भी नौकरी के कारण बंगाल के मेदिनीपुर जिले की महिषादल नाम की जमींदारी में बस गए थे। बंगाल में रहते हुए निराला उसकी कला, साहित्य तथा उसकी मिट्टी से परिचित हुए जिस मिट्टी में सर्वदा गान की ही ध्वनि गुंजित रहती है। निराला जी कहते हैं— बंगाल मेरी जन्मभूमि है इसलिए बचपन से प्रेम है।[4] और यह हमारा सौभाग्य है कि कवि निराला ने बंग देश

१ महाप्राण निराला से उद्धृत
२ रवीन्द्रनाथ संकलन
३ रवीन्द्रनाथ प्रवाहिनी
४ निराला प्रबन्ध पद्म

म एक एस समय ज म लिया था जब बगला-समाज की भित्ति की दरार इतना विस्तीए नह। हुई थी कि एक जगह से दूसरी जगह चलना ही दुष्कर हा जाए ग्रौर इस भित्ति का हत्ता कवि के लिए बहुत ही ग्रावश्यक है। इस सामाजिक भित्ति क ग्राश्रय मे ही कवि सवप्रथम खडा हाता है।

परन्तु दुर्भाग्यवश उस भित्ति की दरार निराला क ज म क तृतीय बप स ही स्फीत हान लगी। निराला ग्रभी तीन वप के ही थ कि उनकी मा का देहात हा गया ग्रौर यह दरार बन्ते-बन्त उनके जीवन का एक घार न्यग्य बनकर रह गई। नायद इसी कारण व केवल महत् जातीय कवि हा पाय ह महत्तर सवजातीय कवि नही हो सके। रवी द्रनाथ भी यदि जीवन की प्राथमिक ग्रवस्था स ही इस प्रकार के ग्राघात सहन तो नायद प्रतिभा का प्राचुय होन पर भी महत्तर कवि नही हा पान।

माता का दहा त कवि के लिए निष्ठुर कल्पना पर पहला प्रहार था। कवि का ग्रनगिनत ग्रा गए शरण म जन जननी स उस ग्रभाव की पूर्ति करनी पडी।[1] मा क ग्रभाव म भी निराला काफी स्नह म पाल गए। निराला के पिता महिषादल राजा क प्रियपात्र होन के कारण सम्पन्न भी हा गए थे इसी कारण निराला क पालन पोपण म किसी भी प्रकार का कठिनाई नहीं हुई। वे इसा समय म बसवाडी भापा तथा बगला दाना ही बोलत थ। निराला क लिए य दाना ही भाषाए मातृ भापा क समान थी। उन्हान प्रबध प्रतिभा म लिखा है— बगला मरी वसी ही मातृ भापा है जसी हिन्दी। निराला जी जब ७ वप क हुए तब उन्ह एक बगला पाठशाला म पढने के लिए भेजा गया। इस सम्बन्ध म गगाप्रसाद पाण्डेय न लिखा है भावुक बगाली ग्रध्यापक निराला को शिक्षण क साथ साथ ग्रपना स्नह भी दत रह ता कुछ ग्रास्चय का बात नहीं[2] ग्रौर इस प्रकार प्रारम्भिक काल स ही उन पर बगला का प्रभाव पडता रहा। यह बहुत ही दु ख की बात है कि जीवन म कवल घात प्रतिघात महते हुए दु खा कवि ग्रपन जीवन म ही वीतराग हा गए थे इसी कारण रवी द्रनाथ की तरह किसी भी प्रकार की जीवन स्मृति उन्हान नहा लिखी। यदि लिखत ता रवी द्रनाथ के समान उनके जीवन क प्रारम्भिक प्रभाव का हम महज ही ज्ञान हो जाता।

पाठशाला की पढाइ समाप्त करके व महिषादल के हाई स्कूल म ग्रग्रजी पढ्त रह। स्कूल म हिन्दी पढन का काई सुविधा नहा थी घर पर सिपाहिया क साथ

१ राम विलास शर्मा निराला
२ निराला प्रबध प्रतिभा
गगाप्रसाद पाण्डेय महाप्राण निराला

वे रामायण और ब्रजविलास के द्वारा हिन्दी भी सीखते रहे। हाई स्कूल में निराला ने द्वितीय भाषा के रूप में संस्कृत ली थी। इस तरह हिन्दी, संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी चारों भाषाएँ उन्होंने साथ साथ सीखीं।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का कहना है कि उनकी शिक्षा भी बंगला से ही आरम्भ हुई थी। उन्होंने तत्कालीन बंगला साहित्य की स्वच्छन्दतावादी और रहस्यवादी कविताओं का अच्छा अध्ययन किया था।[1] इसी समय में उन्होंने कविता लिखनी प्रारम्भ कर दी थी। अब तक वे बंगला में कुछ पद लिखा करते थे, किन्तु उनका मन हिन्दी लिखने की भी प्रेरणा पाने लगा। इस सम्बन्ध में गंगाप्रसाद पाण्डेय ने लिखा है उन्होंने उस समय लिखे गए एक कवित्त का कुछ अंश इस प्रकार बताया—

करि अंग अंग भंग भाषा के समस्त छन्द
ब्रज अवधी में अब कवित्त हमें लिखनो है।

इस सम्बन्ध में निराला ने स्वयं भी लिखा है—

मैं कवि हो चला था। फलतः पढ़ने की आवश्यकता न थी। प्रकृति की शोभा देखता था। कभी-कभी लड़कों को समझाता भी था कि इतनी बड़ी किताब सामने पड़ी है, लड़के पास होने के लिए सर के बल हो रहे हैं, वे उद्भिज कोटि के हैं। लड़के अवाक् दृष्टि से मुझे देखते रहते थे, मेरी बात का लोहा मानते थे। किताब उठाने पर और भय होता था, रख देने पर दूने दबाव से पस्त हो जाने की चिन्ता। फलतः कल्पना में पृथ्वी अन्तरिक्ष पार करने लगी। कल्पना की वैसी उड़ान आज तक नहीं उड़ी।[3]

और इस प्रकार निराला की पढ़ाई पर वहीं पूर्ण विराम खिंच गया। परन्तु संस्कृत, बंगला तथा हिन्दी और अंग्रेजी-साहित्य का अपार ज्ञान उनको था। शायद यह रवीन्द्रनाथ का प्रभाव होगा कि वे नवीं कक्षा से आगे नहीं बढ़े। इसी बात को स्पष्ट करने के लिए गिरीशचन्द्र तिवारी गंगाप्रसाद पाण्डेय के कथन को उद्धृत करते हैं—

किसी ने निराला से कह दिया कि प्रतिभाशाली व्यक्ति कभी परीक्षाओं के चक्कर में नहीं पड़ते। स्वयं रवीन्द्रनाथ नाइन्थ पास हैं यह निराला को बड़ी निधि मिली। उन्होंने सोचा मुझे रवीन्द्रनाथ से कम थोड़े न होना है और परीक्षा नहीं

---

१ हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी-साहित्य, पृ० ४६७
२ पाण्डेय : महाप्राण निराला
३ निराला : सुकुल की बीबी

दा ताकि नदी कथा पास रह।[1]

तिवारी जी कहते हैं कि निराला जी क इस कथन म ऐसा ज्ञात होता है कि व बचपन स ही रवीन्द्रनाथ स प्रभावित थे साथ ही बंगला साहित्य स भी। आज भी रवीन्द्रनाथ के गीतों की संगीत माधुरी म आत्म विभोर हो कवि अपने को ही रवीन्द्रनाथ समझ बैठता है।[2]

चौदह वर्ष की अवस्था म चादपुर जिला फतहपुर म निराला की शादी हो गई। मातृ स्नेह स वंचित बालक को मनोहरादेवी म स्त्री-स्नेह मिला। निराला का उनक साथ घनिष्ठ प्रेम था जिसका प्रमाण सुकुल की बीबी का एक छोटा सा चित्र है।

एकान्त म पत्नी जी मिलीं बडी तत्परता स बोलीं—वहा नाच देखकर भूल न जाइएगा। निराला जी एक जमीदार की बरात म जा रहे थ। उन्होंने उत्तर दिया राम भजो — यव मूय प्रभवावन क्व चाल्पविषयामति चलो कहकर वह गव गुरु-गमन स काम को चल दी।[3] परन्तु वैवाहिक जीवन का यह सुख अधिक दिन तक नहीं बदा था। श्री मनोहरा देवी न एक पुत्र और एक कन्या का जन्म देकर इन्फ्लुएंजा की बीमारी म शरीर त्याग दिया। इस सम्बन्ध म डा० रामविलास शर्मा लिखते है—

पत्नी की मृत्यु मायके म माँ की गोद म हुई। सब कुछ समाप्त होन क बाद सूर्यकुमार भी वहा आ पहुंच। इस वज्रपात म उनका बुरा हाल था। घाटा श्मशान म बैठ रहते। वहा कोई चूडी का टुकड़ा हड्डी या राख मिल जाती तो उस हृदय स लगाए घूमा करते। इन्फ्लुएंजा म इतने मनुष्य नष्ट हुए थे कि गंगा क किनारे दिन रात चिताओं की ज्वाला कभी बन्द न होती थी। अवधूत टील पर बैठा हुआ युवक कवि घाटा तक बहती हुई लाशों का दृश्य देखा करता।

माता का देहान्त निराला की जीवन भित्ति की पहली दरार थी और वह दरार स्त्री क देहान्त स और भी स्फीत हो गई। इस सम्बन्ध म विश्वम्भरनाथ उपाध्याय लिखते हैं कि यहा म दो प्रतिक्रियाएं स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं एक कवि की रूपता जो उनकी प्रिया की सरस दृष्टि निमेष स लुप्त हो जाती थी, बढ़ता हुई कुछ समय तो अर्द्ध चेतनावस्था-सी रही जिसम अन्तर्मुखी प्रकृति बनी दूसरा और कामना आश्रय क नष्ट हो जान स उग्रता बढ़ती गई।[5] डा०

---

१ महाप्राण निराला, पृ० २८

कवि निराला और उनका काव्य-साहित्य पृ ३२

३ सुकुल की बीबी

४ रामविलास शर्मा निराला

५ निराला—काव्य कला और कृतियां

विश्वम्भरनाथ उपाध्याय का तात्पर्य है कि एक तो कवि में प्रारम्भ से ही रुक्षता थी, परन्तु विवाह के उपरान्त उनकी कविता में ऐन्द्रियता का समावेश हुआ, फिर स्त्री की मृत्यु के उपरान्त उनमें अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के प्रसार के साथ उग्रता का भी सम्प्रसार हुआ। उपाध्याय जी का यह विवेचन अनुचित ही प्रतीत होता है। जैसे यह कहना गलत होगा कि प्रारम्भ में ही निराला जी में रुक्षता थी वरन् जो चीज उनमें थी वह व्यक्तित्व का अहं था। परिवार में लगभग दस की मृत्यु से जब उनके सामने जीविका का प्रश्न आया और इस वास्तविक जगत में उनका प्रथम बार तिक्त परिचय हुआ तब उनके अहं को काफी धक्का पहुँचा और उनमें रुक्षता आ गई। उस महामारी में कवि की पत्नी की ही मृत्यु नहीं हुई, पिता, चाचा आदि एक के बाद एक सभी स्वर्ग सिधार गए। चार भतीजों और अपनी दो सन्तानों का भार २१ साल के युवक के कन्धों पर पड़ा। सम्पूर्ण परिवार के साथ पत्नी की असामयिक मृत्यु का शोक ही निराला के लिए वज्रपात से कम नहीं था, ऊपर से बच्चों का पालन पोषण एक विकट समस्या के रूप में सामने आया। निराला मानो स्तब्ध रह गए। व्यापक कल्पना और विचारों की अडिग दृढ़ता शैशवकाल में ही उनकी बहुत बड़ी विशेषता थी। अब निराला साहित्य जीवन में पूरे प्राण प्रवेग के साथ प्रवेश करने को कटिबद्ध हो गए। साहित्य को उन्होंने अपनी पारिवारिक तथा सामाजिक क्षतिपूर्ति का साधन बनाया। इस प्रकार जीविका के प्रश्न पर उनका इस यथार्थ संसार से दुःखद परिचय हुआ जो उनके व्यक्तित्व की भित्ति की दरार को स्फीत करने में सहायक बना। प्रारम्भिक युग से ही व्यक्तित्व के अहं से युक्त होने के कारण जीवन की विषमताओं ने उन्हें विद्रोहात्मक तथा रुक्ष बना दिया न कि स्त्री के वियोग ने, यद्यपि स्त्री का वियोग परिवार का भार तथा जीविका का प्रश्न और संसार की विषमताएँ सबने एकत्रित होकर उनके अहं पर आघात किया था और फलस्वरूप निराला जी रुक्ष बन गए थे।

उपाध्याय जी की दूसरी बात कि विवाह के उपरान्त उनकी कविता में ऐन्द्रियता का समावेश हुआ, भी उचित नहीं लगती है। अभी हम कह चुके हैं कि जीविका की समस्या के समाधान के लिए निराला जी ने साहित्य क्षेत्र में प्रवेश किया यद्यपि प्रारम्भिक अवस्था में ही कविता लिखने की प्रेरणा उनमें थी और उनकी प्रथम प्रौढ़ कविता 'जूही की कली' सन् १६ में लिखी जा चुकी थी। जूही की कली में ऐन्द्रियता का चरमरूप दिखाई पड़ता है इसलिए यह कहना भ्रम होगा कि विवाह से पहले उनमें ऐन्द्रियता नहीं थी यद्यपि यह बात ठीक है कि विवाहोपरान्त यह ऐन्द्रियता और भी अधिक व्यापक हो गई थी।

जहां तक विश्वंभरनाथ उपाध्याय का तीसरा बात कि निराला की स्त्री की मृत्यु के कारण निराला की रुग्णता ने अर्द्ध चेतनावस्था में रहकर उनकी अन्त प्रकृति का प्रसार किया, भी दोषयुक्त है। कारण निराला के व्यक्तित्व का अहं भी इस प्रवृत्ति का आधार है। व्यक्तित्व पर जीवन का प्रहार सहते हुए व विद्रोहात्मक बन गए। मिल्टन को जब 'रेस्टोरेशन' के समय राज्य पद से बहिष्कृत कर दिया गया और साथ ही उनके नेत्रों की शक्ति जाती रही तब मिल्टन स्वयं विद्रोही कवि बन गए थे। भगवान से बढ़कर शैतान की महत्ता का उन्होंने प्रतिपादित किया था। निराला और मिल्टन दोनों ही व्यक्तित्ववादी पुरुष हैं अत इस विद्रोह से ही 'विराटत्व की भावना' ने उनके मन में आश्रय ग्रहण किया। इस विराटत्व की भावना के प्रसार में रवीन्द्र तथा विवेकानन्द का वेदान्त तथा उपनिषद के विचार भी निराला के सहायक बने जहां इसके विपरीत मिल्टन की पियोरीटन फिलासफी उनके विराटत्व के प्रसार में सहायक हुई थी। इस प्रकार निराला ने इन दार्शनिक विचारों से प्रभावित होकर विश्वसत्ता के साथ तादात्म्य स्थापित करके विराट भावना की अभिव्यक्ति प्रारम्भ की। यहां निराला रहस्यात्मक बन जाते हैं और उनका अन्त प्रकृति का प्रसार इसी कारण हुआ। रहस्यात्मक भावना दिव्य रति के रूप में आगामी काव्य में प्रतिध्वनित होने लगी न कि स्त्री की मृत्यु के कारण शृंगारिक अनुभूति दिव्य रति में परिवर्तित हुई। यदि ऐसा होता तो उनकी रहस्यात्मक कविताएं हीन ग्रन्थियां (परवर्टेड सक्स) की परिचायक होती न कि सुष्ठु वेदान्त का भावनाओं की प्रचारक। यद्यपि अपनी 'दिव्य रति' की प्रमुख पात्र उनकी स्त्री स्वयं थी। गीतिका के समर्पण में उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है—

जिसकी हिन्दी के प्रकाश से, प्रथम परिचय के समय मैं आंख नहीं मिला सका—लजाकर हिन्दी की शिक्षा के संकल्प से कुछ काल बाद देश से विदेश पिता के पास चला गया था और उस हीन हिन्दी प्रान्त में बिना शिक्षक के 'सरस्वती' की प्रतियां लेकर पद साधना की और हिन्दी सीखी थी जिसका स्वर गृहजन परिजन और पुरजनों की सम्मति में मेरे (संगीत) स्वर का परास्त करता था, जिसकी मैत्री की दृष्टि क्षणमात्र में मेरी रुग्णता को देखकर मुस्करा देती थी जिसने अन्त में अदृश्य होकर मुझसे मेरी पूर्ण परिणीता की तरह मिलकर मेरे जड़ हाथ को अपने चेतन हाथ से उठाकर दिव्य शृंगार की पूर्ति की उस सुन्भिरणा स्वर्गीया प्रिय प्रकृति श्रीमती मनोहरादेवी को सादर।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि उनके साहित्यिक जीवन का प्रमुख आधार

[1] निराला गीतिका का समर्पण

सहजात साहित्यिक वृत्ति थी जिसका स्फुरण सन १९१६ में 'जूही की कली' के माध्यम से हुआ। साहित्यिक जीवन का दूसरा आधार था—स्वयं निराला की जीविका का प्रश्न। संसार का समस्त भार जब १९१६ के बाद उन पर आ पड़ा तब जीविका कमाने के लिए ही उन्होंने सक्रिय होकर साहित्य-क्षेत्र में प्रवेश किया। और उनके काव्य का तीसरा आधार था—व्यक्तित्व का अहं जिसमें उनके प्रिय पात्रों की मृत्यु से उन्हें एक भयंकर धक्का पहुँचा, जिस कारण एक ओर उनकी सहजात-काव्य प्रवृत्ति दार्शनिक तटस्थता तथा विदग्ध हृदय की करुणा को लेकर फूट पड़ी और दूसरी ओर अपने विध्वस्त अहं का समीकरण निराला जी ने प्रकृति के विराट चित्र के अंकन के द्वारा किया और इस प्रकार व्यापक ढंग से वे काव्य की रचना करने लगे। यहाँ से अब हम व्यक्ति के साथ ही कृतियों का भी विवेचन करेंगे।

कृतियाँ

जैसा कि निराला ने स्वयं 'मुकुल की बीबी' में कहा है, बाल्यकाल में ही कविता लिखने की ओर उनकी रुचि हो चली थी। निराला ने रवीन्द्र की तरह किसी 'जीवन-स्मृति' की रचना नहीं की नहीं तो निश्चित रूप से उनके प्रारंभिक काव्य जीवन का इतिहास हम प्रस्तुत कर सकते। गंगाप्रसाद पाण्डेय की पुस्तक 'महाप्राण निराला' में यह पता चल जाता है कि बंगला के साथ ही अवधी और ब्रजभाषा मिश्रित भाषा में वे कुछ कवित्त सवैये प्रारम्भिक काल से ही लिखने लगे थे।[1] जीविका के प्रश्न के कारण जब वे निश्चित रूप से साहित्य क्षेत्र में कूद पड़े और कविताएँ प्रकाशित करने लगे तो उनकी प्रारम्भिक बंगला-कविताओं की बहुत प्रशंसा हुई। इस सम्बन्ध में पाण्डेय जी लिखते हैं 'राजा के काम से प्रायः निराला को कलकत्ते जाना आना पड़ता था। धीरे धीरे लोग-बाग उन्हें कलकत्ते में भी मानने-जानने लगे। उनकी बंगला कविताओं की तारीफ महिषादल से कलकत्ते तक समान रूप से होने लगी।'[2]

हिन्दी की सर्वप्रथम प्रौढ़ रचना निराला की 'जुही की कली' है जो सन १९१६ में लिखी जा चुकी थी। डॉ० रामविलास शर्मा इसकी रचना के विषय में लिखते हैं कि 'निराला जी के व्यक्तित्व में निर्भीकता और उद्दण्डता कूट कूट कर भरी है। महिषादल में वे श्मशान में घूमने जाया करते थे। जुही की कली का सुहाग उन्होंने वहीं पर देखा था।'[3] सन् १९२० में निराला ने अपनी सर्व प्रथम

---

१ गंगाप्रसाद पाण्डेय: महाप्राण निराला पृ० ८
२ गंगाप्रसाद पाण्डेय: महाप्राण निराला पृ० ९
३ रामविलास शर्मा: निराला

रचना सरस्वती में छपने के लिए भेजी, किन्तु द्विवेदी जी ने इसे लौटा दिया। सरस्वती से कविता लौटने का दुःख निराला को कुछ कम नहीं हुआ, पर इससे उनकी प्रतिभा के विकास में कोई बाधा नहीं पड़ी।

सरस्वती में कुछ काल उपरान्त एक लेख के छपने पर उनका परिचय *द्विवेदी जी से हो गया और द्विवेदी जी के सुझाव पर वे रामकृष्ण मिशन की* हिन्दी पत्रिका 'समन्वय' के सम्पादक बन गए। यहीं से उनकी काव्य प्रतिभा का स्फुरण प्रारम्भ होता है। उनमें नवीनता की ओर झुकाव था। माइकेल मधुसूदन, रवीन्द्रनाथ तथा विवेकानन्द के प्रभावस्वरूप उन्होंने हिन्दी में मुक्त छन्द तथा नवीन भाव योजना के साथ विवेकानन्द के वेदान्त-दर्शन का प्रचार किया। इस तरह हिन्दी-काव्य में निराला ने अपने भाव विचारों सहित पदार्पण किया। समन्वय काल में मुक्त छन्द में लिखी उनकी रचना 'पंचवटी प्रसंग' उनकी इसी मुक्त रुचि का प्रसूति है। निराला ने लिखा है—पुराण, इतिहास और समाज तीन मुख्य आधार नाटकों के लिए हैं। पौराणिक नाटकों की भाषा प्रवाहपूर्ण होनी चाहिए। प्राचीन युग का रूप तभी पूरा उतरता है। भाषा इतनी क्लिष्ट न हो कि जनता समझ न सके पर ऐसी सीधी और शिथिल भी न हो कि प्राचीनता का गम्भीर वातावरण नष्ट हो जाय। मेरा लिखा हुआ स्वच्छन्द छन्द ऐसे ही नाटकों के लिए उपयोगी है। इसी विचार से मैंने लिखा भी था। अतएव काव्य लिखने के विचार से पहले मैंने उसे मिल्टन की तरह क्लिष्ट भाषा पूर्ण कर दिया था पर मेरा असली मतलब उसे पौराणिक नाटकों में लाना ही था। पंचवटी प्रसंग की अवतारणा का यही कारण है। इसका उदाहरण पेश करने के लिए मैंने तो अपने लिखे एक सामाजिक नाटक के एक पाठ में इसका समावेश कर दिया था और वह पाठ कलकत्ता की स्टेज पर मैंने खुद खेला था।'[1]

अपनी सब प्रारम्भिक कविताओं का 'अनामिका' नाम से उन्होंने १९२३ में एक संग्रह निकाला। इस समय वे 'मतवाला' के सम्पादक थे और काव्य में क्रान्ति का प्रसार कर रहे थे। इस सम्बन्ध में निराला ने 'मुकुल की बीवी' में उस समय का स्मरण इस प्रकार किया है—

बहुत दिनों की बात है। तब मैं लगातार साहित्य सिन्धु मथन कर रहा था। पर निकल रहा था केवल गरल। पान करने वाले अकेले महादेव बाबू।[2]

अनामिका (१९२३) में निराला की वे कविताएँ संगृहीत हैं जो 'नारायण

१ निराला प्रबन्ध प्रतिभा
२ निराला सुकुल की बीवी

'मतवाला' और 'समन्वय' में पहली बार प्रकाशित हुई थीं और जिन्होंने खड़ी बोली हिन्दी कविता में एक विशेष परिवर्तन की सूचना दी थी। इस सम्बन्ध में रामरतन भटनागर लिखते हैं कि उस समय इन कविताओं की विशेष प्रसिद्धि नहीं हुई परन्तु साहित्य-समालोचकों और हिन्दी कविता की गतिविधि समझने वालों का ध्यान उनकी ओर अवश्य गया। महादेव प्रसाद सेठ ने लिखा—'इतना मैं अवश्य कहूँगा और दावे के साथ कहूँगा कि त्रिपाठी जी ने 'पंचवटी प्रसंग', 'अधिवास' तथा 'जूही की कली' नामक कविताओं को लिखकर हिन्दी के पद्य साहित्य में एक अभूतपूर्व नई शैली का समावेश किया है और यदि हिन्दी का कवि-समाज इस शैली का आदर और अनुगमन करेगा तो मातृ भाषा का बड़ा उपकार होगा और उसके साहित्य में एक नई जान पैदा हो जायगी।' इस पन्नों 'अनामिका' की केवल कुछ ही कविताएँ 'परिमल' में पुनः आई हैं। वे हैं 'पंचवटी प्रसंग', 'अधिवास', 'जूही की कली' और 'तुम और मैं'। शेष कविताएँ कवि ने स्वयं अप्रौढ़ समझकर छोड़ दी हैं।[1]

इसी बीच निराला जी 'समन्वय' छोड़कर 'मतवाला' के सम्पादक बन गये थे। फिर 'मतवाला' भी छोड़ना पड़ा और सन् १९२८ में कलकत्ता छोड़कर वे लखनऊ आ गए। सन् १९२० की तरह हिन्दी प्रान्त इस बार भी उनसे विमुख नहीं रह सका और 'सुधा' ने उनकी कृतियों का स्वागत किया। सन् १९३० में निराला का दूसरा काव्यसंग्रह 'परिमल' प्रकाशित हुआ। डा० रामरतन भटनागर का कहना है कि 'प्रसाद के 'आँसू' ने जिस क्रान्ति का सूत्रपात किया था, पंत के 'पल्लव' ने जिस क्रान्ति को गहराई दी उसी क्रान्ति का विस्तार निराला के इस महत्वपूर्ण काव्यग्रंथ 'परिमल' ने प्रदान किया।'[3] निराला जी भाषा, भाव, छन्द, वर्ण्य सभी की सम्पूर्ण परम्परा से विद्रोह करते हुए आये थे और उनके लिए यह स्वाभाविक ही था कि उनकी बात-चीत, चाल-ढाल सभी में एक नवीनता का आभास मिले। निराला ने अपनी शक्ति-साहस से समाज में कवि का एक अलग स्थान बनाया और जीवन में साहित्यकार की प्रतिष्ठा और महत्ता को उद्घाटित किया। चारों ओर निराला के छंदों की पैरोडी बनने लगी पर निराला इससे घबराने वाले नहीं थे। उन्हें अनेक प्रकार से चिढ़ाने की भी चेष्टा की जाती थी, किन्तु निराला यह कह दिया करते थे—'कुत्ते भौंकते ही रहते हैं, हाथी अपनी चाल से चला जाता है।' सड़कों की टर-

1 रामरतन भटनागर : कवि निराला : एक अध्ययन
2 निराला : अनामिका की भूमिका (१९२३)
3 रामरतन भटनागर : कवि निराला : एक अध्ययन

र मे बादलो का गरजना नही रुकता ।'[1] हुआ भी यही क्योकि धीरे धीरे इस वीन भावधारा के पाँव जमने लगे और वह सवसम्मति से इस युग की मूल रणा शक्ति के रूप मे स्वीकार भी कर ली गई ।

निराला ने 'परिमल' की भूमिका मे लिखा है—

'इस युग मे कुछ प्रतिभाशाली अल्प वयस्क साहित्यिक प्राचीन गुरुडम के कच्छत्र साम्राज्य मे बगावत के लिए शासन-दण्ड हो पा रहे है अभी उन्हे साहित्य राजपथ पर साधिकार स्वतत्र रूप से चलने का सौभाग्य नही मिला । परन्तु सा जान पडता है कि इस नवीन जीवन के भीतर से शीघ्र ही एक ऐसा प्लावन धक्कर उठने वाला है जिसके साथ साहित्य के अगणित जल कण उस एक हा क्र की प्रदक्षिणा करते हुए उसके साथ एक ही प्रवाह मे बह जायेंगे और ध्यभ्रष्ट या विदग्ध से शुष्क न हो एक ही जीवन के उदार महासागर मे विलीन गे । अभी प्रतिभाशाली साहित्यिको को निष्प्रभ तथा हेय सिद्ध करके ससम्मान ासन ग्रहण करने वाले महालेखक और महाकविगण साहित्य मे अपनी प्राचीन लामी प्रथा की ही पुष्टि करते जा रहे है ।

ऐसी स्थिति मे परिमल निकल रहा है । इसके मैंने तीन खण्ड किये है । थम खण्ड मे सममात्रिक सान्त्यानुप्रास कविताए है जिनके लिए हिन्दी के लक्षण या के द्वारपालो का प्रवेश निषेध या भीतर जाने की सख्त मुमानियत है । सरे खण्ड मे विषममात्रिक सान्त्यानुप्रास कविताए हैं। तीसरे खण्ड मे स्वच्छन्द द हैं, जिनके विषय मे मुझे विशेष कहने की जरूरत है कारण इसे ही हिन्दी सर्वाधिक कलक का भाग मिला है ।'[2]

इस सम्बन्ध मे बच्चनसिंह का कहना है—निराला ने जिस मुक्त छन्द उद्दाम ावधारा और दार्शनिक ओजस्विता के साथ हिन्दी मे प्रवेश किया वह हिन्दी ाला के लिए सवथा नवीन वस्तु थी । निराला का छन्दहीन नवीन प्रयास उनके नए अदभुत वस्तु था इससे उनकी रुढिबद्ध रुचिया का मेल तो दूर रहा इसका म्पर्क भी उन्हें प्रिय न था । यही कारण है कि न तो इनकी कृतिया का सहा ुभूतिपूर्ण अध्ययन हुआ और न लोगों ने इन्हे समझने का ही प्रयत्न किया । स भाँति एक श्रेष्ठ प्रतिभासम्पन्न कवि की अवहेलना होने लगी । यो तो नवीन ायावाद के सभी प्रवत्तकों का प्रबल विरोध हुआ किन्तु निराला को औरो की पक्षा अधिक समय तक विरोधों का सामना करना पडा । यह निराला का ही

पाण्डेय महाप्राण निराला पृ० ८२
निराला परिमल की भूमिका

व्यक्तित्व है कि अनेक विरोधों और संघर्षों के बीच में होते हुए आज वे इतने ऊँचे पहुँच पाये हैं।

निराला के 'परिमल' की कविताओं के अनेक विषय हैं। साधारण दृष्टि से उसमें प्रार्थनापरक कविताएं, प्रकृति सम्बन्धी कविताएं, प्रेमविषयक कविताएं, देश प्रेम से प्रेरित कविताएं तथा सामान्य मानव भूमि पर आहत कविताएं सकलित हैं। 'समन्वय' के सम्पादन-काल में इनकी दार्शनिक प्रवृत्ति का जो विकास प्राप्त हुआ था उसी का आकलन परिमल की कविताओं में प्राप्त होता है। इनकी कविताओं में अद्वैत ज्ञान की छाप स्पष्ट देखी जा सकती है। इस सम्बन्ध में डा० रामविलास शर्मा का कहना है कि परिमल की रहस्यवादी कविताओं को एक साथ पढ़ने पर पता लगता है कि रवीन्द्रनाथ से अधिक कवि पर विवेकानन्द का प्रभाव है।[1]

इसके उपरान्त निराला की नई कृति गीतिका १९३६ में प्रकाशित हुई। इस बीच उनके ऊपर से झंझा प्रवाह बह गया। सन ३५ में सरोज (लड़की) की असामयिक मृत्यु ने निराला को बहुत भारी आघात पहुँचाया। चारों ओर के विरोध और साहित्यिक व्यवसायियों के छलों से पीडित कवि के लिए यह दुर्घटना महान क्षोभ का कारण बन गई। जीवन झंझा के बीच निराला एकाकी तरु की भाँति झकझोरे गये पर हिन्दी के सौभाग्य से उखड़े नहीं और सन ३६ में इसी उनकी गीतिका की प्रसूत प्रशंसा हुई। 'गीतिका' के परिचय में श्री जयशंकरप्रसाद लिखते हैं—

गीतिका हिन्दी को निराला सुन्दर उपहार है। उसके चित्रों की रेखाएं पुष्ट वर्णों का विकास भास्वर है। उसका दार्शनिक पक्ष गम्भीर और व्यंजना मूर्तिमती है। आलम्बन के प्रतीक उन्हीं के लिए अस्पष्ट होंगे जिन्होंने यह नहीं समझा है कि रहस्यमयी अनुभूति युग के अनुसार अपने लिए विभिन्न आधार चुनती है। केवल कोमलता ही कवित्व का मापदण्ड नहीं है। निराला जी ने ओज और सौन्दर्य भावना और कोमल कल्पना का जो माधुर्यमय संकलन किया है वह उनकी कविता में शक्ति-साधना का उज्ज्वल परिचायक है। स्वयं निराला ने इस गीता के सम्बन्ध में कहा है—खड़ी बोली की संस्कृति जब तक संसार की अच्छी अच्छी सौन्दर्य भावनाओं से युक्त न होगी, वह समर्थ न होगी। उसकी सम्पूर्ण प्राचीनता जीर्ण है।[3]

---

१ बच्चनसिंह क्रान्तिकारी कवि निराला पृ० ८

२ रामविलास शर्मा निराला

३ निराला गीतिका की भूमिका

परिमल म निराला के कुछ गीत प्रकाशित हुए थे और विद्वानो म उनका बडा आदर हुआ था। सगीत विशारदो न उनकी सगीतमयता की प्रशसा की थी। इन गीतो म किसी एक सुदर भाव को लेकर दो तीन या चार बद उपस्थित किय जाते थे। बगला म रवीन्द्रनाथ इस प्रकार के सहस्रो गीतो की रचना कर चुके थे। अत रवीन्द्रनाथ क गीतो की छाया म पलने वाल निराला का ध्यान इस ओर जाता स्वाभाविक था। गीतिका क गीतो का मुख्य विषय रहस्यवाद है। इस सबध म श्री नन्द दुलारे वाजपेयी का यह कथन महत्वपूर्ण है—'रहस्यवाद तो इस युग की प्रमुख चिताधारा है। परोक्ष की रहस्यपूर्ण अनुभूति स उनके गीत रजित है। रहस्य की कलात्मक अभिव्यक्ति की जो बहुविध चेष्टाए आधुनिक हिन्दी म की गई हैं उनम निराला की कृतिया विशेष उल्लेखनीय है। कुछ कवियो ने तो रहस्यपूर्ण कल्पनाए ही की हैं किन्तु निराला के काव्य का महत्त्व ही रहस्यवाद है। उनके अधिकाश पदो म मानवीय जीवन क चित्र है अवश्य किन्तु व सबके सब रहस्यानुभूति म अनुरजित हैं।'[1] यद्यपि गीतिका म रहस्यवाद क अतिरिक्त देशभक्ति तथा प्रम विषयक कविताए भी सगृहीत हैं।

सन १९२८ म उनका नया काव्यसग्रह 'अनामिका' निकला। अनामिका क सम्बन्ध म डा० रामरतन भटनागर का कहना है कि अनामिका नाम के प्रति निराला का मोह होना स्वाभाविक था। वह उनका प्रथम काव्य-सग्रह था जो १९२३ म प्रकाशित हुआ। १९ वष बाद अपने एक अन्य प्रौढ सग्रह का नाम रखत हुए कवि को इस पहले सग्रह का ध्यान आया और उसने इस सग्रह का नाम भी अनामिका रखा। यद्यपि इस सग्रह म पिछले सग्रह की कोई भी कविता नही है तथापि अनामिका (१९२३) और परिमल (१९३०) क बीच की कुछ रचनाएँ निराला न इस सग्रह म प्रकाशित की हैं। इन रचनाओ म उनके प्रारम्भिक काल की प्रवृत्तियो पर विशेष प्रकाश पडता है। इनम पहली कविताए व हैं जो रवीन्द्रनाथ या विवेकानन्द क काव्य का हिन्दी अनुवाद है। इस प्रकार की कविताए श्रेष्ठ, 'कहा देश है' 'नमा प्रार्थना' रवीन्द्रनाथ की कविताओ का अनुवाद है और सन्ध्या क प्रति नाच उस पर श्यामा गाता हू गीत मैं तुम्हा को सुनाने का विवेकानन्द की कविताओ का अनुवाद है।

इन अनुवादो क सम्बन्ध म निराला न लिखा है — अनुवाद का सत्य वही *समझता है मौलिक ग्रन्थ का चमत्कार उसी दृष्टि स अपना शोभनाय सृष्टि*

---

[1] गीतिका की भूमिका, पृ० ११

[2] रामरतन भटनागर कवि निराला एक अध्ययन, पृ० १६०

रखना है अनुवाद और मूल दोनो की भाषाओ पर जिनका पूर्ण अधिकार हो।[1] इसी को समझाते हुए निराला ने एक और लेख में लिखा है— अनुवादक के लिए यह नियम नहीं कि मूल का ग्रथ पुस्तक का अक्षरश अनुवाद किया जाय परन्तु यह भी ठीक नही कि इन मूल का अर्थ आदि कुछ और हो और अनुवाद का कुछ और। अनुवादक का मूल के अर्थ पर ध्यान रखना चाहिए। उसी अर्थ को दूसरी भाषा में प्रस्फुटित कर देना उसका कर्तव्य है। यदि मूल में कोई चमत्कार हो तो अनुवाद में भी चमत्कार दिखाना चाहिए। मूल की भाषा में यदि किसी ऐसे मुहावरे का प्रयोग हुआ है जिसकी ओर स्वभावत पाठक खिच जाय तो अनुवादक को भी उसी ढग का करना चाहिए। साराश यह है कि मूल की भाषा और भावो से अनुवाद की भाषा और भावो को शिथिल न होने देना चाहिए।[2]

भारत के प्राचीन सास्कृतिक पक्ष का उद्घाटन 'अनामिका' की कुछ कविताओ में बड़े सुन्दर ढग से हुआ है। डॉ० बच्चनसिंह तो यह कहते है कि निराला भारतीय संस्कृति के अकेले चित्रकार है।[3] बच्चनसिंह यह भी कहते है कि जहा निराला भारतीय संस्कृति के प्रेमी है, जहा वे प्राचीनता का प्रश्रय देने वाले हैं वहीं नवीन को मुक्त हृदय से ग्रहण करने को प्रस्तुत रहते है। नवीनता का स्वागत करते हुए 'उद्बोधन' में कहते है—

'प्राणो में नव जीवन का तू अजन लगा पुनीत
बिखर झर जाने दे प्राचीन।'

'अनामिका' तक पहुचते पहुचते भाषा, छन्द, शैली और विचार सब में कवि ने प्रौढता प्राप्त कर ली थी। 'राम की शक्तिपूजा', 'सरोज स्मृति' इनकी प्रौढतम रचनाओ के प्रतीक है। इसके अतिरिक्त 'अनामिका' की कुछ कविताओ में हम निराला की नई प्रगतिशील कविताओ का आभास मिलता है जिसका सूत्रपात हिन्दी क्षेत्र में सन् ३६ से हो गया था। 'विधवा' की 'नई बहू की आखें', 'खुला आसमान', 'ठठ', 'तोडती पत्थर' और 'सहज' इसी प्रकार की कविताए हैं। यद्यपि इनको सम्पूर्ण प्रगतिवादी कविताओ की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। कारण इन कविताओ में अस्पष्टता और रोमास का पुट जरूर है। पत्थर तोडने वाले का श्याम तन भर बधा यौवन, देखने वाले कवि का गतप्राण प्रगतिवादी

[1] निराला, भाबुक
निराला, 'रवीन्द्रनाथ,' चाबुक
[3] बच्चनसिंह, क्रान्तिकारी कवि निराला
[4] वही।

सामाजिक दृष्टि से यह कविता भारतीय समाज व्यवस्था के एक अपरूप पक्ष का निदर्शन भी कराती है। मास्को डायलाग्ज शुद्ध विनाशात्मक रचना है। इसमें मास्कोवादी साम्यवादियों के अनवचर नान की खिल्ली उडाई है।

बच्चनसिंह का कहना है कि उपालभ और व्यग्य समाप्त होने के बाद कवि में विषादात्मक शांति आ जाती है। इनकी यह अवस्था बिल्कुल मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के अनुकूल हुई है। अब इनके कथन में दुनिया के लिए सन्देश है, भगवान के प्रति आत्मनिवेदन है और है सामाजिक राजनीतिक तथा साहित्यिक महापुरुषों के प्रशस्ति अकन का प्रयास। ऐसा करने में रविबाबू की भाति इनका स्वरूप भी सदेश देने वाले नेता का हो गया है। ऐसी परिस्थितियों में कवि राजनीतिक नेतृत्व के स्तर पर आ जाता है। कवि के जीवन का यह एक नूतन पक्ष है। अणिमा इसी की द्योतक है।[1] इस काव्य सग्रह में भक्तिप्रधान विषादमूलक तथा प्रशस्ति आवृत्त लक्षन का प्रयास है। अणिमा की अधिकाश कविताए पुराने ढग की हैं परन्तु नए रूप की अवहेलना नहीं हुई। वास्तव में अणिमा सधिकाव्य है। छायावाद और प्रगतिवाद के दुराहे पर खडा कवि अपने सारे साहित्यिक जीवन का लेखा जोखा ले रहा है और नए मैदान में उतर रहा है। कवि अपने हृदय को भी नए पथ पर चलने का उदबोधन देता है—

गया अंधेरा
देख हृदय हुआ है सबेरा
चलना है बहुत दूर है
नहीं यहा परी नहीं हूर
भूसा का जना, कुछ देने के लिए है
निर्जीवन जीव वहन दूर,
और कहीं डाल अपना डेरा—
गया अंधेरा।

इस पर विवेचन करते हुए रामरतन भटनागर लिखते हैं कि हूरों और परियों के कल्पना लोक से उतर कर कवि जीवन के उस ठूठ की ओर आता है जो जल गया है जिसके पास वस्त्र में कुछ भी देने के लिए नहीं है कल्पना का आनन्द भी नहीं है। इसी श्मशान में वह अपना डेरा डालेगा और यही नए मानव की नई सस्कृति की बीन बजायगा।

बेला और नये पत्ते (१९४३) भी इसी वर्ष के प्रकाशन हैं। इनमें कवि

---

१ बच्चनसिंह क्रान्तिकारी कवि निराला पृ० १२४
२ रामरतन भटनागर कवि निराला एक अध्ययन, पृ ? ६

ने अपने को छायावादी परम्परा से पूर्ण प्रतिज्ञान तोड़ लिया है। वह नए काव्य की रूपरेखा गढ़ने में तन्मय है—नव लोक, नूतन दिशा, नवीन अभिव्यक्ति। 'कुकुरमुत्ता' से ही कवि शैली के प्रति कुछ अधिक झुक गया है और टी॰ एस॰ इलियट आदि अंग्रेजी कवियों की तरह शैलीगत प्रयोग करने लगा है। 'बेला' और 'नए पत्ते' में भी दो पृथक्-पृथक् शैलियों—उर्दू और अंग्रेजी को हिन्दी में अपने अपने ढंग से उपस्थित करने का प्रयास किया गया है। इसी समय से ही निराला की मानसिक अवस्था में अस्वस्थता के लक्षण दिखाई पड़ने लगे थे। ऐसी स्थिति में 'बेला' और 'नए पत्ते' जैसी कृतियों की सृष्टि एक अद्भुत घटना है। 'बेला' के सम्बन्ध में कवि लिखते हैं—'बेला मेरे नये गीतों का संग्रह है। प्रायः सभी तरह के नये गीत इसमें हैं, भाषा सरल और मुहावरेदार है। गद्य करने की आवश्यकता नहीं, देशभक्ति के गीत भी हैं। बड़ी नई बात यह है कि अलग अलग बहरों की गजलें भी हैं जिनमें फारसी के छन्दशास्त्र का निर्वाह किया गया है।'[1] कवि की दृष्टि चार बातों पर विशेष रूप से जमी है—गीतों की विविधता, भाषा की सरलता तथा मुहावरेदानी, फारसी के बहरों का प्रयोग और इसे गद्य करने की आवश्यकता। निराला के इस संग्रह में ग़ज़लों का भी समावेश हुआ है।

'नये पत्ते' (सन् १९४६) निराला का अंतिम संग्रह है। वास्तव में, जैसा कि रामरतन भटनागर कहते हैं, निराला के काव्य-जीवन के उत्तरार्ध के सब संग्रहों में से यह संग्रह सबसे महत्वपूर्ण है।[2] गंगाप्रसाद पाण्डेय का भी यही कहना है कि 'नये पत्ते' में उनकी कला, जिसमें काव्य प्रतिभा के साथ-साथ आलोचक की तथ्यपूर्ण मनीषा का भी सम्बन्ध है, अपने चरम विकास को छूती है क्योंकि इसमें निराला के व्यंग्य का विशेष विकास और प्रकाश सामने आता है।[3] बच्चनसिंह का कहना है कि इस संग्रह में निराला ने जहाँ मीठी चुटकियाँ ली हैं वे स्थल बहुत सुन्दर बन पड़े हैं।[4] 'नये पत्ते' की कविताओं को हम कई वर्गों में बाँट सकते हैं। कुछ कविताएँ ऐसी हैं जो नई से पुरानी अधिक हैं। उनमें हमें 'अनामिका' और 'परिमल' के कवि के दर्शन होते हैं। 'देवी सरस्वती', 'निलांजलि' और 'युगावतार परमहंस श्री रामकृष्ण देव के प्रति' इस श्रेणी की रचनाएँ हैं। इनमें हमें निराला की अभिजात कल्पना का प्रौढ़तम रूप मिलेगा।

---

१ निराला, आवेदन 'बेला'

२ रामरतन भटनागर, कवि निराला : एक अध्ययन, पृ० ~२=

३ पाण्डेय, महाप्राण निराला, पृ० १४५

४ बच्चनसिंह, क्रान्तिकारी निराला, पृ० [illegible]

विवकानन्द की कविताम्रा के दो अनुवाद 'चौथी जुलाइ क प्रति' और 'काली माता' भी इसी श्रेणी म आते हैं ।

एक दूसरी श्रेणी 'कलाम म' 'नरत' और 'स्फटिक शिला' कविताम्रा का है जिसम कवि न अध चेतना (सबकाशियस इगो) का मुक्त चलन दिया है—वह बहता गया, बहता गया भाव जस आय लिख दिय । रूसी का य म मायाकोवस्की की कविताए इसी श्रेणी म आती है । यूराप म बिम्बवादी (इमजिस्ट स्कूल) तथा प्रतिययाथ (स्योरिलिस्ट) कविगण इस प्रकार क प्रयाग करते रहे है परन्तु हिन्दी म य पहल प्रयोग है ।

परन्तु 'नय पत्त' म जो सबस महत्त्वपूर्ण है वह है व्याश । इस व्यग्य म कवि नई भाषा और नई शली म सप्राण व्यग्य लिख रहा है । सारी एतिहासिक चेतना (हिस्टोरिकल प्रोसस) सारी राजनीतिक प्रगति का कलम का नोक पर रखकर वह समाज धम राष्ट्र वग विशेष और इनक कणधारा पर छोटें उडाने चला है । 'चर्खा चला' म एतिहासिक चेतना का प्रदशन हुआ है 'राजे न अपना रखवाली की' म सामता समाज की सारी व्यवस्था सार धम क खोखलेपन का प्रदर्शित किया है । 'खुशखबरी' म सिनेमा और नृत्यप्रमियों पर व्यग्य किया है । 'नय पत्त' आधुनिक हिन्दी कविता म एक नितान्त अभिनव वस्तु है । पहली बार इतिहास चेतना सामाजिक और राजनतिक व्यग्य और जनता क लोकनायकत्व क सुदर सुन्दर चित्र हम मिलत ह । 'अचना' और 'आराधना' कवि का आधुनिकतम गीत सग्रह है । इनकी विशेषता गीतिका और अणिमा क समान है ।

इस प्रकार हम दखत है कि आधुनिक का य का शशव यौवन और प्रौढ रूप निराला का लखनी क समथ सहयोग म परिपूर्ण हुआ है, उनका प्रचड प्रतिभा न इसक स्वरूप का सजाया और उसका शृ गार किया है। छायावादी और प्रगतिवादी दोना युगा क व बहुत ही बलिष्ठ कलाकार है क्योंकि दोना युगा की मूल विशेषताए उनके का य म निहित हैं । छायावाद की प्रगतिशील शक्तिया का उभार उनकी कविता म सबस अधिक पाया जाता है । अनुभव क साथ चितन का महत्व का य मे सबसे पहल निराला ने स्वीकार किया । आशय यह है जसा कि गगाप्रसाद पाण्डेय कहत हैं कि दाशनिक चेतना क साथ यथाथ अनुभूति का योग निराला क काय की सबस बडी विशेषता है । भावात्मक स्थितियो के साथ स्वर-सामजस्य क द्वारा चित्रात्मकता का उद्घाटन उनकी अपनी निजी कला है ।[1] छायावाद स लकर आधुनिक युग प्रवृत्तिया क पक्ष या विपक्ष म कवि न

१ महाप्राण निराला पृ० १४३ ४३

अपने विचार काव्य के माध्यम से प्रकट किया है। वैसे भी कवि युग से अलग नहीं है। शेक्सपीयर ने कवि को 'डट वर दी मिरर अपट्ट नेचर'[1] कहा है। काडवेल ने भी अपनी पुस्तक म कवि की सामाजिक तथा व्यक्तिगत परिस्थितियों के अध्ययन के लिए कहा है जिससे कि कवि के समय का उचित विश्लेषण हो सके।[2] रेल्फ फाक्स के ग्रथ दी नावेल एण्ड दी प्युपिल' और एलिजवेथ मनरो की रचना 'दी नावेल एण्ड सोसाइटी' म इस प्रसग पर नवीन प्रकाश डाला गया है। हडसन न अपनी पुस्तक 'इन्ट्राडक्शन टु दी स्टडी ऑफ लिटरेचर' म टेन का उल्लेख करते हुए साहित्य की आलोचना म पारिपार्श्विक परिस्थितियो की उप योगिता के सम्ब ध म लिखा है—

I am to a certain extent following the lead of Taine who attempted to interpret literature in a vigorously scientific way by the application of his famous formula of the race, the mi lieu and the moment meaning by race the heriditary tempera ment and disposition of a people, by milieu, the totality of their surroundings, their climate physical environment political institutions social conditions and the like and by moment the spirit of the period, or of that particular stage of national development which has been reached at any given time[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि कोई भी कवि या लेखक अपने वातावरण से अलग होकर नहीं जीता। वातावरण कवि के जीवन को, उसके व्यक्तित्व को परोक्ष और अपरोक्ष दोनों ही रूपो म कई प्रकार स प्रभावित करता रहता है। यह सच है जबकि शिवप्रसादसिंह कहते हैं कि कवि केवल वातावरण की उत्पत्ति नहीं है वह वातावरण सास्कृतिक और सामाजिक दोनों प्रकार के वातावरणों का निर्माता है। किन्तु निर्माण की यह शक्ति, या उसे बदलने की यह क्षमता भी कवि को उसी से प्राप्त होती है।[4] इस प्रकार यहाँ निराला की पारि पार्श्विक परिस्थितियो तथा युगीन विचारधाराओं पर विवेचन कर लेना होगा क्योंकि वातावरण कवि के जीवन पर सबसे बडा प्रभाव डालता है और उस प्रभाव के बल पर हम अपने आलोच्य विषय पर विचार विमर्श कर पायेंगे।

---

१ हैम्लेट—एक्ट ३, भाग २
२ Caudwell Illusion & Reality A study of the sources of poetry
३ Hudson Introduction to the study of literature Page 9
४ शिवप्रसादसिंह विद्यापति

पारिपार्श्विक परिस्थितियां तथा युगीन विचारधाराएँ

सन १९१५ में निराला का काव्यकाल प्रारम्भ होता है। डा० रामविलास शर्मा का कहना है कि निराला के काव्य तथा वातावरण का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है क्योंकि अपने वातावरण के प्रति उनकी मना सम्य जागृत रहती है।[1] इसी कारण प्रारम्भिक काल में बंगाल में रहते हुए बंगाल तथा बंगला काव्य के प्रति उनकी अपार श्रद्धा रही। उस समय बंगाल में तीन शक्तियां स्वतन्त्र रूप से अपने उन्मेष में व्यस्त थी। प्रथम स्वदेशी आन्दोलन द्वितीय रामकृष्ण मिशन की धार्मिक क्रान्ति, तथा तृतीय रवीन्द्रनाथ का साहित्यिक नव निर्माण। इन तीनों शक्तियां के पीछे जो मूलमन्त्र था वह प्राचीन प्रथा कुरीति को त्यागकर भारत के चिरंतन धर्म, सभ्यता तथा संस्कृति का जागरण करना था। इस सम्बन्ध में रवीन्द्रनाथ ने अपने एक प्रबन्ध में लिखा था—इस बार के नव वर्ष में हम भारतवर्ष के चिर पुरातन में से ही नवीनता का ग्रहण करेंगे—सायाह्न में जब विश्राम की घण्टी बजेगी तब हम चूर होकर नही गिरेंगे—नव आशीर्वाद के साथ उस अम्लान गौरवान्वित माला को लेकर हम अपने पुत्रों के ललाट में उसको बांधकर उन निर्भय चित्त तथा सरल हृदय से विजय पथ की ओर प्रेरित करेंगे। जय होगी भारतवर्ष की विजय होगी! जो भारत प्राचीन है जो प्रच्छन्न है जो बृहत उदार जो निर्वाक है उसकी विजय होगी—हम लोग जो अविश्वासी है मिथ्या बकते हैं आस्फालन करते है हम हर साल कहते है—

मिलि मिलि जाओव सागर लहरी समाना।

उससे निस्तब्ध सनातन भारत की कोई क्षति नहीं होगी। भस्माच्छन्न मौनी भारत चारो ओर मृगचर्म बिछाकर बैठा है—हम लोग जब समस्त चटुलता को लेकर विदा होंगे तब वह शान्तचित्त हमारे पौत्रों के लिए प्रतीक्षा करता रहेगा। वह प्रतीक्षा व्यर्थ नहीं होगी, वे उन सन्यासी के सम्मुख करबद्ध होकर आएंगे और कहेंगे— पितामह हमें मन्त्र दीजिए।

पितामह तब कहेंगे—'ओम् इति ब्रह्म।

वे कहेंगे— भूमैव सुखं नाल्पे सुखमस्ति।

वे कहेंगे— आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान न बिभेति कदाचन।[2]

इसी में स्वदेश प्रेम का मूल मन्त्र छिपा है जहाँ भूमा के लिए, समस्त भारत के लिए अपने सुख को त्यागना पडेगा। यही रामकृष्ण मिशन का सेवाधर्म सम

---

१ रामविलास शर्मा निराला, पृ० २६

२ रवीन्द्रनाथ ठाकुर संकलन

न्वित वेदान्त के ब्रह्म का रहस्य भी छिपा है और यही छिपा है रवीन्द्र के साहित्य का मूलमन्त्र, विश्व के प्रमुख साहित्य का मूलमन्त्र—'आनन्दम्' जो ब्रह्म अर्थात सर्ववाद समन्वित है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' इसी वेदान्त तथा रवीन्द्र के सर्ववाद अर्थात रहस्यात्मक अनुभूति से प्रभावित हुए थे। डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने अपनी पुस्तक में यही कहा है, 'रवीन्द्र और वेदान्त निराला की प्रारम्भिक कला के प्राणि स्रोत माने जा सकते हैं।'[1] डा० रामविलास शर्मा ने भी अपनी पुस्तक में लिखा है बैसवाड़े की आल्हा-नौटंकी संस्कृति के अलावा युवावस्था में उनका सम्पर्क बंगला की दो महान् सांस्कृतिक धाराओं में हुआ। एक तो श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के नेतृत्व में बंगाल का नवीन सांस्कृतिक जागरण और दूसरा स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित श्री रामकृष्ण मिशन। इन दोनों का उन पर स्थायी प्रभाव पड़ा है। और इसमें सन्देह नहीं कि अपने साहित्यिक जीवन के आरम्भ-काल में उन्हें पहले इन्हीं से प्रेरणा मिली।'[2] डा० बच्चनसिंह का भी यही कहना है 'प्रारम्भिक काल में, बंगला के श्रेष्ठ कलाकारों—रविबाबू, चण्डीदास, विवेकानन्द और वैष्णव कवियों का प्रभाव भी इन पर था।'[3] डा० रामरतन भटनागर भी यही कहते हैं कि 'प्रारम्भिक कविताओं में हम कवि की साधना के पहले चरण में पाते हैं। अभी उसका रूप सुस्पष्ट नहीं हो पाया है। वह रवीन्द्रनाथ और विवेकानन्द के काव्य की छांह में आगे बढ़ रहा है।'[4] निराला जी ने स्वयं वेदान्त का साहित्यिक चोला 'विश्ववाद' के बारे में अपना समर्थन प्रकट करते हुए लिखा है "भारत की देन है 'विश्ववाद' सब में एक सूक्ष्म चेतना, हर एक केन्द्र में वह चेतना स्वरूप वह आत्मा वह विभु मौजूद है रवीन्द्र का विश्ववाद योरोप के सिद्धान्त के अनुकूल है, और उनके ब्रह्म समाजी होने के कारण उनका विश्ववाद उपनिषदों से भी सम्बन्ध रखता है।"[5]

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि निराला जी इस भारतीय विश्ववाद में अगाध श्रद्धा रखते हैं जो सर्वप्रथम ऋग्वेद द्वारा प्रवर्तित, फिर क्रमशः उपनिषदों द्वारा विकसित और शंकर द्वारा प्रभावित होता हुआ आधुनिक काल में आकर रवीन्द्र के काव्य में चमका और निराला ने इसको रवीन्द्र से ही ग्रहण

1 विश्वम्भरनाथ उपाध्याय महाकवि निराला काव्यकला और कृतियाँ
2 रामविलास शर्मा निराला पृ० ४७
3 बच्चनसिंह क्रान्तिकारी निराला पृ० ६
4 रामरतन भटनागर निराला एक अध्ययन, पृ० ८१
5 निराला प्रबन्ध-पद्म

किया। बंगाल के स्वदेशी आन्दोलन से भी वे प्रभावित हुए थे जिसका उदाहरण कवि के स्वदेश प्रेम की कविताओं में उपलब्ध है।

कविता लिखते हुए जिस दूसरी युगीन विचारधारा से वे प्रभावित हुए वह था छायावाद। यद्यपि छायावाद के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि वे जहां इससे प्रभावित हुए वहीं वे इसके निर्माता भी हैं क्योंकि कवि केवल वातावरण की उत्पत्ति नहीं है वह वातावरण—सांस्कृतिक और सामाजिक दोनों प्रकार के वातावरणों का—निर्माता भी है। छायावाद द्विवेदी युग के स्थूल दृष्टिकोण के विरुद्ध सूक्ष्म का विग्रह प्रतीत होता है। डा० नगेन्द्र इसको उपयोगिता के विरुद्ध भावुकता, नैतिक रूढ़ियों के प्रति मानसिक स्वातंत्र्य और काव्य के बन्धनों के प्रति स्वच्छन्द कल्पना का विद्रोह कहते हैं।[1] परन्तु इस काव्य-संघात के पीछे एक मौलिक द्वन्द्व भी छिपा हुआ दिखाई पड़ता है। वह द्वन्द्व है हृदयतत्व से आप्लुत भाव संस्कार (concept) तथा मस्तिष्क से प्रेरित विचार (idea) का द्वन्द्व। इस द्वन्द्व का सन् १८ के भारत के नवजागरण (renascence) ने मानव अनुभूतियों की व्यापकता द्वारा और कवियों के निजी जीवन की कुण्ठाओं ने उद्बुद्ध किया प्रधान स्वप्नमय आदर्श और यथार्थमय विभीषिका से उद्बुद्ध इस द्वन्द्व में भावुकता ने विजय पाई। इस भावुकता के रूप को समझने के लिए एक उदाहरण ले सकते हैं—यथा नारी के स्थूल चित्रण द्वारा उसके सौंदर्य की अभिव्यक्ति न कर एक गुलाब के संकेत से नारी के सौंदर्य की अभिव्यक्ति करना उस युग की भावुकता का आश्रय बना। इस भाव पद्धति को हम एडीशन आफ स्ट्रेंजनेस टू ब्यूटी कह सकते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाद एक विशेष प्रकार का भावात्मक दृष्टिकोण है। इस काव्य के दो अन्तर्निहित तत्व हैं—

(१) प्रत्येक छायावादी कवि के मन में अप्राप्य को प्राप्त न करने पर जो वेदना का स्वरूप जग पड़ा है उसकी अभिव्यक्ति इसकी एक प्रमुख विशेषता है।

(२) व्यक्तित्ववाद (अहं के कारण अथवा काव्यगत अनुभूति के कारण) से प्रेरित काव्य के अन्तरंग (intrinsic) सौंदर्य का प्रकाशन इसकी दूसरी विशेषता है।

वस्तुतः यह सब कुछ होने पर भी छायावादी कवियों के द्वन्द्वात्मक चरित्र (split personality) के कारण स्वच्छन्दतावाद रहस्यवाद मानवतावाद राष्ट्रीयता, अध्यात्मवाद सर्वात्मवाद आदर्शवाद सभी विषयों का समाहार वे अपने काव्य में कर लेते हैं। इसी कारण प्रत्येक आलोचक की दृष्टि में छायावाद विभिन्न

---

[1] डा० नगेन्द्र आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां

तत्वों का आकलन है। रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार 'पुराने ईसाई संतों के छायाभास (phantasm) तथा यूरोपीय काव्यक्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद (symbolism) के अनुकरण पर रची जाने के कारण बंगाल में ऐसी कविताएं 'छायावाद' कही जाने लगी थी। अतः हिंदी में भी इस तरह की कविताओं का नाम 'छायावाद' चल पड़ा।'[1] महावीरप्रसाद द्विवेदी छायावाद को बंगला की रहस्यवादी कविताओं का अनुकरण या छायानुवाद मानते थे।[2] प्रसाद के अनुसार जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिंदी में उसे छायावाद नाम से अभिहित किया जाने लगा।[3] श्री वाजपेयी के अनुसार छायावाद बीसवीं शताब्दी की मानवीय प्रगति की प्रतिक्रिया का द्योतक है... नवीन काव्य (छायावाद) में समस्त मानव अनुभूतियों को व्यापकता पूरा स्थान पा सकी।[4] डा० वर्मा इसे स्वच्छन्दवाद (romanticism) का पर्याय मानते हैं।[5]

अतः हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि छायावाद एक विशेष प्रकार का भावात्मक दृष्टिकोण है, वेदना तथा अन्तरंग सौन्दर्य का प्रकाशन जिसके दो प्रमुख तत्व हैं परन्तु कवियों के द्वन्द्वात्मक चरित्र के कारण हर प्रकार के विचारों तथा वादों का समावेश हो गया है। शैली की दृष्टि में ये स्वच्छन्दतावादी बंगाली कवियों से प्रभावित हुए और विशेषतया भाव की दृष्टि में बंगाली कवियों की भावुकता का उन्होंने ग्रहण किया।

निराला इस छायावादी विचारधारा से प्रभावित हुए और साथ ही छायावाद में नवीन तत्वों का समावेश किया। निराला जब सक्रिय होकर काव्य की रचना कर रहे थे तब उन पर नाना प्रकार की विपत्तियां मंडरा रही थीं परन्तु उनके मन ने उन्हें नीचा देखना नहीं सिखलाया था। संग्राम, पराजय, निराशा और बाह्य प्रहारों की कड़ी मार से वे पराजित नहीं हुए। गेटे के अनुसार—A great crisis uplifts a man little ones depress him—सभी बाधाएं उनके लिए भविष्य का पुष्ट पाथेय बन गईं। इसी कारण और छायावादी कवियों की तरह 'वेदना' में व्याकुल वे व्यक्तिगत नहीं बन गए वरन् विद्रोहात्मक बनकर 'विराट्' की उपासना करने लगे। इस प्रकार छायावाद में एक नये तत्व का

---

१ रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, आठवां संस्करण पृ० ६१४
२ दिवेदी : सुकवि किंकर
३ प्रसाद : काव्यकला तथा अन्य निबंध
४ नन्ददुलारे वाजपेयी : आधुनिक साहित्य पृ० ३१६-२०
५ वर्मा : हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव

आकलन किया। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि वे आरम्भ से ही विद्रोही कवि के रूप में हिन्दी में दिखाई पड़े। गतानुगतिकता के प्रति तीव्र विद्रोह उनकी कविताओं में आदि से अन्त तक बना रहा। व्यक्तित्व की जैसी निर्बाध अभिव्यक्ति इनकी रचनाओं में हुई है वैसी अन्य छायावादी कवियों में नहीं हुई। न तो उन्होंने भावों को कोमल करने का प्रयत्न किया है न उनकी समंजस योजना के प्रति किसी प्रकार की आसक्ति दिखाई है। सर्वत्र व्यक्तित्व की अत्यन्त परुष अभिव्यक्ति ही निराला की कविताओं का प्रधान आकर्षण है। फिर भी विरोधाभास यह है कि निराला में अपने व्यक्तित्व को सबसे अलग करके अभिव्यक्त करने की चेतना सबसे कम है।[1] निराला जी का कहना है—साहित्य मेरे जीवन का उद्देश्य है जीने का नहीं, यह सच है कि मैं जीता भी अपने साहित्य में हूँ किन्तु वह मेरे जीने का साधन मात्र नहीं।[2] इसी कारण छायायुग की प्रगतिशील शक्तियों का उभार उनकी कविता में सबसे अधिक पाया जाता है। अनुभव के साथ चिंतन का महत्व काव्य में सबसे पहले निराला ने स्वीकार किया। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के मतानुसार यह युग मुख्यतः तीन बातों पर आधारित था—प्रथम कल्पना, द्वितीय चिंतन और तृतीय अनुभूति। इन तीन श्रेणी के विचारों के प्रस्तार विस्तार से आधुनिक काल की विषयी प्रधान कविता अनेकरूपा दीखती है।[3] वास्तव में काव्य की मुख्य प्रवृत्तियां इन्हीं तीनों मनोवेगों पर आधारित हैं और इन तीनों के समन्वयात्मक महत्व को निराला ने प्रतिपादित किया जो कि दूसरे छायावादी कवि नहीं कर सके। विशेष प्रकार की काव्य प्रक्रिया और नई शैली की नई टेक्नीक निराला की मौलिक देन है क्योंकि उनका मनन चिंतन अथवा दर्शन किसी अध्ययन का परिणाम नहीं बल्कि एक अनुभूतिजन्य विवेक है। गंगाप्रसाद पाण्डेय के अनुसार छायावादी मुक्त रचनाओं और गीतों में सौन्दर्य शक्ति का समावेश सर्वप्रथम निराला ने ही किया यद्यपि यह बंगला के प्रभाव के कारण ही सम्भव हो सका है। प्राचीन छन्द कवित्त को समयानुकूल बनाकर जीवन के साथ साहित्य के विकास का शिलान्यास करने में वे सबसे आगे रहे हैं। गीतों में संगीत का समन्वय जिस जागरूकता और अभिनव चेतनता के साथ निराला ने किया है उस तक किसी दूसरे की पहुंच ही नहीं। उन्मुक्त छंद और मुक्त छन्द, संगीतात्मकता के लिए

१ हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य पृ० ४६७
२ पाण्डेय महाप्राण निराला पृ० १०३
३ हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य, पृ० ४५७
४ पाण्डेय महाप्राण निराला पृ० १०८

छायावाद उनका चिर ऋणी रहेगा। पूरे छायावादी युग की स्निग्ध चाँदनी में निराला की प्रकाश-किरण की उष्णता और मौलिकता पूर्ण रूप से परिव्याप्त है।

जितनी शक्ति और सजगता के साथ उन्होंने छायावादी भावधारा का उपयोग किया और छायावाद को अपने रंग में रंगा, उतनी ही सामर्थ्य के साथ प्रगतिवादी विचारधारा के प्रभाव को भी ग्रहण किया। परिवर्तित जीवन के फलस्वरूप उत्पन्न हुए नये-नये जीवन के मूल्यों और मानों को अपनाते चलना ही तो मानवता के उत्तरोत्तर विकास का रहस्य है। परन्तु प्रगतिवादी विचारधारा से प्रभावित वे साम्यवादी न बनकर समाजसेवी बने। यहाँ तक कि 'कुकुरमुत्ता' में साम्यवादी पर कठोर व्यंग्य कसा है।

युद्धकाल से निराला ने व्यंग्य को ही अधिक अपनाया है। गंगाप्रसाद पाण्डेय का कहना है कि मानवोचित नैतिकता की रक्षा के लिए निराला ने मीठे-तीखे व्यंग्य बाणों का प्रहार करके समाज में एक नई चेतना भरने की चेष्टा की है। स्वार्थी सड़े समाज के पंडों और शासन की लोलुपता में पड़े नेताओं ने निराला के लिए क्या क्या भला बुरा कहा जब लुई सोलहवें ने रूसो और वाल्टायर के लिए कहा था तो इसमें कुछ विचित्रता नहीं।[1] पर इसमें भी सन्देह नहीं कि निराला ने अपने व्यंग्यों से जीर्ण शीर्ण पुरातन संस्कारों और अंधविश्वासों को भस्मीभूत करके देश के जीवन में नवीन उन्मेष का जो मंत्र फूँका वह किसी और तरह सम्भव नहीं था।

दूसरे महायुद्ध के बाद में उनकी सामाजिक चेतना में और भी तेजी आ गई है यों वे प्रारम्भ से ही बहुत सजग कलाकार रहे हैं। इस युग की विषम और स्वार्थ-पूर्ण अनुभूतियों ने उनकी कला को भी परिवर्तित किया है। आज की विषमता और नारकीयता से उत्तेजित भावों को निराला ने अपनी नई कविताओं में सजोकर युग के सामने उसके वास्तविक स्वरूप को खड़ा करने में पूरी सफलता पाई है। 'बेला' और 'नये पत्ते' की कविताओं में नैतिकता, नीति और सामाजिकता के ढोंग का जो भंडाफोड़ निराला ने किया है वह उनकी निर्भीकता और काव्य शक्ति दोनों का परिपुष्ट प्रमाण है। यह ठीक है कि नेता, ब्राह्मण, पुरोहित, पूँजीपति, शासक और पदवीधर तथा शोषक सभी उनके व्यंग्यों के शिकार बने हैं किन्तु समाज तथा युग से प्रभावित होने के कारण उनका लक्ष्य व्यक्ति न होकर सब जगह समाज ही रहा है जैसाकि पाण्डेय तथा निराला के एक वार्तालाप से बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है—

---

[1] पाण्डेय : महाप्राण निराला, पृ० १०१

नये पत्ते पढ़कर मैंने (पाण्डेयजी) कहा— निराला जी ! इसमे तो आपने किसी को नहीं छोड़ा, प्रायः सभी प्रकार के व्यक्तियों पर आक्षेप किया है। बापू यदि तुम मुर्गी खाते, वाली कविता का रहस्य अब मुझे समझ में आ गया। निराला जी ने तुरन्त उत्तर दिया—क्या कहूँ तुम भी ऐसी बात कहते हो, वहाँ व्यक्ति का प्रश्न नहीं, क्योंकि मेरे सामने कविता लिखते समय व्यक्ति कभी नहीं आता, मैं तो पूरे समाज को देखता हूँ। व्यक्ति से मुझे लेना एक न देना दो। इसलिए मुर्गी वाली कविता मैंने अपने किसी संग्रह में नहीं दी। याद रखो व्यक्तिगत व्यंग्य और आक्षेप करना भाड़ का काम है, मैं भाड़ नहीं कवि हूँ। यह ठीक है कि लालच में आकर भाड़ स्तुति भी करता है गांधी पर बहुत सी कविताएं इसी तरह की लिखी भी गई हैं पर मैंने न स्तुति की न व्यंग्य लिखा। हाँ देश की राजनीतिक प्रगति से मुझे संतोष नहीं रहा और उसकी पोल का ढोल मैंने अवश्य बजाया है।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि निराला अपनी पारिपार्श्विक परिस्थितियों तथा युगीन विचारधाराओं से प्रभावित होकर उसके पक्ष या विपक्ष में काव्य की रचना करते हैं। निराला ने युग की उपेक्षा नहीं की वरन् उनका काव्य युग के साथ स्वर मिलाकर सारे युग का युग की सामाजिक अवस्था को आगे बढ़ाता है। कलाकार के सम्मुख सारा युग उपस्थित है वस्तुतः उसकी अभिव्यक्ति में युग सत्य का निहित न रहना असम्भव है। निराला ने अपने साहित्य में इस ज्वलन्त सत्य की कभी उपेक्षा नहीं की। इसी कारण जीवन के अंत तक उन्हें अपने युग का प्रतिनिधित्व करने का श्रेय प्राप्त रहा।

---

१ पाण्डेय महाप्राण निराला, पृ० १४६

द्वितीय अध्याय

निराला के प्रतिपाद्य पर बंगला-प्रभाव

कवि की काव्य रचना का उपादान भाषा है और भाषा के माध्यम से कवि अपने व्यक्तिगत विचारों को प्रकट करता है। विचार के अर्थ में हम दार्शनिक विचारों का ही लेते हैं जिसका सम्बन्ध मस्तिष्क से होता है। परन्तु प्रमुख कविगण अपने विचारों को भाव-कल्पना के द्वारा इस प्रकार काव्य में समाहित कर लेते हैं कि वह किसी भी दृष्टि से दार्शनिक विवेचन नहीं प्रतीत होता। क्योंकि काव्य का मूलतत्व तो रागात्मक या भावतत्व ही है और जो कवि अपने दार्शनिक विचारों को भावमंडित कर प्रस्तुत करने में समर्थ होता है वही वास्तविक अर्थ में कवि या 'कविर्मनीषी' है। यदि कवि ऐसा न करे तो प्रतिपाद्य केवल एक इतिवृत्त घटनामात्र बनकर रह जाता है। रवीन्द्रनाथ का यही कहना है—

'जो वस्तु जैसी है उसके उसी स्वरूप का उद्‌घाटन वैज्ञानिक का कार्य है। इसीलिए विज्ञान आविष्कार करता है। इतिवृत्त घटना का यथाविधि वर्णन करना विज्ञान का कार्य है इसको, घटना का विवरण कहा जा सकता है। किन्तु साहित्य का कार्य आविष्कार भी नहीं, घटना का विवरण भी नहीं साहित्य तो सृष्टि करता है और वह भी प्रकाशमयी सृष्टि करता है।

वास्तव में जहाँ दार्शनिक विचारों पर पूर्ण विराम पड़ जाता है वहीं से काव्य का सूत्रपात होता है। दोनों में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। परन्तु एक प्रच्छन्न है और प्रच्छन्न रूप में रहना ही उसका कार्य है। उस प्रच्छन्नता की अभिव्यक्ति, जड़ से प्रच्छन्न रूप में प्राणरस ग्रहण कर पुष्प का खिलना ही काव्य है।

निराला का प्रतिपाद्य अर्थात मूल विचार का सार है—दार्शनिक अद्वैतवाद जिसको हम रवीन्द्र के शब्दों में सीमा के बीच हो असीम के साथ मिलन की आराधना कहते हैं। इस अध्याय के अन्तर्गत निराला के इस दार्शनिक विचार पर बंगला प्रभाव का विवेचन करेंगे और साथ ही यह भी देखेंगे कि किस प्रकार निराला ने भाव-कल्पना के द्वारा इस दार्शनिक विचार को विराट् चित्र, नारी प्रेम तथा प्रकृति चित्रण के माध्यम से भावमय बनाकर काव्य में अनुस्यूत किया है।

निराला के विचारो पर अर्थात् उनके कवि मानस पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे बगला साहित्य का प्रभाव दिखाई पडता है। इस सम्बन्ध मे श्री सुधाकर चट्टोपाध्याय कहते हैं—

निराला जीर कवि मानस सम्बन्ध आलोचना करले लक्ष्य करा याय ये दीर्घ दिन कलकाता-वास बगला साहित्य अध्ययन रामकृष्ण विवेकानन्द हुते गुरु करे देविकाराणी उदयशकरर आवपण प्रभृतिर माभखान दिय तार बगममता स्निग्ध चित्रटि धरा पड।[1]

इस प्रकार वातावरण तथा साहित्य के युग्म प्रभाव स्वरूप निराला जी का कविमानस बगला विचारो से अत्यधिक प्रभावित हुआ। पारिपार्श्विक परिस्थितिया तथा युगीन विचारधाराओ[2] पर विवेचन करते हुए हमने निराला के व्यक्तित्व पर बगीय वातावरण के प्रभाव का विवेचन किया था। अब उनके विचारो पर बगला साहित्य के प्रभाव की विवेचना करनी है। साधारणतया विचारो से प्रभावित होने के दो सूत्र होते है। प्रथम, व्यक्ति सशक्त विचारो से प्रभावित होता है और इसी कारण निराला रवीन्द्र के विचारो से इतने प्रभावित हुए क्योकि विद्वानो के मतानुसार रवीन्द्र के विचार उपनिषद के विचारो की भाँति सशक्त है। द्वितीयत प्रतिभाशाली व्यक्ति तभी दूसरो के विचारो से प्रभावित तथा प्रेरणा ग्रहण करता है जब उसके मन मे पहले से ही वे विचार आश्रय ग्रहण किये बैठे हैं। अत निराला के प्रतिपाद्य पर बगला प्रभाव का विवेचन करते हुए सर्वप्रथम निराला के वैयक्तिक अनुभूतिजन्य प्रभाव पर विवेचन अपेक्षित है कारण उसी के आधार पर ही प्रतिपाद्य पर पडे प्रभाव विशेष के सूत्रो को हम पहचान सकेंगे तथा उस पर विचार विमर्श कर सकेंगे।

बगाल मे रहने के कारण निराला का मन भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से बगला काव्य की अपरिमीम वस्तु तथा कला सौन्दर्य से प्रभावित होता रहा। *वैयक्तिक अनुभूतिया बगला-काव्य से रस ग्रहण कर पौदे से वृक्ष का रूप धारण करती गई।* वैयक्तिक अनुभूतिया पर रवीन्द्र के विचारो का प्रभाव सबसे अधिक पडा। डा० नगेन्द्र कहते है कि आरम्भ मे छायावादी कवियो की चिंता-पद्धति पर रामकृष्ण परमहस विवेकानन्द और उधर रवीन्द्रनाथ के दार्शनिक विचारो का सीधा प्रभाव पडा।[3] इस सम्बन्ध मे डा० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल[4] का भी

१ सुधाकर चट्टोपाध्याय आधुनिक हिन्दी साहित्ये बागलार स्थान, प्रथम खण्ड पृ० ६६
२ द्रष्टव्य अन्तेष निबध, 'व्यक्तित्व तथा कृतित्व'
३ नगेन्द्र आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तिया पृ० १२
४ खण्डेलवाल आधुनिक हिन्दी कविता मे प्रेम और सौन्दर्य, पृ० ३०१

कहना है कि गीतांजलि के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी-कविता-क्षेत्र में भाव विचार तथा शैली सम्बन्धी एक नवीन क्रांति उपस्थित हो गई। रवीन्द्र ने अपनी उक्त रचना के गीतों में नवीन मानवता धर्म और भक्ति साधना का नवीनतम तथा प्रांजल रूप प्रस्तुत किया। इसमें उन्होंने अपने अनुभूति-पथ में पड़ने वाली मननशील और आनन्दमय आत्मा की गम्भीर तथा रहस्यपूर्ण झाँकियाँ और भावक्रियाएँ सामने रखीं, जिसके द्वारा उन्होंने प्रकृति के प्रति नितान्त मौलिक अनुराग, नवीन प्रतीक विधान, मानवीकरण की कला का सौन्दर्य, नूतन छंद विधान तथा नवीन रूप भाषा व उपमाओं से सम्पन्न एवं अभिनव काव्य-शैली का मुग्धकारी सौन्दर्य कला रसिया को भेंट की। अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद की रमणीय काव्य-शाला तो मोहक वस्तु थी ही किन्तु विषय (नवीन विचारधारा तथा कर्म, ज्ञान व भक्ति समन्वित साधना सम्बन्धी भावनाएँ) और शैली (पद-लालित्य, नूतन छन्द विधान, रमणीय कल्पना तथा स्निग्ध, चपल, रंगीन भाषा आदि)—इन दोनों ही दृष्टियों से गीतांजलि की सामूहिक छवि छटा भारतीय भावना से पूर्ण कवियों के हृदय के लिए अत्यधिक पुष्टिकर तथा रंजनकारी प्रमाणित हुई। नवीन हिन्दी-कवियों के लिए यह रचना काव्य-कौशल का आदर्श हो गई। यह बहुत स्वाभाविक ही था जबकि अंग्रेजी लेखक डी क्यून्सी कहते हैं कि प्रत्येक प्रगतिशील साहित्य के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने में अन्यान्य साहित्य के प्रभावों को भी अंगीकृत करे। जो साहित्य ऐसा करने में समर्थ नहीं होता वह क्रमशः ह्रासोन्मुखी बन जाता है।

दार्शनिक प्रभाव

रवीन्द्र की गीतांजलि के दार्शनिक पक्ष का प्रभाव निराला के विचारों पर सबसे अधिक पड़ा था। यद्यपि रवीन्द्रनाथ के जीवन-दर्शन का मूलमन्त्र 'सीमा के बीच ही असीम के साथ मिलन की आराधना' निराला के मन में प्रारम्भ से ही स्वतः उद्भूत हुए थे। इस सम्बन्ध में निराला ने अपने निबन्ध में लिखा है—

'इसलिए हम समाज तथा साहित्य में अपनी बहुत दिनों की भूली हुई उस शक्ति को आमन्त्रित करना चाहते हैं, जो अव्यक्त रूप से सबमें व्यक्त, अपनी ही आत्मा में विश्व को देखती हुई अपने ही भीतर उसे छाए हुए है, पानी की तरह सहस्रों ज्ञान धाराओं में बहती हुई स्वतन्त्र, किरणों की तरह सब पर पड़ती हुई मधुर, उज्ज्वल, अम्लान, मृत्यु की तरह नवीन जन्मदात्री, सर्वगामी आत्मा की तरह असीमित प्रसार में फैली हुई, प्रत्येक मूर्ति में चिरस्मरणीय।[1]

---

1 निराला : प्रबन्ध पद्म, पृ० २०

और एक स्थान पर निराला ने यही कहा है—

यह ज्योति प्रवाह उपरूप है। जडो म यह चेतन सयोग ही गति है। प्रत्येक पद पर इसका अज्ञात स्पर्श जीव जग करता रहता है, अन्यथा दूसरा चरण उठ नही सकता, उस अपनी सत्ता का निश्चय नहीं हो सकता। वह वही निर्जीव प्रस्तर की तरह अचल है। उसम स्वत विचरण की शक्ति नही पृथ्वी के साथ ही उसे अलक्ष्य क इगित से महाकाश की परिक्रमा करनी पडती है। जीव का हर मास म वह स्पर्श मिलता है।[१]

कविगुरु रवीन्द्रनाथ की सीमा के बीच ही असीम के साथ मिलन की आराधना के अनुरूप निराला क उपयुक्त भाव हैं। रवीन्द्र ने इसको स्पष्ट करते हुए लिखा था—

'क्षुद्र का लकर ही वृहत सीमा का लेकर ही असीम तथा प्रम का लकर ही मुक्ति है। प्रम का आलाक मिलते ही आखो को पसार कर देखता हू कि सामा के बीच सीमा और नही है। प्रकृति का सौन्दय केवल मात्र मेरे मन की मरीचिका नही उसक बीच म असीम का आनन्द ही प्रकाशमान है एव इसी लिए इस सौन्दय क सामने हम अपने का भूल जाते है। मेरी समस्त काव्य रचना का एक ही अध्याय है और उस अध्याय का नाम दिया जा सकता है 'सीमा के बीच ही असीम क साथ मिलन की आराधना।'[२]

निराला क दार्शनिक विचारो पर रवीन्द्र क रूप और अरूप की मान्यताओ का प्रभाव स्पष्टतया पडा था इसका प्रमाण निराला क निबन्ध 'काव्य म रूप और अरूप' को पढने स और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है—

रूप की मायक लघु विराट कल्पनाए ससार क सुन्दरतम रगो स जिस तरह अकित हो उसी तरह रूप तथा भावनाओ का अरूप म मायक अवसान भी आवश्यक है। कला की यही परिणति है और काव्य का सबस अच्छा निष्कर्ष। इस तरह काव्य के भीतर से अपने जीवन क सुख दुखमय चित्रो को प्रदर्शित करते हुए परिसमाप्ति पूर्णता म होगी। जैसे—

> कभी उडते पत्तों क साथ
> मुझे मिलते मेरे सुकुमार
> बढाकर लहरों से लघु हाथ
> बुलाते हैं मुझको उस पार।[३]

१ निराला प्रबन्धपद्म पृ० १४४
२ रवीन्द्रनाथ जीवनस्मृति
३ निराला प्रबन्धपद्म पृ० ११४

निराला के "रूप और अरूप" के इस दार्शनिक विचार को डा० रामरतन भटनागर ने अद्वैत-वेदान्तवाद[1] कहा है तथा डा० बच्चनसिंह ने भारतीय अद्वैतवाद कहा है। और एक आलोचक ने इसे जीव ब्रह्मपरक रहस्यवाद कहा है। परन्तु वास्तव में यह एक नवीन रहस्यवाद है जिसकी पटभूमिका अद्वैतवाद होते हुए भी आधारभूत शिला—रूढ़ि के प्रति विद्रोहस्वरूप मानव मन की चेतना का नवरूपायण है। डा० नगेन्द्र ने इसके सम्बन्ध में कहा है कि 'बहिरंग जीवन से सिमट कर जब कवि की चेतना ने अन्तरंग में प्रवेश किया तो कुछ बौद्धिक जिज्ञासाएं जीवन और मरण सम्बन्धी प्रकृति और पुरुष सम्बन्धी आत्मा और विश्वात्मा सम्बन्धी काव्य में स्वभावतः ही आ गईं। कुछ आध्यात्मिक क्षण तो प्रत्येक भावुक के जीवन में आते ही हैं। अतएव छायावाद की रहस्योक्तियां एक प्रकार से जिज्ञासाएं हैं जो छायावाद के उत्तरार्ध में आध्यात्मिक दर्शन के द्वारा और भी पुष्ट हो गई हैं। परन्तु वे धार्मिक साधना पर आश्रित नहीं हैं। उनका आधार कहीं भावना, कहीं दर्शन विशेष और आरम्भ में कहीं-कहीं मन की छलना भी है।'[2] इसको स्पष्ट समझने के लिए साधारणतया तीन तत्वों पर विवेचन आवश्यक है। प्रथम रूढ़ि के विरुद्ध नवीन का जयघोष। दूसरा नवीन की स्थापना तथा तृतीय, जड़ के विरोध में परिवर्तन की आकांक्षा और उसकी स्थापना के लिए विराट चित्रों का अंकन और विराट चित्र के अंकन के द्वारा स्वतः ही अनन्त की जिज्ञासा का काव्य में समावेश। इस प्रकार धार्मिक साधना पर आश्रित न होते हुए भी आध्यात्मिक विचारों का आवर्तन मानव मन की चेतना के नवरूपायण के कारण सम्भव हो सका।

रूढ़ि का विरोध

प्रथमतः छायावादी कवियों ने जो आत्माभिव्यक्ति की आकांक्षा प्रकट की वह वस्तुतः आत्म प्रसार की आकांक्षा थी। आत्मप्रसार की भावना से उद्बुद्ध होकर उन्होंने जीवन के सभी क्षेत्रों में संकीर्णता का विरोध किया है। मन का उद्बोधन करते हुए निराला कहते हैं—

ताल ताल से रे सदियों के जकड़े हृदय-कपाट
खोल दे कर कर कठिन प्रहार
आये अभ्यंतर संयत चरणों से नव्य विराट
करे दर्शन, पाये आभार।

---

१ रामरतन भटनागर : कवि निराला : एक अध्ययन पृ० १२६
२ नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी-कविता की मुख्य प्रवृत्तियां, पृ० १३

कवि सदियो से जकडे हुए हृदय कपाट को खोलकर नये विराट के आगमन की आकाक्षा कर रहा है। उसका हृदय हर तरह की सकीर्णता का विरोधी है। उसकी इच्छा है कि पृथ्वी की जडता समाप्त हो जाय और परिवर्तन के द्वारा नवीनता का सचार हो सारे ससार म वह रम जाय। उसकी विराटता सपूर्ण धरती स भी सन्तुष्ट नहा है, वह अपनी बाहो म एक ही साथ सारी धरती और अनन्त आकाश बाध लेने का हौसला रखता है। बीसवी सदी की नवीन विचार धारा ने किस प्रकार पुरानी सकीर्णता का दूर कर मानसिक क्षितिज का विस्तार किया है, इस काव्य मे रूप और अरूप नामक निबन्ध म स्पष्टत स्वीकार करते हुए निराला कहते है ससार की भौतिक सभ्यता से सब देशो के गुण ज्ञान के कारण ससार भर के लोगो को आत्मलाभ पहुचा। फलस्वरूप कला म देश भाव की जो सकीर्णता थी, आदान प्रदान की सहृदयता ने उसे तोड दिया। कला की सृष्टि व्यापक विचारो म होने लगी और हर जाति की उत्तमता म प्रम सम्बन्ध जोडकर लोग उसस अपनी जातीय कला को प्रभावित करने लग।[1] निराला जी के अनुसार बगला साहित्य न जो आधुनिक युग म इतनी अधिक उन्नति की वह इसी नये विज्ञान और नई सस्कृति का ही परिणाम है। इसी व्यापक भावना के कारण रवीन्द्रनाथ के चित्रो म विराटता के दर्शन होते है। इस सम्बन्ध म रवीन्द्र-काव्य के महान आलोचक चारुचन्द्र बन्द्योपाध्याय कहते हैं कि रवीन्द्रनाथ का कवित्व पूर्ण जीवन्त है। जीवन का लक्षण है नित्य निरन्तर परिवर्तन। जो जडधर्मी हो उसका परिवर्तन नहा होता है। इसीलिए फ्रासीसी दार्शनिक ने जीवन की सज्ञा निर्देश की है—परिवर्तन क्रमागत निरन्तर परिवर्तन ही जीवन है एव वही सत्य है। कवि की प्रतिभा निर्झरिणी का जिस दिन स्वप्नभग हुआ था उसके बाद से आज तक वह अकारण प्रवरण चलने के आवेग म अपनी समस्त सकीर्णता समस्त बदगुहा तथा सब प्रकार के प्राचीर की सीमा का उल्लघन कर अनन्त के अभिसार की ओर अग्रसर हुई है।[1] निराला न भी इसी भावना स प्रेरित होकर हिंदी म भी हृदय का दिगन्त व्याप्त करने के लिए नवीन विचारधाराओं के आधार पर रूढि का विरोध कर परिवर्तन का जयघोष किया और इस परिवर्तन के प्रवर्तन के द्वारा नवीनता के आगमन की कामना की।

---

१ निराला प्रबन्धपद्म पृ० १५४
चारुचन्द्र बन्द्योपाध्याय रवि-रश्मि भाग २ पृ० ३१५

विराट चित्र

इस परिवर्तन की आकांक्षा तथा अनन्त के प्रति अभिसार ने जहाँ रवीन्द्र को विराटत्व के चित्रों को अंकित करने के लिए उद्बुद्ध किया है वहाँ निराला भी जैसा कि उनके निबन्ध 'काव्य में रूप और अरूप' से पता चलता है इस विराटत्व के विचार से प्रभावित हुए। डा० रामविलास शर्मा कहते हैं कि 'प्रपात के प्रति' कविता में भी रवीन्द्रनाथ ठाकुर के 'निर्झर के स्वप्नभंग' की झलक दिखाई देती है।[1] स्वयं निराला जी भी जब तरंग में पूछते हैं कि—

किस अनंत का नीला अंचल हिला हिलाकर
आती हो तुम सजी मंडलाकर ।

और—'आज तुम्हारा किस विशाल वक्ष स्थल में अवसान'

तो वे नदी की तरंग के माध्यम से अपने विशाल हृदय की तरंग को ही प्रकट करते हैं। 'विराट' की आकांक्षा में अपनी रूढ़िगत सीमाओं को तोड़ने का कितना साहस था यह इसी से मालूम होता है जैसे कि नामवरसिंह कहते हैं कि छायावादी युग में निर्झर अथवा प्रपात पर जितनी कविताएँ लिखी उतनी शायद ही किसी और युग में लिखी गई होंगी। निर्झर छायावादी स्वच्छन्दता का प्रतीक बन गया वह शिलाखण्डों के गतिरोध को तोड़ता हुआ, घन वन अंधकार को पार करके वेग से अनन्त जलनिधि की ओर चल देता है।

अनन्त की जिज्ञासा

यहीं से निराला के दार्शनिक विचारों का तीसरा तत्व हमारे सम्मुख उभर आता है। अर्थात् रवीन्द्र की तरह निराला ने भी प्रारम्भिक-काल में रूढ़ियों के विरुद्ध नवीन तथा रूढ़ के विरुद्ध परिवर्तन का जयघोष किया था और फलस्वरूप अपने काव्य में विराट् का अंकन किया। विराट के अंकन के द्वारा स्वतः ही अनन्त की जिज्ञासा रवीन्द्र की तरह उनके काव्य में प्रतिफलित होने लगी। इस सम्बन्ध में डा० रामविलास शर्मा कहते हैं[2] कि विप्लवी बादल की तरह निराला का प्रपात भी अंधकार में खेलता है। आकाश के बदले यहाँ वन का अंधकार है। कवि पूछता है कि यह बालक का विचार है या वृद्ध का साम्य व्यवहार जो वह हर्ष और विषाद में अन्तर नहीं देखता। बुद्धि और चेतना का विकास जड़ प्रकृति से ही हुआ है। गतिहीन प्रपात पत्थरों से उत्पन्न हुआ है।

---

१ रामविलास शर्मा : निराला, पृ० ६२
२ रामविलास शर्मा : निराला, पृ० ६५

उसका पिता पवन है जो उसकी राह रोकते हैं। प्रपात उनसे टकराता है लेकिन जब उन्हें पहचान लेता है तो उसके होठों से मीठी मुस्कान फूट पड़ती है। वह आगे बढ़ चलता है परन्तु जड़ पत्थर के भीतर भी वह अपनी तान भर देता है—

बस अजान की ओर इशारा करके चल देते हो,
भर जाते हो उसके अन्तर में तुम अपनी तान।

निराला के 'तरंगों के प्रति' का भी यही भाव है—

उस असीम में ले जाओ
मुझे न कुछ तुम दे जाओ।

रवीन्द्र की प्रतिभा निर्झरिणी भी जैसाकि हम ऊपर कह चुके हैं अकारण अबरण चलने के आवेग में अपनी समस्त संकीर्णता, समस्त बद्धगुहा तथा सब प्रकार के प्राचीर की सीमा का उल्लंघन कर अनन्त के अभिसार की ओर अग्रसर हुई है। रवीन्द्रनाथ सबको क्रमागत सीमा का अतिक्रम कर समस्त बाधा का उत्तीर्ण कर सुदूर का प्यासा होकर अग्रसर होने के लिए आह्वान कर रहे हैं।[1] इस प्रकार रवीन्द्र के 'अनन्त' से ही निराला के 'अजान' ने प्रेरणा ग्रहण की है और काव्य में 'सीमा और असीम' के भाव को स्थान दिया है— वस्तुत यह अनन्त अजान या असीम ही ब्रह्म है जिसकी प्राप्ति कवि की अंतिम और चरम अभिलाषा है—

नव जीवन की प्रबल उमंग,
जा रही मैं मिलने के लिए पारकर सीमा
प्रियतम असीम के संग। (धारा)

रवीन्द्र की नदी की धारा भी 'असीम" की तरह 'अकूल' से मिलने जा रही है—

ओरे देख सेइ स्रोत हयेछे मुखर
तरणी काँपिछे थरथर।
तीरेर सब्चय तोर पड़े थाक तीरे
ताकास्ने फिरे!
सम्मुखेर वाणी
निक तोरे टानि

---

१ आमादेर रवीन्द्रनाथ आमादेर सकलके क्रमागत सीमा के अतिक्रम करिया सकल बाधा उत्तीर्ण हइया सुदूरेर पिपासी हइया अग्रसर हइते आह्वान करितेछेन—प्रति निमेषइ येतछे समय निरन्तर चये थाका कुछ नय। चारुचन्द्र बन्द्योपाध्याय रविरश्मि, पृ० ३१६
■ निराला अपरा, पृ० १०६

महाস্রোতে
পশ্চাতের কোলাহল হতে
অতল আঁধারে-অকূল আলোতে।

रवीन्द्रनाथ की काव्य-साधना के मूल में सीमा असीम की मिलन लीला के भाव निहित हैं। किन्तु शंकर के दार्शनिक मत के अनुयायी कवि ईश्वर को "एब्सोल्यूट बीइंग" अथवा निर्गुण सत्ता के रूप में नहीं देखता है। विश्व के नाना वैचित्र्य के बीच कवि ईश्वर की उपलब्धि करते हैं। जब कवि ने अपने जीवन में विश्व प्रकृति के अपरूप सौन्दर्य की उपलब्धि की, तब उन्होंने "मम 'जीवन-देवता'" की लीला का प्रत्यक्ष देखा। किन्तु यह देवता निर्गुण निरुपाधि ब्रह्म नहीं है, इसे रवीन्द्रनाथ ने बहुत-से स्थानों पर प्रकट किया है।[1] कवि का ईश्वर विश्व के नाना रूपों में अपने को नाना रूप में प्रकट करता है। इस सम्बन्ध में सुधाकर चट्टोपाध्याय कहते हैं कि—

'एइ सीमा असीमेर मिलन-लीला नरनारीर मिलन विरह-लीलार रूपके साभिव्यक्त परिव्यक्त हयेछे। जीवन देवता' कखनओ 'प्रियतमा' कखनओ प्रियतम-तारइ सग चलेछे जीवन जीवन लुकाचुरिर खेला। एइ अनुभूति रवीन्द्रनाथ थेके सञ्चारित हयेछे छायावादी कविताय।'[2]

डा० रामरतन भटनागर भी डा० सुधाकर चट्टोपाध्याय के अनुरूप कहते हैं—

"निराला का विश्वास है कि दृष्ट सत्ता के पीछे एक अदृष्ट महान सत्ता है। इसी अदृष्ट सत्ता के प्रति कवि ने प्रार्थनात्मक गीत लिखे हैं। सम्भव है जिसे निराला ने 'जीवन-खेवनहार' (खेवा) कहा है वह रवीन्द्रनाथ का 'जीवन देवता' हो।'[3]

इस तरह शंकर के अद्वैत ब्रह्म की तरह निराला अपने असमी ईश्वर को निर्गुण सत्ता के रूप में नहीं देखते हैं। विश्व के नाना वैचित्र्य के बीच कवि ईश्वर का दर्शन करता है। विश्व प्रकृति के अपरूप सौन्दर्य को कवि ने अपने जीवन में जब अनुभव किया, तब उन्होंने उसमें असीम रूपी जीवन-देवता की

---

1 But in our religion can only have its significance in its phenomenal word comprehended by our human self this absolute conception of Brahman is outside the subject of my discussion

—Tagore the Religion of man

2 सुधाकर चट्टोपाध्याय आधुनिक हिन्दी साहित्ये बांग्लार स्थान—खण्ड १, पृ० ७६

3 रामरतन भटनागर कवि निराला एक अध्ययन, पृ० १२७

लीला को प्रत्यक्ष देखा। कवि का असीम ईश्वर विश्व के नाना कर्मों में अपने को नाना रूपों में प्रकट करता है। इस प्रकार जीव ब्रह्म अथवा सीमा असीम की मिलन लीला को प्रकट करने के लिए कवि निराला कभी तो प्रकृति का सहारा लेते हैं तो कभी मानुषी प्रेम का क्योंकि उनका ब्रह्म जगत व्यापी है। यह रवीन्द्र का ही प्रभाव है।

इस सम्बन्ध में रवीन्द्रनाथ कहते हैं—

'जीवेर मध्ये अनन्तके अनुभव कराराइ नाम भालवासा प्रकृतिर मध्ये अनुभव करार नाम सौन्दर्य सम्भोग। इस प्रकार निराला ने भी "अनन्त" को काव्यमय रूप देने के लिए प्रकृति तथा नारी प्रेम को चुना है।

प्रकृति

श्रीमती महादेवी वर्मा ने छायावाद की आलोचना के प्रसंग में कहा है कि छायावादी कविगण बहिर्विश्व के आपात विच्छिन्न खण्डवस्तु समूह के मध्य में एक अखण्डता, एक निरवच्छिन्नता अनुभव करते हैं। रवीन्द्रनाथ के बीच में यह उपलब्धि बहुत ही छोटी उमर से पाई जाती है। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपनी *जीवन स्मृति* में इसका विवरण दिया है।[1] रवीन्द्रनाथ की साधना में प्रकृति की परिदृश्यमान सीमा के बीच से अनजान असीम पुरुष की ओर चित्त की परिक्रमा ही व्यक्त है। इस प्रकार रवीन्द्र ने प्रकृति के साथ दो सम्बन्ध जोड़ दिए हैं—

१ *प्रकृति को सजीव सत्ता के रूप में स्वीकार करना अर्थात प्रकृति में मानवीयता का सम्बन्ध जोड़ देना।*

२ प्रकृति में आध्यात्मिक रूप का समर्पण अर्थात "जो प्रकृति, जो वसन्त पुष्पभरणा प्रकृति अपने चंचल पेलव सौन्दर्य को लेकर रोमान्टिक रवीन्द्र के पास प्रेम की वाणी वहन कर लाई, उस प्रकृति को ही ब्राह्म रवीन्द्रनाथ उपनिषद अनुरक्त मिस्टिक रवीन्द्रनाथ ने ईश्वर के लीलाकेन्द्र के रूप में ग्रहण किया है सुन्दरम की अभिव्यक्ति के रूप में ग्रहण किया है।

निराला ने रवीन्द्र के अनुरूप प्रकृति में सजीव सत्ता का अंकन किया है और साथ ही उसमें एक भावमय आध्यात्मिक तत्व का भी संयोजित किया है—

अम्बर पथ से मन्थर
सन्ध्या श्यामा

---

१ All things that seemed like vagrant waves were revealed to my mind in relation to a boundless sea

उतर रही पृथ्वी पर
कोमल-पद भार।
मन्द-मन्द बही पवन
खुल गई जुही,—
अंजलि कल विनत नवल
पदतल उपहार।[1]

और रवीन्द्र—

ऐ ये सन्ध्या खुलिया फेलिल तार
सोनार अलंकार।
ऐ ये आकाशे लुटाय आकुल चुल
अंजलि भरि धरिल तारार फुल
पूजाय ताहार भरिल अन्धकार।

डा० सुधाकर चट्टोपाध्याय कहते हैं कि रवीन्द्र की तरह निराला का कवि जीवन भी प्रकृति के द्वारा दोलायमान है। केवल शब्द-गन्ध रूप रस तथा स्पर्श नहीं, जिसको देखा नहीं जाता, उसको भी उन्होंने प्रकृति के बीच अनुभव किया है।[2] निराला का एक गीत है—

कल्पना के कानन की रानी।
आओ, आओ मृदु-पद मेरे
मानस की कुसुमित वाणी
सिहर उठें पल्लव के दल नव क्षण,
बहे सुप्त परिमल की मृदुल तरंग,
जागे जीवन की नव ज्योति अमन्द,
हिले वसन्त-समीर-स्पर्श से
वसन तुम्हारा धानी।[3]

रवीन्द्र के प्रभाव स्वरूप निराला के उपर्युक्त गीत में, प्रकृति में आध्यात्मिक भाव का आरोप कर, अपनी जीवन-संगिनी का आह्वान किया गया है, जिसमें कवि के मन में नव-जीवन की सञ्जीवनी के भाव भर आयें। रवीन्द्र की एक कविता में बिल्कुल यही भाव व्यक्त है—

---

१ निराला : गीतिका
२ चट्टोपाध्याय : आधुनिक हिन्दी काव्य साहित्ये बांगलार प्रभाव प्रथम खण्ड, पृ० १०५
३ निराला : गीतिका

खुले दाओ द्वार,
नीलाकाश करो अवारित,
कौतूहली पुष्पगन्ध कक्षे मोर करुक प्रवेश,
प्रथम रौद्रेर आलो
सर्वदेहे होक संचारित शिराय शिराय,
आमि बेंचे आछि तारि अभिनन्दनेर वाणी
मर्मरित पल्लवे पल्लवे आमारे शुनिते दाओ।

और इस जीवन संगिनी के रहस्यात्मक रूप का निराला ने रवीन्द्र की तरह प्रकृति में अवलोकन किया है—

कौन तुम शुभ्र किरण वसना ?
सीखा केवल हँसना, केवल हँसना—
शुभ्र किरण वसना।
मदमय भर अंग गंध मृदु
बादल अलकावलि कुंचित ऋतु,
तारक हार, चंद्रमुख, मधुऋतु
सुकृत पुंज अशना[1]—

अथवा—

गगन घन विटपी सुमन नक्षत्र ग्रह, नव ज्ञान
अन्तरे तुमि हास्यानना ज्योत्स्ना वसन परिधान

और रवीन्द्र—

अयि सन्ध्ये
अनन्त आकाशतले बसि एकाकिनी
केश एलाइया
मृदु मृदु ओ की कथा कहिस आपन मने
गान गेये गेये
निखिलेर मुख पाने चेये

अथवा—

कि विचित्र सुरतान
भरपूर करि प्राण
के तुमि गाहिछ गान आकाश मण्डले !

---

१ निराला गीतिका

ज्योतिर प्रवाह माझे
विश्वविमोहिनी राजे
के तुमि लावण्यलता मूर्ति मधुरिमा !

नारी प्रेम

इस प्रकार अरूप 'जीवन-सगिनी' को प्रियतमा बनाकर प्रेम का अभिषेक निराला ने रवीन्द्र की प्रेरणा स्वरूप किया है। इस सम्बन्ध में निराला ने स्वय कहा है—

'साहित्य में इस अरूप की स्वतन्त्र सत्ता को नारियों में स्थिर रूप दिया गया है। कलाविदों ने वहीं पुरुष और प्रकृति का सौहार्द्य, दोनों के अपार प्रेम का निरन्तर योग देखा। आकर्षण दोनों के सभोग विलास में ही है वह और अच्छा जब एक ही आधार में हो। यही बीज मन्त्र है जिसको जप कर उन्होंने नारियों के अगणित अपार रूपों में सिद्धि प्राप्त की। ये सिद्ध रूप परवर्ती काल के साहित्य की आत्मा में प्राणों का प्रवाह भरते गए हैं। बाह्य महाशून्य की चेतना-स्पर्श से जगी हुई असख्य रूपसी अप्सराओं की तरह ये साहित्य की पृथ्वी पर चपल चरण, नम्र, शिष्ट भिन्न भिन्न अनेक प्रकृति की श्री शृगारमयी रूप के ऊषालोक में अपलक ताकती हुई लावण्य की ज्योति से पुष्ट-यौवना युवती, कुमारियाँ हृदय शून्य के चेतन स्पर्श से जगकर उठी हुई हैं जो मूर्त बाह्य रूप राशि ही की तरह अमर हैं जिनमें बाह्य स्वतन्त्रता की तरह अपार आन्तरिक स्वतन्त्रता मिलती है और बाह्य के साथ अन्तर के साम्य का निरुपद्रव सदेश।'[1]

रवीन्द्र ने जैसे कि हम कह चुके हैं, नर-नारी के प्रेम को आध्यात्मिक साधना माना है। उनका 'जीवन देवता' कभी प्रियतम है तो कभी प्रियतमा और इस प्रकार प्रेम की व्याकुलता, विरह, मिलन के द्वारा सीमा की असीम के साथ मिलन-साधना साधित हुई है। डा० सुधाकर चट्टोपाध्याय के अनुसार रवीन्द्र के मानुषी प्रेम का रूपक 'ईश्वर एषणा' की, छायावादी कविता की विषय वस्तु में, अभिव्यजना हुई है। परन्तु यह प्रेम सूफियों का सम प्रकृति (होमोसेक्सुअल) का प्रेम नहीं है वरन् यह प्रेम विषमजातीय (हीटरोसेक्सुअल) नरनारी का प्रेम है। रवीन्द्र ने इस प्रेम रूपक को बाउल, सन्त, वैष्णव कवियों से ग्रहण किया है और निराला ने रवीन्द्र से, जो निराला-काव्य में निम्नलिखित दो रूपों में प्रकट हुआ है—

१ सीमा और असीम—प्रिया और प्रिय अथवा प्रिय एवं प्रिया के प्रेम रूप

[1] निराला रूप और नारी प्रबन्ध पद्य, पृ० १४४

म प्रकट हुआ है।

२ भक्त भगवान का प्रेम 'तुम और 'मैं' के रूप म प्रकट हुआ है। रवीन्द्रनाथ के प्रकृति वर्णन म अधिष्ठित नारी उनके जीवन की अधिष्ठात्री देवी म विवर्तित होती है और उसके प्रति प्रम निवेदन ही उनके नारी प्रम का मूल वक्तव्य है, जहा प्रम मे आध्यात्मिक सीमा असीम का रग चढा हुआ है—

नयन दुटि मेलिले कबे
  परान हबे खुशि
ये पथ दिया चलिया याब
  सबारे याब तुषि
    रयेछ तुमि, एकथा कबे
    जीवन माझे सहज हबे—
    आपनि कबे तोमारि नाम
    ध्वनिब सब काजे।

एव—

डाक रे आवार माझिरे डाक
  बोझा तोमार याक भेसे याक
जीवन खानि उजाड कर
  सँपे दे तार चरणमूले।

एव—

अनेक दिले क्लास एखन प्राण,
  छेडेछि सब अकस्मातेर आशा।
एखन केवल एकटि पेलेइ बाँचि
एसेछि ताइ घाटेर काछाकाछि
एखन शुधु आकुल मने याचि
  तोमार पाने खेयार तरी भासी

निराला के प्रम निवेदन म भी यही भाव निहित हैं—

प्रथम पलक खुलते ही देखा
चरण चिह्न नूतन पथ रेखा

एक निमेष के लिए देख तन
जीवन धन कर चुकी समपण।

यह सुन्दरी ही निराला के काव्य म देवी रूप म परिवर्तित होती है

डा० सुधाकर चट्टोपाध्याय कहते हैं—

"रवीन्द्रनाथेर जीवन देवता वा जीवन-देवीर समे ये लीलाखेलार व्यापार रवीन्द्र-काव्य ये विशिष्टतादियेछ सेइ लीला एखानेओ लक्ष्य करि। रवीन्द्रनाथ वलछेन—

कखन थेके पथ चेये आर काल गुणे
वसेइ आछि तोमार लागि, हाय प्रिय।
टुटल यखन सकल अवगुण्ठन ह,
रहल यखन केवल सुखेर सुण्ठन ह
काल अकालेर बाछ विचारे चुप प्रिय।"[1]

अर्थात—रवीन्द्रनाथ के जीवन देवता अथवा जीवन-देवी के साथ लीला खेल के सम्बन्ध में जिस प्रकार रवीन्द्र काव्य ने विशिष्टता का अजन किया है उसी प्रकार की लीला निराला काव्य में भी परिलक्षित होती है। निराला जी ने कहा है—

"कब से मैं पथ देख रही, प्रिय!
और न तुम्हारे रेख रही, प्रिय!
तोड दिये जब सब अवगुण्ठन
रहा एक केवल सुख सुण्ठन
तब क्यों इतना विस्मय कुण्ठन?
असमय समय न करो, खडी प्रिय।"[2]

अनन्त के साथ मिलन, विरह का वर्णन हमने आगे चलकर निराला के प्रतीक-वर्णन[3] में विस्तार से किया है। आध्यात्मिक प्रतीक 'तुम और मैं' पर रवीन्द्र प्रभाव का विवेचन भी वहां विस्तार से किया गया है। यहां रवीन्द्र के जीवन-देवता सबंधित उन दो तत्वों पर विवेचना अभीष्ट है जिससे जीवन-देवता रूपक की पूर्णता प्राप्त होती है और जिसका प्रभाव हम निराला की कविताओं में दिखाई पडता है।

प्रथम, जीवन-देवता कवि को लेकर जन्म जन्मान्तर के क्रीडागेंत्र में सुख दुःख के खेल में मत्त हुए हैं। वे ही कवि से कविता लिखवा रहे हैं, गाना गवा रहे हैं। वे यन्त्री हैं तो कवि यन्त्र।

---

१ चट्टोपाध्याय आधुनिक हिन्दी साहित्ये बाङलार स्थान, खण्ड १, पृ० १०१
२ निराला गीतिका
३ देखिए अनेक निबंध, अध्याय कला-पक्ष

द्वितीय, और फिर जब कवि इस पृथ्वी पर प्रत्यक्ष रूप में नहीं रहेंगे तब परोक्ष रूप में वे प्रत्येक खेल में ही हमारा साथ देंगे।

प्रथम तत्व से सम्बन्धित जीवन देवता के साथ लीला खेल के चित्र निराला की कविता में भी पाये जाते हैं। निराला की जीवन देवी यन्त्री है तो निराला केवल यन्त्र—

तुम्हीं गाती हो अपना गान,
व्यर्थ मैं पाता हूँ सम्मान।[1]

अथवा—

कैसे गाते हो ? मेरे प्राणों में
आते हो, जाते हो

लोग बाग बैठे ही रह गए,
अपने में अपना सब कह गए,
सही छोर उनके जो गह गए
बार बार उन्हें गहाते हो।[2]

रवीन्द्रनाथ की *'अन्तर्यामी'* के साथ निराला की देवी यहाँ एक हो गई हैं—

आमि कि गो वीणा यन्त्र तोमार ?
व्यथाय पीड़िया हृदयेर तार
मूर्च्छना भरे गीत झंकार
ध्वनिछ मर्म्ममाझे।

'मोर प्रेम दिये तोमार रागिणी
कहितेछ कोन् अनादि काहिनी,
कठिन आघाते ओगो मायाविनी
जागाओ गम्भीर सुर।

इसके अतिरिक्त रवीन्द्र के जीवन-देवता सम्बन्धी द्वितीय तत्व अर्थात् कवि के इस पृथ्वी पर न रहने पर भी उनकी 'अलक्ष्य नित्य स्थिति' के समान निराला ने भी जीवन देवता के चित्त में उनकी चिरंतन नित्य स्थिति को ही प्रकट किया है। रवीन्द्रनाथ कहते हैं—

---

१ निराला गीतिका
२ बेला

यखन जमबे धुला तानपुराटार तारगुलाय
काटा लता उठबे घरेर द्वारगुलाय,
फुलेर बागान घन घासेर परबे सज्जा वनवासेर,
श्यामोला एसे घिरबे दिघिर धारगुलाय—
आमाय तखन नाइ वा मने राखले
तारार पाने चेये चेये नाइ वा आमाय डाकले ।

तखन के बले गो, सेइ प्रभाते नेइ आमि ।
सकल खेलाय करबे खेला एइ—आमि ।
नतुन नामे डाकबे मोरे बाधबे नतुन बाहुर डोरे,
आसब याब चिरदिनेर सेइ—आमि ।
आमाय तखन नाइ-बा मनें राखले,
तारार पाने चेये चेये नाइ वा आमाय डाकले

और निराला—

याद रखना, इतनी ही बात
नहीं चाहते, मत चाहो तुम
मेरे अम्ब, सुमन-दल नाथ !
मेरे बन में भ्रमण करोगे जब तुम,
अपना पथ श्रम आप हरोगे जब तुम,
ढक लूंगी मैं अपने दृग-मुख
छिपा रहूं गी गात ।
सरिता के उस नीरव निर्जन तट पर
आओगे जब मन्द चरण तुम चलकर
मेरे शून्य घाट के प्रति, करुणा कर
देखोगे नित प्रात ।
मेरे पथ की हरित लतायें, पुष्प दल,
मेरे श्रम लिखित देखोगे अचपल,
पलकहीन नयनों से तुमको प्रतिपल
हेरेंगे अज्ञात ।
मैं न रहूं गी जब, सूना होगा जग,
समझोगे तब, इह मगस बसरव सब

था मेरे ही स्वर से सुन्दर जगमग,
चला गया सब साथ।

निराला के जीवन-देवता रवीन्द्र के जीवन देवता के समान द्वैतभाव सम्पन्न होते हुए भी अद्वैत का दृष्टिभेद है और यह अद्वैत जीवन देवता कभी-कभी विवेकानंद के प्रभाव स्वरूप मातृरूप में भी प्रकट हुआ है। इस सम्बन्ध में डा० रामविलास शर्मा कहते हैं कि इष्टदेव की मातृ रूप में कल्पना को स्वामी विवेकानन्द ने ही लोकप्रिय बनाया था।[१] 'देवि तुम्हे मैं क्या दूं' 'एक बार बस और नाच तू श्यामा' आदि रचनाओं में यह प्रभाव स्पष्ट है।

गीतिका का एक गीत—

मा, तू भारत की पृथ्वी पर
उतर रूपमय माया तन धर,
देखता नटवर पद्म कर,
फला शक्ति नवीन—
फिर उनके मानस-शतदल पर
अपने चारु चरण युग रख कर
खिला जगत तू अपनी छवि में
दिव्य ज्योति हो लीन!

उपर्युक्त उदाहरण में रवीन्द्र का—

विकशित विश्ववासनार
अरविन्द माझखाने पादपद्म रेखे तोमार
अति लघुभार।

—भाव स्पष्टतया लक्षित होता है। जीवन देवता की इस सेवा भावना में विवेकानन्द के अद्वैत रहस्यवाद की मूल भावना निहित है। स्वामी जी जन सेवा के माध्यम से ब्रह्म प्राप्ति का उपदेश देते हैं और वृहत्तर मानवता वाद को ही ईश्वर की श्रेष्ठ साधना मानते हैं। रवीन्द्र और निराला की ब्रह्म साधना भी वस्तुतः लोक सेवा ही है इसीलिए रवीन्द्रनाथ के जीवन देवता का पर्यवसान मानव की वृहत्तर भूमि में होता है जहां मानव से बढ़कर और जीवन से उच्चतर और कोई पदार्थ नहीं है। निराला ने भी, रवीन्द्र के इस भाव की तरह ('जस एबार फिरामो मोरे' वाली कविता में), अपने जीवन-देवता से, जगत् तथा जीवन के सुख-दुःख के भीतर आत्मनियोग के लिये, प्रेरणा की मांग की है—

१ रामविलास शर्मा निराला, पृ० ६५

जीवन की तरी खोल दे रे,
जग की उत्ताल तरंगों पर,
दे चढ़ा पाल कलधौत धवल,
रे सबल उठा तट से लंगर।

इस प्रकार, निराला के दार्शनिक विचार अर्थात सीमा असीम से सम्बन्धित तीसरा तथा अन्तिम तत्व हमारे सम्मुख उभर आता है। यह तत्व है मानवतावाद का।

मानवतावाद

सीमा और असीम के मूल में मानवतावाद का सूक्ष्म किन्तु दृढ़ तन्तु ग्रथित है क्योंकि जो असीम अथवा अनन्त को पाने का इच्छुक है उसके लिए कुछ भी तुच्छ नहीं, वरन सभी अनन्त के रूप हैं। रवीन्द्र का द्वैतवाद अर्थात कवि और जीवन देवता अद्वैत का ही दृष्टिभेद है इसीलिए रवीन्द्र के लिए सम्पूर्ण जगत ब्रह्म का ही लीलाक्षेत्र है—

सीमार माझे असीम तुमि बाजाओ आपन सुर।
आमार मध्ये तोमार प्रकाश ताइ एत मधुर।

सम्पूर्ण जगत ब्रह्म होने के कारण रवीन्द्र के लिए तुच्छातितुच्छ वस्तु का भी महत्व है। जगत् में छोटा या तुच्छ नाम की कोई वस्तु नहीं है। सीमा को लेकर ही असीम है। सीमा को छोड़ देने पर असीम शून्यता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसीलिए सम्पूर्ण मानवता से कवि को प्रेम है। कवि की प्रतिभा निर्झरणी जिस दिन समस्त बाधा का उल्लंघन कर अनन्त के अभिसार में अग्रसर हुई थी उस दिन उसने सम्पूर्ण मानव-समाज को भी अपने साथ चलने का आह्वान किया था। पथ के नेने में कवि आगे ही बढ़ जाता है—

पथेर नेशा आमाय लेगे छिल
पथ आमारे दिये छिल डाक।

निराला के 'सीमा असीम' का दार्शनिक तत्व भी इस मानवतावादी गति धर्म से प्रभावित है। कवि प्रत्येक मानव को पुकार पुकार कर जड़ता से मुक्त होकर जगने के लिए आह्वान कर रहा है—

कब से मैं रहा पुकार—
जागो फिर एक बार
उगे अरुणाचल में रवि
आई भारती रति कवि-कण्ठ में
क्षण-क्षण में परिवर्तित
होते रहे प्रकृति पट,

गया दिन, आई रात,
आई रात, खुला दिन
ऐसे ही ससार के बीत विन पक्ष, मास
वर्ष कितने ही हजार—
　जागो फिर एक बार।[1]

रवीन्द्र के 'कुडिर भितर कांदिछे गंध अंध हये' के समान निराला को भी समय बीत जाने का डर है इसलिए वह सम्पूर्ण बाधा को तोडकर फूल के विकास की माग करता है—

टूटे सकल बन्ध
कलिके, दिशा ज्ञान गत हो रहे गन्ध।[2]

विकास के लिए यह आकांक्षा निराला ने रवीन्द्रनाथ से प्राप्त की है। रवीन्द्रनाथ ने मानव जीवन के विकास की इस स्थिति को गति म खोजा है। गति म ही मानव जीवन का सत्य निहित है—यही रवीन्द्रनाथ की अनुभूति थी। परन्तु इस अनुभूति की कल्पना आधुनिक युग म सवप्रथम फ्रास के प्रकाड दाशनिक वेगसँ ने की थी इसलिए उनके दशन का गतिवाद नाम से अभिहित किया जाता है। आधुनिक दाशनिक-वज्ञानिक कहते है कि निरवच्छिन्न स्थान व काल नाम की कोई वस्तु इस पृथ्वी पर नही है, केवल वस्तु की गति के द्वारा ही हमारे मन म स्थान तथा काल का ज्ञान समाहित होता है।[3] अतएव एकमात्र गति ही सत्य है। रवीन्द्रनाथ का सम्पूर्ण बलाका काव्य इस गतिवाद का ही प्रचार करता है। किन्तु रवीन्द्रनाथ वेगसँ की तरह केवल उद्देश्यहीन गति म विश्वास नही करते हैं। वेगसँ ने जीवन म केवलमात्र गति का ही अवलोकन किया था परन्तु उन्होने असीम के साथ जीवन के योग-सूत्र का अनुभव नहा किया। रवीन्द्रनाथ की गति अनन्त के साथ मिलनेच्छा की गति है क्योकि अनन्त के साथ सीमा के मिलने पर ही आनन्द का अनुभव हो सकता है। भारत के प्राचीन युग म भी गति के द्वारा आनन्द की प्राप्ति का भाव ध्वनित हुआ था—

चरण व मधु विन्दति—चरण स्वादुम उदुम्बरम।
सूयस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरण ॥
—चरवेति, चरवेति—

---

१ निराला अपरा
२ निराला गीतिका
३ द्रष्टव्य—The new cosmogony journal of philosophial studies July 1929

अर्थात्, जो चलता है वह मधु को प्राप्त कर सकता है, जो चलता है वह अमृतमय स्वादु फल का लाभ करता है। यह देखो सूर्य की दीप्ति महिमा—वह जो चलते चलते कभी तन्द्राविष्ट नहीं होता। अतएव, चलो, चलो। रवीन्द्र की गति में इस आनन्द प्राप्ति के भाव निहित हैं—

जीवनेर खरस्रोते भासिछे सदाइ
भुवनेर घाटे घाटे।

आकाशेर प्रति तारे डाकिछे ताहारे।
तार निमन्त्रण लोके-लोके
नव-नव पूर्वाचले आलोके आलोके।

निराला के भी सीमा असीम की मिलन साधना का अन्तिम लक्ष्य आनन्द की प्राप्ति है। असीम से मिलने के लिए कवि (सीमा) अग्रसर होता है। वह गति में विश्वास करता है और उसका लक्ष्य आनन्द प्राप्ति है—

तुमसे चल तुम में ही पहुँचे
जितने रस आनन्द रहे।[1]

निराला तरंगों से याचना करता है कि उसे भी तरंगों की गति प्राप्त हो जिसमें कि वह असीम से मिलकर चिरानन्द को प्राप्त कर सके—

उस असीम में ले आओ।
मुझे न कुछ तुम दे जाओ॥[2]

परन्तु रवीन्द्र की तरह निराला भी सीमा असीम की मिलन-साधना से आनन्द-प्राप्ति के उपरान्त मोक्ष की कामना नहीं करते। वैष्णव कवियों की तरह इन दो कवियों की आशा आकांक्षा वैकुण्ठ के लिए संचित नहीं रहती वरन् हेगल के आदर्श-विचार (Ideal Realism) की तरह इस संसार में ही वे आनन्द का अनुभव सम्पूर्ण मानवता के साथ करना चाहते हैं। दोनों कवि हो इस जीवन से, इस पृथ्वी के मनुष्यों से प्रेम करते हैं। रवीन्द्र कहते हैं—

कवि दिले आपन वीणार तारे झंकार,
गान उठल आकाशे—
जय हक मानुषेर, ऐ नव जातकेर, रे चिर जीवितेर।

---

१ निराला झरना
२ निराला परिमल

सकले जानु पेते बसल राजा एव भिक्षु
साधु एव पापी, ज्ञानी एव मूढ—
उच्चस्वरे घोषणा करले, जय होक मानुषेर,
श्रोइ नवजातकेर, ऐ चिरजीवितेर।

अथवा

मरित चाहि ना आमि सुंदर भुवने,
मानवेर माझे आमि बाचिबारे चाइ।

निराला के काव्य मे मानव की इस प्रकार की प्रशस्ति बहुत से स्थानो म पायी जाती है—

"तुम हो महान
तुम सदा हो महान्
है नश्वर यह दीन भाव,
कायरता, कामपरता,
ब्रह्म हो तुम,
पदरज भर भी है नहीं
पूरा यह विश्वभार"—[1]

अथवा

"विश्व का नियम निश्चल,
जो जसा, उसको वसा फल,
देती यह प्रकृति स्वय सदया,
सोचने को न रहा कुछ नया,
सौन्दय गीत, बहु वण, गध
भाषा, भावों के छद-बध,
श्रौर भी उच्चतर जो विलास,
प्राकतिक दान वे, सप्रयास
या अनायास आते हैं, सब
सब मे श्रेष्ठ, धन्य, मानव।"[2]

मानव का रवीन्द्र तथा निराला दोनो ही असामान्य असीम रहस्यमान सोचत हैं इसी कारण मानव के दुख से दोना कवि ही दुखी होकर कभी-कभी

१ निराला परिमल
२ निराला अनामिका

रहस्य-लोक को छोड़कर अभाव-लोक का वर्णन करने को उद्यत हो जाते हैं। इस सम्बन्ध में डा० सुधाकर चट्टोपाध्याय कहते हैं कि निराला ने केवल रहस्यवाद के क्षेत्र में बंगला के भाव पक्ष का अवलम्बन नहीं लिया वरन अभाव की कविता में भी बंगला के पथ के अवलम्बन का इंगित हमें प्राप्त हो जाता है।[1] रवीन्द्रनाथ जिस प्रकार भाव-लोक से कभी कभी अभाव लोक में कूद पड़ते हैं कहते हैं—

मोरा काज करे
देश देशान्तरे,
अंग बंग कलिंगेर समुद्र-नदीर घाटे घाटे,
पंजाबे बोम्बाइ गुजराटे।

इसी प्रकार निराला ने भी कहा है—

वह तोड़ती पत्थर,
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर—
वह तोड़ती पत्थर।[2]

अभाव लोक से दुखी कवि प्रत्येक मानव के लिए सुख की कामना करता है और उनके साथ इस जीवन को सुखमय बनाना ही मोक्ष का पर्याय समझता है। रवीन्द्र की "एकटि स्वप्न मुग्ध-सजल नयन। एकटि पद्म हृदय-वृन्त शयने" की तरह निराला भी जीवन में आनन्द की कामना करते हैं—

एक स्वप्न तन जग-नयनों में
खिला रही सुख द्रुम शयनों में।[3]

मानव का असीम का रूप समझने के लिए जहाँ रवीन्द्र ने 'पुरातन भृत्य', 'राजा या रानी' नाटक का नौकर शंकर 'खोकाबाबू प्रत्यावर्तन' का नौकर राइचरण 'पश्चिम की मजदूर लड़की, 'दुइ बिघा जमि' का उपेन, एकबर्ग्या अनिदोना भिखारिनी जैसे लोगों का वर्णन किया है वैसे ही निराला ने अपने काव्य में मजदूर लड़की, विधवा रमणी, किसान आदि का वर्णन किया है। रवीन्द्र के अतिरिक्त यों निराला पर स्वामी विवेकानन्द के मानवतावादी दर्शन का प्रभाव भी है। डा० रामविलास शर्मा कहते हैं कि इन कविताओं की विशेषता यह है कि भावुकता के आँसुओं के बदले जीवन की दारुण व्यथा को गहरे रंगों में अंकित किया गया है। और माना रूप में इष्ट देवी आनन्द से अधिक शक्ति

1 चट्टोपाध्याय आधुनिक हिन्दी साहित्ये बांग्लार स्थान, प्रथम खण्ड पृ० १०२
२ निराला अनामिका। ३ निराला: गीतिका।

सकले जानु पेते बसल राजा एव भिक्षु
साधु एव पापी ज्ञानो एव मूढ़—
उच्चस्वरे घोषणा करले, जय होक मानुषेर,
ओइ नवजातकेर, ऐ चिरजोवितर।

अथवा

मरित चाहि ना आमि सुन्दर भुवने,
मानवेर माझे आमि बाँचिवारे चाइ।

निराला के काव्य म मानव की इस प्रकार की प्रशस्ति बहुत से स्थानो म पायी जाती है—

'तुम हो महान
तुम सदा हो महान
है नश्वर यह दीन भाव,
कायरता, कामपरता,
ब्रह्म हो तुम,
पदरज भर भी है नहीं
पूरा यह विश्वभार"—[१]

अथवा

"विश्व का नियम निश्चल,
जो जसा, उसको वसा फल,
देती यह प्रकृति स्वय सदया,
सोचने को न रहा कछ नया,
सौन्दय गीत, बहु वर्ण, गन्ध
भाषा, भावों के छन्द-बन्ध,
और भी उच्चतर जो विलास,
प्राकृतिक दान वे, सप्रयास
या अनायास आते हैं, सब
सब में श्रेष्ठ, धन्य, मानव।'[२]

मानव का रवीन्द्र तथा निराला दोनो ही असामान्य असीम रहस्यमान सोचते हैं इसी कारण मानव के दुख से दोनो कवि ही दुखी होकर कभी कभी

१ निराला परिमल
२ निराला अनामिका

रहस्य-लोक को छोड़कर अभाव-लोक का वर्णन करने को उद्यत हो जाते हैं। इस सम्बन्ध में डा० सुधाकर चट्टोपाध्याय कहते हैं कि निराला ने केवल रहस्यवाद के क्षेत्र में बंगला के भाव-पक्ष का अवलम्बन नहीं लिया वरन् अभाव की कविता में भी बंगला के पथ के अवलम्बन का इंगित हमें प्राप्त हो जाता है।[1] रवीन्द्रनाथ जिस प्रकार भाव-लोक से कभी कभी अभाव लोक में कूद पड़ते हैं, कहते हैं—

ओरा काज करे
देश देशान्तरे,
अंग बंग कलिंगेर समुद्र-नदीर घाटे घाटे,
पंजाबे बोम्बाइ गुजराटे।

इसी प्रकार निराला ने भी कहा है—

वह तोड़ती पत्थर,
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर—
वह तोड़ती पत्थर।[2]

अभाव लोक से दुःखी कवि प्रत्येक मानव के लिए सुख की प्रार्थना करता है और उनके साथ इस जीवन को सुखमय बनाना ही मोक्ष का पर्याय समझता है। रवीन्द्र की 'एकटि स्वप्न मुग्ध सजल नयन। एकटि पद्म हृदय-वृन्त शयन' की तरह निराला भी जीवन में आनन्द की कामना करते हैं—

एक स्वप्न तन जल-नयनों में
खिला रहा सुख द्रुम शयनों में।[3]

मानव का असीम का रूप समझने के लिए जहाँ रवीन्द्र ने 'पुरातन भृत्य', 'राजा ओ रानी' नाटक का नौकर शंकर, 'खोकाबाबूर प्रत्यावर्तन' का नौकर राइचरण, पश्चिम की मजदूर लड़की, 'दुइ बिघा जमि' का उपेन, 'एकदृष्टा अनिन्दिता भिखारिनी' जैसे लोगों का वर्णन किया है वैसे ही निराला ने [illegible] काव्य में मजदूर लड़की, विधवा रमणी भिखारी आदि का वर्णन किया है। [illegible] के अतिरिक्त यहाँ निराला पर स्वामी विवेकानन्द के मानवतावाद [illegible] प्रभाव भी है। डा० रामविलास शर्मा कहते हैं कि इन कविताओं की [illegible] यह है कि भावुकता के आँसुओं के बदले जीवन की दारुण [illegible] में अंकित किया गया है। और माता रूप में स्पष्ट [illegible]

---

1 चट्टोपाध्याय : आधुनिक हिन्दी [illegible]
2 निराला : अनामिका। 3 निराला : [illegible]

की देवी है। वह कवि को पलायनवादी संसार में नहीं ले जाती, न सुनहली किरणों से उसके प्रांस ज से ग्रांसू पोछ लेती है। वह उसे दु:खभार सहन करने के लिए प्रेरणा देती है और मानो कहती है कि यह भार वहन करना ही उसकी श्रेष्ठ उपासना है।[1]

भक्ति

यह सेवा भक्ति की भावना निराला ने रामकृष्ण परमहंस तथा विवेकानन्द से ग्रहण की थी जिसके उदाहरण निराला की कविता 'सेवा प्रारम्भ', 'स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज', 'कलाश में शरत', 'युगावतार परमहंस श्री रामकृष्ण देव के प्रति' में प्राप्त हो जाते हैं। दिनकर के अनुसार विवेकानन्द ने अपनी आध्यात्मिक अनुभूति को व्यावहारिक रूप देकर सेवा धर्म का प्रतिपादन किया है। दिनकर जी इसे कर्मठ वेदान्तवाद कहते हैं।[1] पंचवटी प्रसंग में जो मां रूप में भक्ति का प्रसंग प्राप्त होता है वह भी राम की सेवा भक्ति में शक्ति की उपासना का प्रभाव है। इसके बारे में डा० रामरतन भटनागर कहते हैं कि इस कविता (पंचवटी प्रसंग) में जो माता (सीता) के प्रति भक्तिवाद मिलता है वह स्पष्ट ही बंगाल प्रदेश से उधार लिया गया है।[2] राम की शक्ति-पूजा में भी बंगाल की शक्ति-पूजा का प्रभाव परिलक्षित होता है।

विवेकानन्द की सेवा भक्ति तथा रवीन्द्रनाथ की भक्ति में तत्वतः कोई भेद नहीं है। विवेकानन्द अद्वैतब्रह्म को प्राप्त करने के लिए मानव की सेवा तथा भक्ति का मार्ग अपनाने को कहते हैं। रवीन्द्र भी असीम से मिलन का इच्छा में इस पृथ्वी पर रहना चाहते हैं और मानव प्रेम को भक्ति रूप में अपनाना चाहते हैं। उन्हें मोक्ष की इच्छा नहीं, मानवीय भक्ति की कामना ही उनके जीवन की सबसे बड़ी कामना है क्योंकि वही सीमा का असीम के साथ मिलन होना है—

> यथाय थाके सबार अधम दीनेर हते दीन,
> सइखाने ये चरण तोमार बाजे
> सबार पिछे सबार निचे
> सब हारादेर माझे।

---

१ रामविलास शर्मा निराला पृ० ६५ ६६
दिनकर संस्कृति के चार अध्याय पृ० ४६३
२ रामरतन भटनागर कवि निराला एक अध्ययन, पृ० ६६

इसीलिए—

मरिते चाहि ना आमि सुंदर भुवने,
मानवेर माझे आमि बाँचिबारे चाइ ।

अत —

वैराग्यसाधने मुक्ति से आमार नय ॥

मोह मोर मुक्ति रूपे उठिबे ज्वलिया,
प्रेम मोर भक्ति रूप रहिबे फलिया ॥

निराला की भक्ति भावना में विवेकानन्द तथा रवीन्द्रनाथ दोनों का ही युग्म प्रभाव है और इसी कारण निराला मातृरूप जीवनदेवता की भक्ति की ही कामना करते हैं—

मुक्ति नहीं चाहता मैं भक्ति रहे, काफी है
सुधाकर की कला से प्राण यदि बन कर रहूँ
तो अधिक आनन्द है
अथवा यदि होकर चकोर, कुमुद अगाणय
पीता रहूँ सुधा इन्दु सिन्धु से बरसती हुई
तो सुख मुझे अधिक होगा ?
इसमें सन्देह नहीं आनन्द बन जाना हेय है
श्रेयस्कर आनन्द पाना है [१]

और इस आध्यात्मिक भक्ति में प्रेम मधुर आत्म निवेदन का एवं प्रिय मिलन का आनन्द निहित है। यह आनन्द ही निराला का लक्ष्य था। यह आनन्द ही एक नवीन रहस्यवाद है जिसकी पृष्ठभूमि अद्वैतवाद होते हुए भी आधारभूत शिला रूढि के प्रति विद्रोह-स्वरूप मानव मन की चेतना का नवरूपायण है। यही रवीन्द्र का दार्शनिक विचार, सीमा के बीच असीम के साथ मिलन-साधना का आनन्द है और यही निराला के रूप और अरूप का आनन्दमय संगम है।

व्यंग्य

परवर्ती युग में आकर निराला के प्रतिपाद्य पर आधुनिक समाज के काठिन्य तथा दु:ख एवं अभाव का प्रभाव पड़ा। युगानुसार दु:खातिरेक से प्रभावित उनकी कविता में संसार की विकृति का दर्शन होता है और प्रभावस्वरूप उनकी कविता में यथार्थ विचार एवं व्यंग्य का आधिक्य हो जाता है। रवीन्द्रनाथ की शेष समय

१ परिमल

की कविताग्रो म भी पृथ्वी के धूलि धूसरित प्रात का चित्रण ही अधिक प्राप्त होता है जिसम कवि मन का विषाद् अकित है।

बासा बेँधेछि श्रालगा माटिते
से चलित माटि नदीर जले नदीर जले
एसेछिल भेसे,
ये माटि पडबे गले श्रावण धाराय।
याब श्रामि।
तोमार व्यथाविहीन विदाय दिने
श्रामार भागाभिटेर परे गाइबे दोयेल
लेज दुलिये।
एक साहानाइ वाजे तोमार बाशिते,
श्रोगो श्यामलो
ये दिन श्रासि, श्राबार ये दिन याइ चले।

इस प्रकार की व्यक्तिगत दु खानुभूति स सम्पूर्ण निराला काव्य भरा पडा है। परवर्ती युग म आकर उन्होने भी रवीन्द्र की तरह लिखा था—

मैं अकेला
देखता हू, आ रही
मेरे दिवस की सान्ध्य वेला।[1]

अथवा

स्नेह निर्भर बह गया है
रेत ज्यो तन रह गया है।
आम की यह डाल जो सूखी दिखी
कह रही है—अब यहा पिक या शिखी
नहीं आते पक्ति मै वह हू लिखी
नहीं जिसका अर्थ—
जीवन दह गया है।[2]

परन्तु रवीन्द्र क विपरीत, निराला के य दु खपूर्ण भाव या तो सामाजिक विद्रोह अथवा सामाजिक व्यग क रूप म प्रकट हुए है। वास्तव म यह दोनो रूप ही पाश्चात्य कवियो की देन है जो बगाली कवि नजरुल इस्लाम तथा

१ निराला अणिमा
२ निराला अणिमा

अमीयकुमार चक्रवर्ती के माध्यम से निराला के काव्य म सयोजित हुइ है। नजरुल इस्लाम तथा अमीयकुमार चक्रवर्ती ने व्यक्तिगत अनुभूति स अनुप्रेरित होकर अपने काव्य म समाज पर व्यग्यात्मक चोट की है। पाश्चात्य कवियो म इएटम एलियट, अडेन तथा टुअनर ने कविता क माध्यम स समाज पर कसकर व्यग्य कसा है जहा स अनुप्रेरित हाकर एव परिस्थितिजन्य प्रभावस्वरूप वह व्यग्य-तत्त्व बगला काव्य म पदार्पण करता है और काफी अश तक वही स रस ग्रहण कर निराला ने अपने काव्य म सामाजिक व्यग्य का स्थान दिया है। इस सम्बन्ध म प्रभाकर माचवे का कहना है कि बगला क उदाहरणा म निराला के व्यग काव्य की समानता है, किन्तु मराठी गुजराती उर्दू म जो उदाहरण मिलते हैं वे व्यग्य युक्त भले हो, उनम अभिव्यक्ति का वह वलक्षण्य नही जिसके कारण ही निराला की व्यग्य-कविताएँ विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।[1] उदाहरणस्वरूप अमिय चक्रवर्ती की एक कविता ली जा सकती है—

मोटर गाड़िर चाकाय ओड़ाय धुलो,
यारा सोरे याय तारा शुधु लोकगुलो,
कठिन, कातर, उद्धत असहाय,
यारा पाय यारा सबइ पेकि नाहि पाय
केन किछु आछे बोभानो, बोभा ना याय मेलाबेन।[2]

और निराला—

दाय गई गाडी, बायें मुडो जसे, एक ओर
कटी चबूतरे की रि कुटिया से निकली
काली एक नारी गाली देती, खाली दिक्ली
देखकर चबूतरा।[3]

रवीन्द्रनाथ की विषय वस्तु को ग्रहण कर रचित कविताएँ

यहाँ हम निराला की कविताओ क उन विषयो पर विवेचन करेंगे जो रवीन्द्र काव्य स निराला ने ग्रहण किया है। वास्तव म रवीन्द्र-काव्य स प्रेरित होकर निराला जी ने इन विषयो को अपनी कविताओ क लिए चुना है परन्तु इन विषयो को अपनी अनुभूति स रग कर निराला इस ढग स प्रस्तुत करते हैं कि कहीं भी यह दूसरे का प्रभाव नही लगता है। यहाँ निराला प्रभाव को आत्मसात कर लेते हैं।

१ निराला क काव्य में अस्तित्ववाद, साहित्य का पैंच अक २००७
२ आधुनिक बांग्ला कविता, पृ० ८०
३ निराला नये पत्ते

१ पुरातन वैभव का अंकन

इस सम्बन्ध में डा० रामविलास शर्मा कहते हैं कि रहस्यवाद छायावाद का एक पहलू था। दोनों को एक मान लेने पर बहुत तरह के भ्रम उत्पन्न हो जाते हैं। अन्य रोमांटिक आन्दोलनों की तरह छायावाद में भी विरोधी प्रवृत्तियाँ और असंगतियों का अभाव नहीं है। पलायन और अध्यात्मवाद के साथ उसमें संघर्ष का स्वागत और क्रान्ति की चाह भी है। पलायन का रूप अध्यात्मवादी संसार की कल्पना ही नहीं है इतिहास से वे युग ढूँढकर निकाल लाते हैं जिनसे कवि को आन्तरिक सहानुभूति होती है। 'दिल्ली" और खण्डहर कविताओं में पुरातन वैभव के प्रति भावुक सहानुभूति प्रकट की गई है। शिवाजी का पत्र' गुरु गोविन्दसिंह पर और 'जागो फिर एक बार" नामक कविता में उस हिन्दू पुनर्जागरण के चिह्न मिलते हैं जो शुरु में हमारे राष्ट्रीय जागरण के ही एक अंग रहे थे। 'यमुना में उन्होंने पौराणिक संसार को नवीन जीवन दिया है। ब्रज और यमुना को देखकर अनेक आधुनिक कवियों ने नटनागर श्याम और 'पनघट पर गोपियों की मधुर प्रेमलीला के जो चित्र अंकित किये हैं उनका आरम्भ इसी कविता से होता है।'[1] परन्तु हम डा० रामविलास शर्मा के इस पलायन विवेचन से सहमत नहीं हैं। निराला ने रवीन्द्र की तरह प्राचीन वैभव का चित्रांकन रोमान्टिक कवियों की तरह पलायन (escape) मनोभाव को प्रदर्शित करने के लिए नहीं किया था वरन इसके पीछे अपनी संस्कृति तथा प्राचीन वैभव के प्रति श्रद्धा प्रदर्शन करना ही मुख्य उद्देश्य था। यद्यपि रवीन्द्र की तरह निराला भी प्राचीन वैभव के अभाव में दुःखी अवश्य हो जाते हैं परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वे भाव राज्य (Eutopia) में जाने के इच्छुक हैं। वे तो मानव से प्रेम करते हुए सम्पूर्ण मानव के साथ इस पृथ्वी में रहकर इस पृथ्वी को सुखमय बनाना चाहते हैं।

रवीन्द्र—

सेइ कदम्बेर मूल यमुनार तीर,
सेइ से शिखीर नृत्य
एखनो हरिछे चित्त,
फेलिछे विरहछाया श्रावण तिमिर।
आजओ आछे वृन्दावन मानवेर मन।

---

१ रामविलास शर्मा निराला पृ० ६७ ६८

शरतेर पूर्णिमाय
श्रावणेर वरिषाय
उठे विरहेर गाथा बने उपवने
एखनो से बाशि बाजे यमुनार तीरे।
एखनो प्रेमेर खेला,
सारा दिन, सारावेला
एखनो कांदिछे राधा हृदय-कुटीरे।

श्रौर निराला—

यमुने, तेरी इन लहरों मे
किन अधरों की श्राकुल तान
पथिक प्रिया-सी जगा रही है
उस अतीत के नीरव गान ?
बता कहा अब वह वंशीवट ?
कहा गए नटनागर श्याम ?
चल चरणों का व्याकुल पनघट
कहां आज वह वृन्दाधाम।[1]

यहाँ पलायनवाद की प्रवृत्ति नही वरन् यह दुःख का अर्घ्य है। रवीन्द्र 'सत्य शिव सुन्दरम' के कवि थ और सत्य कठोर मूनि होता है उसकी पूजा के लिए दुःख अर्घ्य ही सफल समझा जाता है। निराला ने रवीन्द्र के इस भाव को ही ग्रहण किया है।

२ संस्कृति

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि निराला ने रवीन्द्र से भारतीय संस्कृति की दीक्षा ग्रहण की थी। दार्शनिक विचारपक्ष में भारतीय संस्कृति का सबसे महत्वपूर्ण विचार अद्वैतवाद का भाव निराला की कविता में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त पश्चिम के भौतिकवाद के विरुद्ध अपनी संस्कृति की महत्ता का प्रतिपादन रवीन्द्रनाथ ने अपनी बहुत-सी कविताओं तथा दो योनि-नाट्य 'तासेर देश' और 'रक्तकरबी' में किया है। उदाहरणतया—

शताब्दीर सूर्य आजि रक्तमेघ माझे
अस्त गेलो,—हिंसार उत्सवे आजि बाजे

---

१ निराला : परिमल

श्रस्त्रे श्रस्त्रे मरणेर उन्माद—रागिनी
भयंकरी ! दयाहीन सभ्यता नागिनी
तुलेछे कुटिल फण चक्षरे निमिषे ।

निराला ने भी पश्चिम के भौतिक विकास के विरुद्ध हमारी आध्यात्मिक संस्कृति की महत्ता का प्रतिपादन किया है—

आज सभ्यता के वैज्ञानिक जड़ विकास पर
गर्वित विश्व नष्ट होने को ओर अग्रसर
स्पष्ट दिख रहा, सुख के लिए खिलौना जैसे
बने हुए वैज्ञानिक साधन, केवल पैसे
आज लक्ष्य में हैं मानव के, स्थल जल अम्बर
रेल तार बिजली जहाज नभयानों से भर
दर्प कर रहे हैं मानव, वर्ग से वर्गगण
भिड़े राष्ट्र से राष्ट्र, स्वार्थ से स्वार्थ विचक्षण ।[1]

तथा—

किन्तु क्या ?
योग्य जन जीता है,
पश्चिम की उक्ति नहीं
गीता है, गीता है
स्मरण करो बार बार—[2]

परन्तु पश्चिम के प्रति घृणा के भाव प्रदर्शन करना भारतीय संस्कृति के अनुरूप नहीं था और इसी लिए रवीन्द्र की तरह निराला ने सम्पूर्ण विश्व की उन्नति की कामना कर विश्वधर्म का प्रतिपादन किया है जो हमारी संस्कृति की सबसे महत्वपूर्ण धारा है—

शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा
आये धामानि दिव्यानि तस्थु ॥ श्वेताश्वतर अध्याय २।५

स्वामी विवेकानन्द ने इसी विश्वधर्म का प्रचार सम्पूर्ण जगत में किया। निराला विवेकानन्द तथा रवीन्द्र दोनों से इस विचार का ग्रहण कर अपने काव्य में विश्वधर्म का प्रतिपादन करते हैं—

---

१ निराला अपरा
२ निराला परिमल

वर दे, वीणावादिनि वर दे।
प्रिय स्वतंत्र रव अमृत मंत्र नव
भारत में भर दे।
कलुष भेद तम हर प्रकाश भर
जगमग जग कर दे।
नव गति, नवलय, ताल छंद नव
नवल कंठ, नव जलद मंद्र रव
नव नभ के नव विहग वृंद को
नव पर, नव स्वर दे।[1]

यहाँ कवि स्वदेश में ही स्वातन्त्र्य रव फूँकने की आकांक्षा नहीं करता अपितु सम्पूर्ण विश्व को ज्योतिपूर्ण देखने की अभिलाषा कर रहा है। रवीन्द्र की कविताओं में यह विश्वप्रेम सर्वत्र झलकता है—

हे मोर चित्त, पुण्य तीर्थे
जागोरे धीरे—
एइ भारतेर महामानवेर
सागरतीरे।
हेथाय दाँडाये दु बाहु बाड़ाये
नमि नरदेवतारे,
उदार छंदे परमानंदे
वंदन करि तारे।

३ स्वदेश प्रेम

श्रीमती महादेवी वर्मा 'आधुनिक कवि सीरीज' वाले संग्रह की भूमिका में छायावाद युग की सामाजिक और राष्ट्रीय कविताओं के बारे में लिखती हैं— 'राष्ट्रीय भावनाओं को लेकर लिखे गये जय-पराजय के गान स्थूल धरातल पर स्थित सूक्ष्म अनुभूतियों में जो मार्मिकता ला सके हैं वह किसी और युग के राष्ट्रगीत दे सकेंगे या नहीं, इसमें सन्देह है। निराला की राष्ट्रीय या स्वदेश प्रेम की कविताओं पर युगपत् बंगाल के स्वदेशी आन्दोलन, द्विजेन्द्रलालराय, रवीन्द्रनाथ तथा नजरुल इस्लाम का प्रभाव लक्षित होता है। भारत प्रशस्ति, विद्रोह-गान तथा स्वदेश में विश्व का मिलन यह सभी भाव निराला को नजरुल, द्विजेन्द्रलाल राय तथा रवीन्द्र से प्राप्त हुए हैं। द्विजेन्द्रलालराय की भारत प्रशस्ति देखिये—

---

१ गीतिका

ये दिन सुनिल जलधि हइते
उठिल, जननी भारतवर्ष
उठिल विश्वे से कि कलरव,
से कि मा भक्ति स कि मा हृष ।

इसी के अनुरूप स्तोत्र शली म निराला के लिखे हुए भारत प्रशस्ति के गीत प्राप्त हो जाते हैं—

वन्द पद सुन्दर तव,
छन्दे नवल स्वर—गौरव,
जननि, जनक जननि जननि[1]
ज मभूमि भाये !
जागो नव अम्बर भर—
ज्योतिस्तर वासे
उठे स्वरोर्मियों मुखर
दिक कुमारिका पिक रव ।[2]

इसके अतिरिक्त नजरुल की तरह भरव रव म निराला ने स्वदेश गान भी गाया है।

नजरुल—

आसछे एबार अनागत प्रलय नेशार नृत्य पागल
सिन्धु पारेर सिंह द्वारे धमक हेने भागल आगल ।
मृत्यु गहन अन्ध कूपे
महाकालेर चण्ड रूपे—
धूम्र धूपे
बज्र शिखार मशाल ज्वेले आसछे भयकर—
ओरे ऐ हासछे भयकर ।
तोरा सब जयध्वनि कर्
तोरा सब जयध्वनि कर्

और निराला—

---

१ निराला ने इन शब्दों को रवीन्द्र से ग्रहण किया है—
आमि भुवन मनोमोहिनी । आमि निमल सयकरोज्ज्वल धरणी
जनक जननी-जननी ।

२ निराला गीतिका

क्षत मद जनता, हुए लुण्ठित मुकुट जीवन सुहाये ।
रुण्ड मुण्डों से भरे हैं खेत, गोलों से बिछाये[1]

अथवा—

इस जग के मग के मुक्त प्राण !
गाओ विहग ! सद्ध्वनित गान,
त्यागोज्जीवित, वह ऊर्ध्व ध्यान, धारा स्तव[2]

जहाँ निराला ने रवीन्द्र के स्वदेश प्रेम की कविताओं से भाव ग्रहण कर अपने स्वदेश प्रेम की कविताओं को सजोया है वहाँ साधारणतया दो तत्व स्पष्ट परिलक्षित होते हैं—

प्रथम, रवीन्द्र ने सम भाव के आदर्श से प्रेरित होकर प्रत्येक मानव को सम दृष्टि से देखा है और प्रत्येक को प्रेम के सूत्र में आबद्ध करने की इच्छा प्रकट की है—

कबे देव ए रजनी हबे अवसान ?
स्नान करि प्रभातेर शिशिर सलिले
तरुण रविर करे हासिबे पृथिवी ।
अयुत मानवगण एक कण्ठे देव,
एक गान गाइबेक स्वर्ग पूर्ण करि ?
नाहिक दरिद्र धनी अधिपति प्रजा,
केह कारो कुटीरेते करिले गमन
मर्यादार अपमान करिबे ना मने,
सकलेइ सकलेर करितेछे सेवा,
केह कारो प्रभु नय, नहे कारो दास ।
से दिन आसिबे फिरि एखनए येनो
दूर भविष्यत सेइ घतेछि बलित—
येइ दिन एक प्रेमे हइया निबद्ध
मिलिबेक कोटि कोटी मानवहृदय ।

निराला ने भी अपनी कविताओं में इस साम्य भाव को प्रदर्शित किया है परन्तु रवीन्द्र जहाँ 'शृण्वन्ति विश्वे अमृतस्य पुत्राः' से प्रभावित हुए थे वहाँ निराला ने युगीन प्रगतिवादी विचारों से प्रभावित होकर इस प्रकार की कविताओं का

---

१ निराला : बेला
२ निराला : तुलसीदास

प्रणयन किया है इसलिए पूर्णत इनमें रवीन्द्र का प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता है। उदाहरणतया—

जल्द जल्द पर बढ़ाओ आओ आओ।
आज अमीरों की हवेली
किसानों की होगी पाठशाला

+ + +

सारी सम्पत्ति देश की हो,
सारी आपत्ति देश की बने,
जनता जातीय वेश की हो,
वाद से विवाद यह ठने,
कांटा काटे से कढ़ाओ।[1]

द्वितीयत निराला रवीन्द्र के स्वदेश प्रेम के उस भाव से प्रभावित हुए हैं जहां कवि ने स्वदेश की स्वल्प परिधि को त्याग कर विश्व को अपनाया है। इस सम्बन्ध में चारुचन्द्र बन्द्योपाध्याय कहते हैं कि रवीन्द्र विश्वप्रेमी हैं। प्रति शशवकाल से ही उनका कवि चित्त सकीर्ण देशकाल की सीमा में आबद्ध रहने के कारण दुःख तथा दीनता के विरुद्ध युद्ध घोषणा करता रहा है।[2] इसीलिए रवीन्द्रनाथ का स्वदेश प्रेम कभी भी उग्र स्वदेश प्रेम का रूप धारण नहीं कर पाया है। निराला की कविताओं में भी रवीन्द्र के स्वदेश प्रेम की कविताओं की तरह विश्व प्रेम की झलक स्पष्ट प्रतिफलित दिखलाई पड़ती है। उदाहरणतया रवीन्द्रनाथ—

चिर कल्याणमयी तुमि धन्य,
देश विदेशे वितरिछ अन्न,
जाह्नवी यमुना विगलित करुणा
पुण्य पीयूष स्तन्य वाहिनी

और निराला—

जागो जीवन धनिके
विश्व पराय प्रिय वणिके।[3]

---

१ निराला बेला
२ चारुचन्द्र बन्द्योपाध्याय रवि-रश्मि, भाग २, पृ० ३४८
३ निराला गीतिका

तथा—

नर जीवन के स्वार्थ सकल
बलि हो तेरे चरणों पर, मा,
मेरे श्रम संचित सब फल ।[1]

प्रशांत विश्व प्रेम की यह भावना निराला ने विवेकानन्द के विश्वधर्म के भावों से भी ग्रहण की है।

४ मृत्यु

दार्शनिक विचार के अन्तर्गत मृत्युविषयक मान्यताओं को हम ले सकते हैं। कारण रवीन्द्र और निराला दोनों ही मृत्यु को असीम का ही पर्याय भेद मानते हैं। तथा सीमा और असीम के मिलन हेतु आनन्द की प्राप्ति में सीमा असीम के रूपक का अन्त मानते हैं। इस आनन्द-यज्ञ के पुरोहित रवीन्द्र के लिए इस संसार का कोई भी व्यापार आनन्दहीन नहीं है। इसलिए जिस मृत्यु के भय से जगत वासी सन्त्रस्त है उस मृत्यु को रवीन्द्र ने अमृत-मूर्ति रूप में देखा है एवं मृत्यु की विभीषिका का मोचन कर मृत्यु को भी सुन्दर रूप में प्रदर्शित किया है। मृत्यु यदि नहीं रहती तो जीवन भी नहीं रह पाता, मृत्यु के द्वारा ही हम जीवन के अस्तित्व की उपलब्धि करते है। रवीन्द्र कहते हैं—

आमि तो मरयुर गुप्त प्रेमे
रब ना घरेर कोणे थेमे।
आमि चिर यौवनेरे पराइब माला
हाते मोर तारि तो वरणडाला

तथा—

मरण के प्राण वरण करे बाँचे।

एवं प्रत्येक जीव—

बहिल मरणरूपी जीवन-स्रोत
से ये ऐ नाना गडार ताले ताले
नेचे याय दने देगे काले काले।

मृत्युसम्बन्धी निराला के विचार सर्वथा रवीन्द्र के अनुकूल हैं। रवीन्द्र की तरह निराला भी मृत्यु का वरण करना चाहते हैं कारण मृत्यु के द्वारा ही हम अपने जीवन के अस्तित्व का अनुभव करते हैं—

---

१ निराला गीतिका

वे मैं वरूँ वरण
जननि, दुखहरण पद राग रजित मरण।[1]

एव

मुक्ति हूँ मैं मत्यु मे
आई हुई, न डरो।[2]

रवी द्र की तरह निराला जीवन को मृत्यु के द्वारा ही पाते हैं—

मरण को जिसने वरा है,
उसी ने जीवन भरा है।
परा भी उसकी, उसी के
अक सत्य यशोधरा है।[1]

५ महापुरुषो की प्रशस्ति

रवीन्द्र क अनुरूप निराला ने भी महापुरुषो की प्रशस्ति म कविता की रचना की है। रवीन्द्र की कविता अरविन्द रवीन्द्र लहो प्रणाम तथा 'सत्येन्द्रनाथ दत्तर प्रति' के अनुरूप निराला ने सम्राट एन्वड अष्टम के प्रति,' 'सत कवि रविदास जी के प्रति', आदरणीय प्रसाद जी के प्रति,' भगवानबुद्ध के प्रति,' आचाय शुक्ल जी के प्रति श्रद्धाजलि 'श्रीमति विजयलक्ष्मी पडित के प्रति,' युगप्रवर्तिका श्रीमती महादेवी वर्मा क प्रति तथा युगावतार परमहस श्री रामकृष्ण देव क प्रति,' कविताओ मे इन महापुरुषो की प्रशस्तिया गाई हैं।

इस प्रकार रवीन्द्रनाथ की विषय वस्तु को ग्रहण कर निराला की कविताओ की रचना पर प्रभाव सूत्र की धारा स्पष्ट हो जाती है। उपयु क्त विषयो क अतिरिक्त रोमाटिक प्रम, कवि विरह तथा मिलन भाव जसे विषयो को ग्रहण कर निराला न कविताओ का प्रणयन किया है जिसका वणन हमने कला पक्ष क अन्तगत प्रतीक वणन[२] म विस्तार से किया है। यहा कवल एक और विषय पर विवेचन शेष रह जाता है जिसका रवीन्द्र स ग्रहण कर निराला ने कविता की रचना की है।

६ कविता सम्बोधित

रवीन्द्र न अपनी कविताओ म कही-कहा कविता को सम्बोधित कर कविता की रचना की है। जसे—

---

१ निराला अपरा
२ निराला अनामिका
१ निराला अनामिका
२ देखिये कला-पक्ष

छन्दे उठिछे चन्द्रमा, छन्दे कनक रवि उदिछे
छन्दे जगमण्डल चलिछे,
ज्वलन्त कविता तारका सबे,
ए कवितार माझे तुम के गो देवि,
आलोक आलो आधारि ।

कवि और कविता सम्बन्धित कविताएं निराला ने भी लिखी हैं और यह सम्भव है कि रवीन्द्र की इस प्रकार की कविताओं की विषय वस्तु से प्रभावित होकर निराला ने यह कविता लिखी है—

ऐ, कहो
मौन मत रहो।
सेवक इतने कवि हैं—इतना उपचार—
लिए हुए हैं दैनिक सेवा का भार,
धूप, दीप, चन्दन, जल,
गन्ध सुमन दूर्वादल,
राग भोग, पाठ विमल मन्त्र,
पटु करतल गत मृदंग,
चपल नृत्य, विविध भंग
वीणा वादित सुरंग तन्त्र ।[1]

रवीन्द्र के सौन्दर्य दर्शन से प्रभावित निराला का सौन्दर्य दर्शन—

निराला के विचार-पक्ष पर विवेचन करते हुए हमने स्वतः निराला के भाव-पक्ष पर भी विचार कर लिया है कारण भाव पक्ष के अन्तर्गत विचार-पक्ष आ जाता है जैसे कि भाव-पक्ष के दो अंग से प्रकट है—

(१) बौद्धिक तथा (२) काल्पनिक

इसमें बौद्धिक भाव ही विचार-पक्ष के अन्तर्गत होते हैं। यहाँ इस विषय पर गुलाबराय का मत उद्धृत करना उपयुक्त होगा। उनका कहना है कि काव्य का मूल तत्व तो रागात्मक या भावतत्व ही है किन्तु उसके साथ पाश्चात्य देशों में कल्पनातत्व, बुद्धितत्व, और शैलीतत्व को भी माना है। कल्पनाभाव को पुष्ट करती है। उसके लिए सामग्री उपस्थित करती है और साथ-साथ ही अभिव्यक्ति में भी सहायक होती है। कल्पना का सम्बन्ध मानसिक सृष्टि से है, यह चाहे कवि की भावनाओं के अनुकूल बाह्य की सृष्टि का पुनर्निर्माण हो और

१ निराला अनामिका

चाहे उसमें जोड़ तोड़ और उलट फेर करके बिल्कुल नई (किंतु सुसगत और सुसम्भव) रचना हो। बुद्धितत्व कल्पना को उच्छृंखल होने से बचाये रखता है। कठोपनिषद में बुद्धि को इन्द्रियरूपी अश्वों की लगाम कहा है। वह इन्द्रियों की ही लगाम नहीं है वरन कल्पना के घोड़ों की भी लगाम है। हमारे यहाँ औचित्य दोषों और क्रम प्रमाण, सार एकावली आदि अलंकारों में कहीं तो पूरे बुद्धि तत्व का और कहीं उसके भावमय आभास का (जैसे काव्यलिंग आदि में) समावेश हो जाता है। बुद्धितत्व से सत्य और शिव की रक्षा होती है और कल्पना तथा भावतत्व में सुन्दरम् का निर्माण होता है। कल्पना से सुन्दरम्' का शरीर बनता है और भावना में उसकी आत्मा रहती है। 'सुन्दरम् रस का विषयागत पक्ष है।'[1]

निराला की कल्पना ने प्रकृति के विराट रूप, नारी के महिमान्वित रूप, अतीत के भावमय आकलन आदि भाव भूमियों के माध्यम से काव्य में सौन्दर्य को ही प्रकट किया है। क्योंकि कवि का सौन्दर्य ध्यान उसके काव्य की भाव भूमि से घनिष्ठ रूप में संयोजित रहता है। परन्तु साथ ही जैसा कि प्रवास जीवन चौधुरी कहते हैं कि विश्व प्रकृति तथा जीवन को जब निःस्वार्थ दृष्टि से देखा जाता है तब उसकी समग्रता तथा उसका सामंजस्य अन्तर को एक महान् सौन्दर्य तथा आनन्द से परिपूर्ण कर देता है। यह सौन्दर्यानुभूति ही काव्य सौन्दर्य की भित्ति है।[2] रवीन्द्रनाथ ने अपने जीवन में इसी सौन्दर्य का सधान किया था। यही रस की साधना तथा एक और सत्य तथा आत्मोपलब्धि की साधना है। रवीन्द्र ने तटस्थ दृष्टि से विश्व प्रकृति तथा जीवन में अपने जीवन देवता को अनुभव किया और इसीलिए उसमें सौन्दर्य एवं आनन्द की उपलब्धि की। यही उनके लिए रसोपलब्धि रही। कारण, जीवन देवता (ईश्वर) ने ही तो रस के लिए इस समस्त विश्व चराचर की सृष्टि की है—रसो वै सः। कवि के व्यक्तिगत जीवन की यही साधना थी।

रवीन्द्र काव्य के अनुरूप निराला ने भी भावभूमियों के माध्यम से अपने जीवन देवता को खोजा है और निराला के लिए उसकी प्राप्ति आनन्द की प्राप्ति तथा रस की प्राप्ति रही जो सौन्दर्य का ही पर्याय है। रवीन्द्र तथा निराला दोनों ने ही कल्पना के द्वारा जीवन के सुख-दुःख आशा निराशा के बीच सृष्टि के उस बृहत् सामंजस्यपूर्ण सौन्दर्यमूर्ति की उपलब्धि की है—जो उपलब्धि उन्हें उनके

---

१ गुलाबराय सिद्धान्त और अध्ययन, पृ० १६

२ प्रवास जीवन चौधुरी रवीन्द्रनाथेर सौन्दर्यदर्शन, पृ० १४०

जीवन-देवता के समीप ले जाती है। तब यह सुख दुःख और व्यक्ति भावावेग मात्र में रहकर रस में परिणत हो जाता है। यही रवीन्द्र तथा निराला का सौन्दर्य है, जहाँ निराला रवीन्द्र से प्रेरित होकर अपने साहित्य में कल्पना के माध्यम से भाव भूमियों के आकलन द्वारा सौन्दर्य की संयोजना करते हैं। रवीन्द्र के अनुरूप निराला के जीवन की सम्पूर्ण अभिन्नता जब रसान्वित हो जाती है तब सृष्टि के समस्त रूप तथा भाव के भीतर निराला जीवन-देवता का अनुभव करते हैं और उसके प्रति अपना प्रणाम अर्पित करते हैं। जैसे रवीन्द्र—

ये देह मोर बेसेछे भालो
ज्वलेछे घरे तौहारि आलो,
तौहारि माझे सबारि आजि पेयेछि आमि परिचय,
सबारे आमि नमि।

और निराला—

जन जन के जीवन के सुन्दर
हे चरणों पर
भाव वरण कर
दू तन मन धन न्योछावर कर।[1]

इस प्रकार बौद्धिक-तत्व के द्वारा 'सत्यं शिवं तथा भावतत्व तथा कल्पना के द्वारा सुन्दरम्' का समाहार निराला काव्य में रवीन्द्र के अनुरूप सुष्ठु तथा सुन्दर ढंग से हुआ है। यही निराला की सबसे बड़ी महानता है।

[1] निराला अणिमा

तृतीय अध्याय

निराला के कला-पक्ष पर बंगला का प्रभाव

१५ अगस्त सन १६३७ को लिखे एक पत्र म निराला जी ने श्री जानकी वल्लभ शास्त्री को अपनी कला के सम्ब ध म निम्नलिखित बात लिखी थी—

'कला के सम्बन्ध म पत्र म क्या लिखू ? उसके विकास और सौन्दय की बातें लाखा तरह की हैं—एक देखिए—

कोई न छायादार
पेड, वह, जिसके तले बठी हुई स्वीकार,
श्याम तन भर बँधा यौवन
नत नयन, प्रिया कम रतमन,
गुरु हथौडा हाथ, करती बार बार प्रहार
सामने तरु मालिका अट्टालिका प्राकार।

यहाँ सीधा वणन होने पर भी हथौडे की चोट पत्थर पर पडने पर भी देखिए, किस तरह अट्टालिका पर पडती है लखक के वणन प्रकार के कारण और निर्देश स।

ऐसी बहुत सी बातें इसम है। वह जहाँ बठी है वह पड छायादार नहा है और अट्टालिका तरुमालिका है।–अट्टालिका भी तरुमालिका है फिर आदमी कितनी छाह म है।

बधा यौवन छलकता नहीं, कसी पवित्रता है! स्वास्थ्य भी कसा !!

'मैं तोडती पत्थर'—अन्त का स्वभावत समझ मे आ जायगा—' मैं तोडती पत्थर—हृदय।'

निराला की सम्पूर्ण कला अभिव्यक्ति क पीछ यह हथौडे की चोट काम कर रही है। प्राचीन को छिन्न भिन्न करके नवीन की स्थापना ही उनकी कला की पहली कसौटी है। परन्तु यहाँ प्राचीन की अवमानना नहीं हुई है वरन् नवीन को साधन के लिए निराला ने नूतन का आह्वान किया है क्योंकि कला की अभिव्यक्ति यदि युग के नवीन भावो की प्रगति क साथ कदम न रख सके नये-नये

---

१ निराला के पत्र साहित्य म प्रकाशित सख्या कार्तिक २००७।

भावों की व्यंजना के लिए यदि भाषा प्रस्तुत न हो तो कवि मानस की सृष्टि अवश्य ही संकुचित हो जायेगी। और वैसे भी निराला का युग कला का परिष्कृत युग माना जाता रहा है जिसके सम्बन्ध में लिखते हुए डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि उस युग की कविता में छन्द अलंकार, रस, ताल तुक आदि सभी विषयों में गतानुगतिकता से बचने का प्रयत्न था और जिनमें शास्त्रीय रूढ़ियों के प्रति कोई आस्था नहीं दिखाई गई थी।[1] छायावादी युग की इस विशेषता को स्पष्ट करते हुए डा० बच्चनसिंह अपने प्रबन्ध 'निराला की कविता'[2] में लिखते हैं कि जिस सांस्कृतिक पुनर्जागरण की भूमिका पर छायावाद अधिष्ठित हुआ है उसके सम्बन्ध में देखने से प्रतीत होता है कि छायावाद की मूल प्रेरणा स्वतन्त्रता या मुक्ति (liberty) की कामना है। इन मुक्ति-कामी कवियों की रचनाओं में सर्वत्र इसकी प्रतिध्वनि सुनी जा सकती है। निराला जी इसके सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि हैं। ये छन्द के बन्धनों से मुक्ति चाहते थे, सड़ी गली मान्यताओं से मुक्ति चाहते थे पुराने नैतिक मूल्यों से मुक्ति चाहते थे, साहित्यिक रूढ़ियों से मुक्ति चाहते थे। इसीलिए निराला को विद्रोही या क्रान्तिकारी कहा गया है। यहाँ मुक्ति का तात्पर्य अभावात्मक से नहीं है वरन् निराला जी की मुक्ति की धारणा सर्वदा भावात्मक ही रही है।

कला के सम्बन्ध में स्वयं कवि निराला ने 'मेरी गीत-कला' शीर्षक निबन्ध में बहुमूल्य विचार प्रस्तुत किये हैं जिनसे उनकी कला पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। कवि ने लिखा है— भया सिद्ध कर उलटा जापू' यदि किसी पर घट सकता है तो एकमात्र मुझ पर, कबीर उलटबासी के कारण विशेषता रखते हैं पर यहाँ छन्दों का साम्य है उलटबाँसी नहीं, यहाँ छन्द व भाव दोनों की उल्टी गंगा बहती है। यह उलट पुलट मैंने जान बूझकर नहीं किया, और यह उलट पुलट है भी नहीं इसमें सीधा और प्राणों के पास पहुँचता रास्ता, छन्दों के इतिहास में दूसरा नहीं।[3] कवि प्रारम्भ से ही लोक विरोधी परम्परा तथा मान्यताओं के विद्रोही रहे हैं[4] चाहे वह किसी क्षेत्र में क्यों न हो। कवि ने इस व्यापक विद्रोह को 'उलटा जाप' कहा है।

कवि के इस विद्रोह के पीछे प्रधान इस छायावादी विद्रोह के पीछे मुख्यतया अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद तथा बंगला-कविता का पूर्णतया प्रभाव लक्षित होता है।

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य पृ० ४६१
२ आलोचना' पत्रिका के २५ वें अंक के काव्यालोचन विशेषांक में संकलित
३ निराला प्रबन्ध पद्म पृ० २६७
४ निराला प्रबन्ध पद्म पृ० २६७

दोनों का आधार नवीन चेतना थी। अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद के सम्बन्ध में प्राज ने अपनी पुस्तक[1] में बतलाया है कि रोमैंटिसिज्म ने एक नवीन चेतना का निर्माण किया था। पर उसकी मान्यताओं पर आपत्ति करते हुए क्रोचे ने कहा कि स्वच्छन्दतावाद केवल इतना नहीं है वह अपने चालू तथा ऐतिहासिक अर्थ में काफी गूढ़ है। वह अनेक भावों, विचारों मान्यताओं से भरा पड़ा है। जो भी हो, यदि स्वच्छन्दतावाद की सर्वाधिक व्यापक प्रवृत्ति का उल्लेख करना हो तो कहना न होगा कि वह प्रवृत्ति स्वच्छन्दता की है। इस प्रकार की स्वच्छन्दता बंगला नवीन कविता के प्रकाशस्तम्भ माइकेल मधुसूदन तथा बिहारीलाल की कविता के माध्यम से बंगला काव्य में समा गई और बाद में जिसने आकर रवीन्द्रनाथ की कविता में पूर्णरूप धारण किया। इस सम्बन्ध में लिखते हुए सुकुमारसेन कहते हैं—पहले पहल वैष्णव कविता के द्वारा बंगला साहित्य में शक्तिमान साहित्य की सृष्टि हुई थी। पंचदश षोडश शताब्दी के बंगला साहित्य की भाषा इस कविता के लिए उपयुक्त थी। परवर्ती साहित्य में यह भाषा ही एकच्छत्र साम्राज्य करती रही। उस ईडियम को हटाने की क्षमता या साहस किसी का न रहने पर ऊन विंश शताब्दी के मध्य भाग पर्यन्त बंगला कविता सम्पूर्ण व्यर्थ ही रही। माइकल मधुसूदन ने भाव तथा भाषा की ओर में नवजीवन प्रदान करने की चेष्टा की। वे अवश्य ही काफी अंश तक सार्थक हुए थे परन्तु पूर्णतः नहीं। और फिर उनके अनुवर्तिगण उनके सार्थक सृष्ट उपादानों का काम में नहीं लगा पाये। अपना पथ ढूँढ निकालने की योग्यता उन लोगों में नहीं थी। इनके बाद रवीन्द्रनाथ आते हैं। अति शैशव से ही रवीन्द्रनाथ साहित्य की मंत्र दीक्षा से दीक्षित हुए थे इसी कारण सम सामयिक बंगला काव्य के प्रति उनकी वितृष्णा जगी थी। भ्रमर के भ्रमभ्रान्त बोध को लिए हुए बालक कवि ने वैष्णव-पदावली में मधुर को ढूँढ निकाला। उसी के साथ संस्कृत तथा अंग्रेजी साहित्य का रस भंडार भी उसके अधिगत हुआ। काव्यशिल्प के उपादान के लिए उसको और कोई चीज ढूँढने की आवश्यकता नहीं रही। वैष्णव कविता का ललित माधुर्य संस्कृत कविता की कठिन दीप्ति, अंग्रेजी कविता का सूक्ष्म शिल्पकार्य रवीन्द्रनाथ के लेखनी बिन्दु पर त्रिवेणी संगम के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।[2]

हिन्दी छायावादी कवियों ने तथा मुख्यतया निराला जी ने बंगला अंग्रेजी

---

१ प्राज रोमैंटिक एगोनी

२ सुकुमारसेन बांगला साहित्येर इतिहास, तृतीय खण्ड, पृ० १६

तथा संस्कृत की इस त्रिवेणी धारा का अपने साहित्य में ग्रहण किया। इस सम्बन्ध में निराला जी ने लिखा है—

संसार की हर एक भाषा स्वाधीन चाल से ही चल कर और भिन्न भिन्न भाषाओं से ही शब्द लेकर अपना भण्डार भरती है। हिन्दी के पद प्रकरण में अधिक प्रभाव बगला और अंग्रेजी का पड़ा है यद्यपि दो एक आचार्यों ने संस्कृत का ही पूरा समर्थन किया है। अंग्रेजी का असर पड़ा उसके राज्यभाषा होने के कारण और बगला ने अपना प्रभाव जमाया अपनी उन्नति की बदौलत।[1]

हिन्दी कविताओं पर दूसरी भाषाओं का प्रभाव निराला जी का काम्य था। कारण वे सोचते थे कि इस प्रकार ही हिन्दी उन्नति कर पायगी। और उनका यह मत सन् १६२८ से ही स्पष्ट रूप धारण कर चुका था। सन् १६२८ के लेख में उन्होंने लिखा था—

प्रभात अनादि काल से लेकर आज तक समय के परिवर्तन के साथ-ही साथ हमारे भाषा-साहित्य का भी परिवर्तन होता गया है। जैसे साहित्य भी सृष्टि की नश्वरता के नियमों में बंधा हो— नवीन प्रकृति के अनुकूल चल रही हो। जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म कारण युग धर्म के रूप से साहित्य में इस प्रकार के परिवर्तन करते आए हैं। हमारी पराधीन हिन्दी पर पराधीनता के ही कारण फारसी का प्रभाव पड़ा अंग्रेजी का पड़ रहा है और आश्चर्य है उसकी प्रांतीय सहेलियां बगला मराठी आदि भी उस पर रोब गांठ रही हैं। ब्रजभाषा हिन्दी के समय फारसी को छोड़कर दूसरी किसी भी प्रान्तीय भाषा को उस पर प्रभाव छोड़ने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ, बल्कि बगला जैसी प्रान्तीय भाषाओं पर उसी का प्रभाव पड़ता रहा। दूसरी भाषाओं से कला को अवश्य ग्रहण करना चाहिए परन्तु प्रभावित होकर नहीं प्रीति से प्रेरित होकर।[2]

निराला जी ने अपनी इस प्रीति भावना से उद्बुद्ध होकर अपनी कविता के कला पक्ष को जहाँ तक सम्भव हो सका है बगला-कविता के पद विन्यास से संजोया है। परन्तु यह पद विन्यास दासत्व की भावना से प्रेरित होकर नहीं हुआ है वरन् इसके पीछे छायावादी युग की वह मूल प्रेरणा है जिसके सम्बन्ध में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपना मन्तव्य दिया है—

भावप्रवण नवीन दृष्टिकोण को अपनाने वाले कवि के चित्त में उन काव्य-रूढ़ियों का प्रभाव नहीं रह जाता जो दीर्घकालीन परम्परा और रीतिबद्ध चिंतन पद्धति

---

[1] निराला 'भाषा की गति और हिन्दी की शैली', चयन

[2] निराला 'हिन्दी-कविता साहित्य की प्रगति', चयन

के मार्ग से सरकती हुई सहृदय के चित्त पर आ गिरी होती है और कल्पना के अविरल प्रवाह में तथा आवेगों की निर्बाध अभिव्यक्ति में अन्तराय उपस्थित करती है। इस दृष्टिकोण को अपनाने से सौन्दर्य की नई दृष्टि मिलती है क्योंकि मानवीय आचारों और क्रियाओं के मूल्य में अन्तर आ जाता है। इस अवस्था में सौन्दर्य केवल बाह्य रूप में नहीं बल्कि आंतरिक औदार्य और मानस गठन में भी व्यक्त होता है। सौन्दर्य के बंधे सधे आयोजना घिसे घिसाए उपमानों और पिटी पिटाई उत्प्रेक्षाओं पर आधारित चिन्तन शून्य काव्य रूढ़ियों से मुक्ति पाया हुआ चित्त मानवता के मापदण्ड से सब कुछ को देखता है और फिर कल्पना के अविरल प्रवाह से घन संश्लिष्ट आवेगों की वह उर्वर भूमि प्रस्तुत होती है जो रोमांटिक या स्वच्छन्दतावादी साहित्य के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध होती है। मानवीय दृष्टि के कवि की कल्पना, अनुभूति और चिंतन के भीतर से निकली हुई, वैयक्तिक अनुभूतियों के आवेग की स्वतःसमुच्छित अभिव्यक्ति बिना किसी आभास और बिना किसी प्रयत्न के स्वयं निकल पड़ा हुआ भावस्रोत ही छायावादी कविता का प्राण है।[1] और इस प्रकार कल्पनागत नवीनता की खोज में छायावादी कवि ने बंगला-साहित्य को अपना प्रेरणा स्रोत बनाया क्योंकि उस साहित्य में छायावादी कविता की कल्पना के अनुरूप उपादान उपस्थित थे। निराला जी इनमें अग्रगण्य हैं और कल्पनागत अनुभूति की तीव्रता के कारण उनकी कविता ने बंगला कविता की नूतनता को आत्मसात् कर लिया और बंगला-कविता के माध्यम से अंग्रेजी कलागत प्रेरणाएं भी उनके काव्य में समाहित हो गई। निराला के काव्य संस्कार में रवीन्द्रनाथ के काव्य का बहुत अधिक हाथ है इसे स्वयं निराला ने भी कई बार स्वीकार किया है। वे रवीन्द्रनाथ को सामने रखकर हिन्दी को समृद्ध करने का प्रयत्न करते रहे।[2] कल्पना की दुर्वार शक्ति ने जहाँ निराला की कविता में नव भावों के समावेश के लिए बंगला-काव्य से तथा मुख्यतया रवीन्द्रनाथ से प्रेरणा ग्रहण की वहीं कलागत रूप विन्यास में नूतनता लाने के लिए बंगला-काव्य के कला विन्यास को अपने काव्य में विन्यस्त किया। ऐसे भी कल्पना के दो उपयोग हैं—पहला, जब वह रचना के रूप निर्माण में योग देती है और दूसरा जब वह स्वयं विषय अथवा विषय की मूल प्रेरणा बनकर आती है। पिछले अध्याय में कल्पना-पक्ष पर विचार करते हुए हमने निराला की कविता के कल्पनागत विचार-पक्ष पर विवेचन किया है यहाँ निराला

१ हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य, पृ० ४६२

२ नामवरसिंह छायावाद पृ० १०२

की कविता के कल्पनागत रूप विन्यास का विवेचन करेंगे और इसके अन्तर्गत मूर्तिविधान, प्रतीकचयन तथा रूपक पर बंगला प्रभाव हमारा विवेच्य विषय होगा क्योंकि मूर्तिविधान, प्रतीकचयन तथा रूपक के द्वारा भावों को परिचित रूप देने में कल्पना सबसे अधिक दौड़ लगाती है और छायावादी युग में तो उसने कमाल ही कर दिखाया है।

कल्पनागत रूप विन्यास

नामवरसिंह कहते हैं कि भाव-वेग से उत्पन्न अन्तर्दृष्टि दायिनी और सृष्टि विधायिनी कल्पना ने कविता के रूप विन्यास में इतना क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया कि बड़े बड़े सुधी समालोचकों को भी छायावाद एकदम नई काव्य शैली प्रतीत हुआ।[1] और यह रूप विन्यास आन्तरिक सौन्दर्य भावना—जिसके सम्बन्ध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत पिछले पृष्ठ में द्रष्टव्य है—का परिणाम है। परन्तु यह सौन्दर्य भावना रीतिकालीन सौन्दर्य भावना से प्रभावित न होकर यूरोपीय तथा बंगला प्रभाव-स्वरूप हिन्दी में आई यद्यपि इसमें प्राचीन संस्कृत साहित्य का प्रभाव भी निःसन्देह है। छायावादी कवियों ने रीतिकालीन कविता की रूढ़िवादिता और कृत्रिमता को अच्छी तरह भांप लिया था इसलिए उन्होंने कविता के रूप विन्यास में नवीन भावों को समाहित करने के लिए प्राचीन रूप विधि का विरोध कल्पनागत रूप विन्यास के आधार पर किया। जैसाकि हम बता चुके हैं कि कल्पनागत रूप विन्यास के प्रमुख तीन आधार हैं—रूपक, प्रतीक तथा बिम्ब।

रूपक

रूपक की योजना में वस्तु सत्य प्रभावशाली और मनोरम बनता है। कल्पना के प्रमुख उपकरणों में से यह एक है जैसाकि आइ० ए० रिचर्ड्स ने कहा है कि अलंकृत भाषा के प्रयोग में भी कल्पना ही कार्य करती है। रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का निर्माण इसी के अन्तर्गत आता है जब असाधारण रूप में इनका प्रयोग किया जाता है।[2] और इस असाधारण प्रयोग के कारण यह अलंकारमात्र न रहकर पद्धति विशेष बन जाता है। अपने मन के आशय को सुस्पष्ट

१ नामवरसिंह : छायावाद, पृ० ८३

२ The use of figurative language is frequently all that is meant People who naturally employ metaphor and simile especially when it is of an unusual kind are said to have imagination—I A Richards, Principles of literary Criticism page 249

सज्जा देने के लिए कवि रूपक का आश्रय ग्रहण करता है। रूपक पद्धति' भाव बोध का एक अत्यन्त सशक्त रूप है और उसमे कल्पना का जो प्रौढ और सयत रूप समाविष्ट है, उसकी उपेक्षा करना श्रेष्ठ कवि के लिए असम्भव है। यहाँ रूपक से रूपक काव्य (allegory) हमारा आशय नही वरन् रूपक (metaphor) अलकार है जो कल्पना के सयोग मे एक पद्धति विशेष बन जाता है। इस पद्धति विशेष को स्पष्ट करते हुए मोहित लाल मजुमदार लिखते हैं कि भाव यदि अशरीरी अर्थात लेखक के अन्तर से उत्थापित हुआ हो तब उसे रूप देने के लिए लेखक के मानस भण्डार मे प्रचुर इन्द्रिय सयुक्त रूप-स्मृति के सचित कोष का रहना आवश्यक है। लेखक उसी मे से लेकर भाव की रूप रचना करता है यहाँ भाषा रूपात्मक बन जाता है। यह अलकार नही भाव प्रकाशन का यथार्थ उपाय मात्र है।[1] उदाहरणार्थ—

बादल छाये
ये मेरे अपने सपने
आखो से निकल, मडलाये[2]

मानविक भाव-वेग के विस्तार के द्वारा निराला जी बहिः प्रकृति को नवीन रूप में रूपायित एव नव रस मे रसायित कर विधाता के प्राचीन सृष्टि-पट पर नवीनतर चित्र प्रस्फुटित करने मे समर्थ हुए हैं और यह रूपक के द्वारा सभव हो सका है। यद्यपि कल्पनागत रूपक का प्रसार निराला जी मे बहुत कम ही प्राप्त होता है तथापि जो कुछ भी है वह काव्य के रूप विन्यास मे सफलता के साथ प्रयोग मे लाया गया है। यह रूपक-पद्धति मुख्यतया रवीन्द्र के प्रभाव स्वरूप उनके काव्य मे सयोजित हुई है। मन के किसी भाव को प्रकट करने के लिए प्रकृति की सहायता लेना रवीन्द्र काव्य की एक विशेष प्रक्रिया है। जस रूपक भाव से विन्यस्त रवीन्द्र की कविता मे वर्षा जीवन सत्ता की चिरन्तन निगूढ प्रवृत्ति का प्रतिफलन करती है और इस प्रकार वर्षा रूपक रवीन्द्र के काव्य का एक विशेष रूपक बन जाता है। उदाहरणतया—

झर झर झरे जल, बिजुलि हाने
पवन मातिछे वने पागल गाने।
आमार पराण पुरे कोन खाने व्यथा फुटे,
कार कथा बेजे उठे हृदय—कोणे।

---

[1] मोहित लाल मजुमदार साहित्येर स्वरूप'
[2] निराला अणिमा

निराला की कविता में भी मन की करुण-व्यथा वर्षा के रूपक के माध्यम से और भी करुणतर बन जाती है—

बादल रे, जी तड़प ।
किये उपाय सकड़ों तन के,
मन के, चरण मिले सज्जन के,
व्यथ प्रार्थना जन भव है
पञ्जर पिञ्जर करके ।
अब अँधियाली ही वन्ती है,
छाया छाया पर चढ़ती है
प्राणों के घन श्याम गगन से
बूँदें कभी न बरस ।
छिप जाती है छवि बिजली से
सरसर से दबती है हो मे,
बूँदों की छन-छन से उन्मन
प्राण न मेरे हरस ।[1]

रवीन्द्रनाथ की म रूपक वैष्णव पदावली में मिला है जैसेकि सुकुमारसेन कहते हैं —

वैष्णव-पदावलीर वर्षामय विरहिणीर अन्तर दिगन्त मेदुर करिया दियाछे । आदिम मेघश्याम आकाश ताहार तमालनीपकुंजे रसेर उत्सवर डाक पाठियाछे, दादुर-दादुरी डाहुक डाहुकी । एदिके गृहकोणबद्ध विरहिणीर हृदय अश्रुविगलित । रवि करिया वैष्णव पदावलीर वर्षा मेघ कतिपय खण्ड रूप छाड़िया अपरूप सम्पूर्ण परिवेश रचना करियाछे ।[2]

परन्तु जहाँ वैष्णव-कविता में वर्षा केवल राधाकृष्ण की प्रणय-लीला की प्रियतम प्रधान परिवेश है वहाँ इसके विपरीत रवीन्द्रनाथ की कविता में वर्षा आवसत्ता का चिरन्तन, निगूढ़ अतृप्ति का प्रतिफलन करती है । रवीन्द्र-काव्य में वर्षाश्रयन व्यक्ति तथा वृहत्तर मानव जीवन की करुण व्यथा है—

ए भरा बादर दिने
के बाँधिबे श्याम बिने
काननेर पथ चिने मन येते चाय ।

---

१ निराला   अनामिका

२ सुकुमारसेन, बाङ्गला साहित्येर कथा, तृतीय सर्ग, षष्ठ सरकरण

विजन यमुना—कूले
विकसित नीमफूले
कांदिया परान बुले विरहव्यथाय।

निराला जी में भी यह रूपक प्राप्त है—

घन आये घनश्याम न आये।
जल बरसे आंसु दृग छाये।
पड़े हिंडोले, धड़का आया,
बढ़ी पेंग, घबराई काया,
चले गये गहराई छाया,
पायल बजे, होंठ मुरझाये।
भूले छिन, मेरे न कटे दिन
खुले कमल, मैंने तोड़े तिन,
अमलिन मुख की सभी सुहागिन
मेरे मुख सीधे न समाये।[1]

रवीन्द्र तथा निराला के काव्य में विश्व प्रकृति को हम इस प्रकार नूतन रूप में देखते हैं। यहां वहि प्रकृति पर मानव प्रकृति की छाया पड़ रही है। जैसे, वैदिक-कविता के निसर्ग चित्रों में देवलीला की अभिनय अनुकृति काफी अंश तक मानवलीला के अनुसरण पर होती रही और इसीलिए ऋग्वेद की कविता में वहि प्रकृति के चित्र में मानव प्रकृति की छाया पड़ती है। और इस छाया का स्पष्ट रूप जैसाकि सुकुमारसेन कहते हैं रूपक—उत्प्रेक्षा के माध्यम से ही प्रतिफलित हुआ है।[2]

जैसे अहोरात्रि का द्वंद्व नृत्य—

नाना चक्राते यम्या वपूंषि।
तयोरन्यद रोचते कृष्णमन्यत्।
श्यावी च यदरुषी च स्वसारौ।
महद्देवानामसुरत्वमेकम॥—ऋग्वेद, ३ ५५ ११

(यमज कन्याद्वय पृथक सज्जा से सज्जित होती हैं। एक की सज्जा से दीप्ति तथा दूसरे की सज्जा से कालिमा विच्छुरित होती है। श्याम तथा श्वेत दो बहनें वे हैं। देवगणों की महत् महिमा एक ही है)।

---

१ निराला गीतगुंज पृ० ८

२ सुकुमारसेन बांगला साहित्येर कथा, तृतीय खण्ड

कालिदास के काव्य में बहि प्रकृति देवसभा को त्याग कर मनुष्य के गृह के पास आ खड़ी हुई है। कालिदास की कल्पना ने मानव प्रकृति के साथ बहि प्रकृति का सादृश्य तथा साम्य प्रदर्शन कर सहृदय काव्य रूप धारण किया है। सुकुमारसेन कहते हैं कि कालिदास जीव तथा जड लीला के बीच प्रभेद काफी अंश तक हटाने में समर्थ हुए हैं।[1] जैसे स्वयंवर सभा में रघु इन्दुमती की दृष्टि विनिमय—

तत सुनन्दावचनावसाने
लज्जां तनूकृत्य नरेन्द्रकन्या।
दृष्टया प्रसादमलया कुमार
प्रत्यग्रहीत संवरणस्रजेव ॥—रघु०, ६।८०

जड प्रकृति को मानव प्रकृति का रूप देकर मेघदूत काव्य में कालिदास आधुनिकता की ओर अग्रसर हो गये हैं—

गत्वा चोर्द्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासित प्रस्थ संधे
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथि स्या।
शृङ्गोच्छ्रायै कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थित
राशीभूत प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहास ॥
—मेघदूत, पूर्वमेघ, ५८

रवीन्द्र काव्य में आकर यह बहि प्रकृति का मानव प्रकृति पर विस्तरण नूतन रूप धारण करता है कारण रवीन्द्र कालिदास की तरह विषय प्रधान (objective) कवि न होकर विषयी प्रधान (subjective) कवि थे और इसीलिए अपने भावों का प्रसारण (Projection) उन्होंने रूपक के द्वारा बहि प्रकृति में किया जैसे जनशून्य नदी-बकुल पर सन्ध्यागगन के अस्तराग को देखकर अनजान ही विरह की अभावित स्मृति जग पडती है—मालूम होता है—

विधुर हृदये सन्ध्या मुखे
याबोया तोमार सिंदुरे।

यह व्यक्तिगत भाव विशेष मन को छोड़कर निर्विशेष (universal) बन जाने के कारण ही इतना उपभोग्य बन सका है। तद्रूप भाव निराला जी में भी पाया जाता है—

---

[1] बांगला साहित्येर कथा, तृतीय खण्ड (द्वितीय संस्करण) पृ० ६

डूबा रवि अस्ताचल,
सन्ध्या के दृग छल छल ।[1]

सूर्यास्त के द्वारा रवीन्द्र की तरह निराला जी ने भारतीय संस्कृति के विनाश का भी रूपक प्रस्तुत किया है। जैसे—

रवीन्द्र—

शताब्दीर सूर्य आजि रक्तमेघ माझे
अस्त गेलो,—हिंसार उत्सवे आजि बाजे
अस्त्रे अस्त्रे मरणेर उन्माद रागिनी भयंकरी ।

और निराला—

भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे—तमस्तूर्य दिङ् मण्डल,[2]

फिर गंभीर यामिनी में झिल्लिरव को रवीन्द्र ने ध्यानमग्न विश्व प्रकृति का रूपक देकर प्रस्तुत किया है जो—

अन्धकारेर जयेर मालाय एकटाना सुर—गूँथता जा रहा है। निराला ने भी अन्धकार को ध्यान निमग्न व्यक्ति रूपक में प्रकट किया है—

स्तब्ध अन्धकार सघन
मन्द गन्ध भार पवन,
ध्यान मग्न नश गगन
मूँदे पल नीलोत्पल ।[3]

अथवा

है अमा निशा उगलता गगन घन अन्धकार,
खो रहा दिशा का ज्ञान स्तब्ध है पवन चार,
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल,
भूधर ज्यों ध्यान मग्न, केवल जलती मशाल ।

इसके अतिरिक्त वसन्त प्रभात में प्रकृति की उज्ज्वल परिपूर्णता के बीच अचानक कवि रवीन्द्र चौंक जाते हैं—बहती हवा में उन्हें किसी का आभास मिलता है—

१ निराला गीतिका
२ निराला तुलसीदास
३ निराला गीतिका
४ निराला राम की शक्तिपूजा

आशा-याओआर आभास भासे बातासे चंचल ।

कवि निराला को भी यह भान होता है—

ऊषा के अधरों में अरुण अधीर
भर मुग्धा की चितवन में अनजान,
तरुण अरुण यौवन प्रभात विज्ञान,
प्रथम सुरभि में भर उन्माद—विकास
अभी अभी आई थी मेरे पास ।
वातायन में कर कोमल आघात
स्वप्न-जटित जीवन-कगोर,
उच्छ ममता की गह डोर,
खींच रही थी अपनी ओर,—प्रभात ।[1]

इस प्रकार निखिल चराचर के ऊपर मानविक अनुभूति की यह स्थिति सत्य ही एक अभूतपूर्व प्रक्रिया है। कहीं कहीं रवीन्द्रनाथ के स्पर्श विराट महिमा में महाकाव्य की कल्पना की छाह भाग बन जाते हैं, जैसे—

कालेर राखाल तुम सन्ध्याय तोमार शिंगा बाजे,
दिन धेनु फिरे आसे स्तब्ध तव गोष्ठ गृह माझे,
उत्कण्ठित वेगे ।
निर्जन प्रान्तरतले
आलेयार आलोज्वले
विघ्नुन—वहिनर सप हाने युगान्तेर मेघे ।

सुकुमार सेन इसको cosmic metaphor की आख्या देते हैं। इस प्रकार के cosmic metaphor का प्रयोग निराला की कविता में भी प्राप्य है—

शत शत अर्मा की सांध्य काम
यह आकुंचित—भ्रू कुटिल भाल
छाया अम्बर पर जलद—जाल ज्यों दुस्तर,[2]

अथवा—

सोई घर गगन का मन, फन,
कुण्डली—नगनतीन विश्व जन ।[3]

---

१ निराला: परिमल
२ निराला: तुलसीदास
३ निराला: [illegible]

डूबा रवि अस्ताचल
सन्ध्या के दृग छल छल।[1]

सूर्यास्त के द्वारा रवीन्द्र की तरह निराला जी ने भारतीय संस्कृति के विनाश का भी रूपक प्रस्तुत किया है। जैसे—

रवीन्द्र—

शताब्दीर सूर्य आजि रक्तमेघ माझे
अस्त गेलो,—हिंसार उत्सवे आजि बाजे
अस्त्रे अस्त्रे मरणेर उन्माद रागिनी भयकरी।

और निराला—

भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे—तमस्तूर्य दिङ्‌ मण्डल,[2]

फिर गंभीर यामिनी में झिल्लिरव को रवीन्द्र ने ध्यानमग्न विश्व प्रकृति का रूपक देकर प्रस्तुत किया है जो—

अन्धकारेर जपेर मालाय एकटाना सुर—गूथता जा रहा है। निराला ने भी अन्धकार को ध्यान निमग्न व्यक्ति रूपक में प्रकट किया है—

स्तब्ध अन्धकार सघन
मन्द गन्ध भार पवन,
ध्यान मग्न मग्न गगन,
मूदे पल नीलोत्पल।[3]

अथवा

है अमा निशा उगलता गगन घन अन्धकार,
खो रहा दिशा का ज्ञान स्तब्ध है पवन चार,
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल,
भूधर ज्यों ध्यान मग्न, केवल जलती मशाल।

इसके अतिरिक्त वसन्त प्रभात में प्रकृति की उज्ज्वल परिपूर्णता के बीच अचानक कवि रवीन्द्र चौंक जाते हैं—बहती हवा में उन्हें किसी का आभास मिलता है—

---

१ निराला गीतिका
२ निराला तुलसीदास
३ निराला गीतिका
४ निराला राम की शक्तिपूजा

आसा याओआर आभास भासे वातासे चचल।

कवि निराला का भी यह ज्ञात होता है—

ऊषा के अधरों मे अरुण अधीर
मर मुग्धा की चितवन मे अनजान,
तरुण अरुण यौवन प्रभात विज्ञान,
प्रथम सुरभि मे भर उन्माद—विकास
अभी अभी आई थी मेरे पास।
वातायन मे कर कोमल आघात
स्वप्न-जटित जीवन कशोर,
उच्छ खलता की गई डोर,
खींच रही थी अपनी ओर,—प्रभात।[1]

इस प्रकार निखिल चराचर के ऊपर मानविक अनुभूति की यह स्थिति [illegible] एक अभूतपूर्व प्रक्रिया है। कहीं कहीं रवीन्द्रनाथ के रूपक विराट [illegible] महार्घता एवं कल्पना को छोड़ आगे बढ़ जाते हैं, जैसे—

कालेर राखाल तुमि सन्ध्याय तोमार शिंगा बाजे,
दिन धेनु फिरे आसे स्तब्ध तव गोष्ठ-गृह माझे,
उत्कण्ठित वेगे।
निर्जन प्रान्तरतले
आलेयार आलोज्वले
विद्युत—वह्निर सर्प हाने युगान्तेर मेघे।

सुकुमारसेन ने इसे cosmic metaphor' का [illegible]
cosmic metaphor का प्रयोग निराला की कविता में [illegible]

गत गत अब्दों की साध्य [illegible]
यह आकुंचित—भ्रू कुंचित [illegible]
छाया अम्बर पर [illegible]

अथवा—

सोई पर गगन का [illegible]
कुण्डली—[illegible]

---

[1] निराला: परिमल
[2] निराला: [illegible]
[3] निराला: [illegible]

प्रतीक

कल्पनागत रूप विन्यास का दूसरा सूत्र प्रतीक है। प्रतीक के सम्बन्ध में किसी आलोचक का मत है कि प्रतीकात्मक काव्य में रूपक जैसे विस्तार की आवश्यकता नहीं है। सूक्ष्मता और व्यंजकता 'प्रतीक' के विशिष्ट गुण हैं। प्रणय की उत्कटता दिखाने के लिए दीप पतंग जैसे प्रतीक आदिम काल से चले आते हैं। नये-नये प्रतीकों की खोज और पुराने प्रतीकों का नये सन्दर्भ में उपयोग कविता की भाव-पक्ष सम्बन्धी वृद्धि के लिए अनिवार्य है।

नामवरसिंह प्रतीक को रूप अथवा फार्म से अलग मानते हैं। उनका कहना है कि अंग्रेजी में जिसे फार्म कहते हैं उनका सटीक अर्थ 'संगति' है अर्थात् फार्म वह है जिसमें भाव के साथ रूप की पूर्ण संगति हो।[1] यह कथन प्रसिद्ध आलोचक ए० सी० ब्राडले का है। वे कहते हैं कि विषय और रूप में कोई भेद नहीं है। यह एक प्रकार की ऐसी अभेदमयी स्थिति है जैसे रक्त तथा जीवन की। और यह अभेदमय स्थिति ही कविता है, और कला भी है।[2] नामवरसिंह इसके उपरान्त कहते हैं कि भाव और रूप की पूर्ण संगति के बाद कभी-कभी काव्य की रूप विधि एक और कार्य करती है। अपनी सार्थकता प्रमाणित कर चुकने के बाद जब 'रूप अथवा फार्म' किसी अतिरिक्त भाव की व्यंजना करता है तब वह 'प्रतीक' हो जाता है। झंझा जब अपनी ध्वनि से आँधी पानी दोनों का पूर्ण बोध करा देती है तो उसके रूप की सार्थकता पूरी हो जाती है। किन्तु इससे आगे बढ़कर जब वह किसी हृदय की व्यथा और क्षोभ की ओर संकेत करती है तो अपनी सार्थकता के अतिरिक्त कार्य करती है।[3] नामवरसिंह का प्रतीक के सम्बन्ध में यह मत स्वतोव्याघात (self contradiction) से युक्त है क्योंकि प्रतीक रूप विन्यास की एक प्रक्रिया है और रूप वास्तव में भाव का विन्यास है और इस प्रकार भाव और रूप की संगति के भीतर ही प्रतीक को स्थान मिलना चाहिए उससे अलग नहीं। श्रीमान केदारनाथसिंह का भी यही मत है—

---

१ नामवरसिंह छायावाद, पृ० ८७

२ It is a unity in which you can no more separate a substance and a form than you can separate living blood and the life in the blood And this identity of content and form you will say is no accident it is of the essence of poetry in so far as it is poetry and of all art in so far as it is art Oxford lectures on poetry Page 15

३ नामवरसिंह छायावाद पृ० ८८

काव्य का कलात्मक रूप (फ़ार्म) न तो केवल बिम्ब में होता है, न प्रतीक में, न उत्प्रेक्षा में और न शब्द-संगीत अथवा छन्द के प्रवाह में। वह इन सबकी 'एकान्विति' या 'सुसंघटन' में होता है। यह 'सुसंघटन' कहीं बाहर से नहीं आता। यह स्वयं वस्तु का गुण है, कल्पना इसी 'सुसंघटन' की खोज करती है।[1] इस प्रकार कल्पनागत रूपविन्यास प्रतीक आदि 'सुसंघटन' अर्थात् 'संगति' के लिए काम करती है। 'संगति' में ही उसका अन्त है। प्रतीक की परिभाषा देते हुए केदारनाथसिंह लिखते हैं कि मनुष्य के भावलोक में बहुत-सी ऐसी बातें होती हैं जिन्हें हम सामान्य व्यवहार की भाषा अथवा स्थूलार्थी बिम्बों के माध्यम से नहीं व्यक्त कर सकते। ऐसे सूक्ष्म तथा अद्धस्पष्ट भावों के लिए मनुष्य प्रतीकों की सृष्टि करता है। मानव-सभ्यता के विकास में प्रतीकों का उतना ही योग है जितना हमारे जीवन के विकास में सूर्य तथा जल का।[2] उनका और कहना है कि साहित्य और कला में प्रयुक्त होने वाले प्रतीकों का क्षेत्र बहुत व्यापक है। अन्य क्षेत्रों में बौद्धिक प्रतीकों का प्राधान्य होता है, काव्य में संवेदनात्मक अथवा भावात्मक प्रतीक ही ग्राह्य होते हैं। कारण यह है कि वहाँ प्रतीकों का निर्माण, सचयन और संयोजन कल्पना के द्वारा होता है। इस काम में कल्पना को विशाल सांस्कृतिक उपलब्धियों और चिराचरित भावना-पद्धतियों से सहायता मिलती है। केवल यही नहीं कल्पना के माध्यम से कभी-कभी नूतन प्रतीकों की योजना भी होती है और आधुनिक काव्य में नये प्रतीकों की महत्ता ही सबसे अधिक है।

छायावादी कवियों की प्रतीक योजना साधारणतया नवीनता को लिए हुए है। केदारनाथसिंह का कहना है कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताओं के द्वारा पहले-पहल नवीन प्रतीकों की अगणित संभावनाओं की ओर लोगों का ध्यान गया। हिन्दी की छायावादी कविता पर भी इसका प्रभाव पड़ा।[3] जैसा कि हम बता चुके हैं कि प्रतीक शब्दशक्ति का मूल उत्स है परन्तु व्यवहार करने से प्रतीक का रंग फीका पड़ जाता है, विशिष्ट बात साधारण उक्ति में परिणत हो जाती है। तब प्रयोजन होता है नूतन प्रतीकों का अथवा पुराने प्रतीकों का नवरूपायन। रवीन्द्र ने यह कार्य सरलता के साथ किया परन्तु कुछ आलोचकों के मतानुसार इन नये प्रतीकों का प्रयोग रवीन्द्र ने फ्रांस के बिम्बवादी सांकेतिक स्कूल (Imagist school of symbolic poetry) के प्रभाव स्वरूप अपनाया है। यह सिद्धान्त

---

१ केदारनाथसिंह, कल्पना और छायावाद, पृ० १२२

२ कल्पना और छायावाद, पृ० ६६

३ केदारनाथसिंह, कल्पना और छायावाद, पृ० १०३

भ्रमात्मक है। कारण फ्रांस के सांकेतिक कविगण ने विशेष अर्थ-व्यंजना के लिए नूतन शब्दों की सृष्टि की है। इस प्रकार के शब्दों को पारिभाषिक या सांकेतिक कहा जाता है। व्यापक रूप से उस प्रकार के शब्दों का व्यवहार काव्य में नहीं किया जा सकता। भाषा और साहित्य के अतीत इतिहास को मान लेना ही पड़ता है और रवीन्द्र ने उसको मानकर अपनी स्वकीयता का परिचय दिया है। साधारण अत्यन्त परिचित प्रतीकों का अपने विचारों के प्रसंग में व्यवहार कर रवीन्द्र ने अपनी मौलिकता प्रदर्शित की है और जहाँ तक उनके आध्यात्मिक रहस्यवादी प्रतीकों का प्रश्न है वहाँ भी वे उपनिषद् के अद्वैत सिद्धान्त से प्रभावित हैं न कि फ्रांस के प्रतीकवादी पाल भलरी आदि की तरह ईसाई संत-कवियों के द्वारा। इसको स्पष्ट समझने के लिए आधुनिक काव्य के नवीन प्रतीकों के समारम्भ पर विचार कर लेना होगा।

उन्नविंश शताब्दी के जड़वादी वस्तुविज्ञान के प्रभाव से फ्रांस के साहित्य में मनचले वस्तुवाद की उद्भावना हुई थी। परन्तु धीरे धीरे जोला, फ्लवेयर की यह कामना पंकिल वस्तुवादी दृष्टिभंगी की प्रचंडता शिथिल होने लगी एवं इसकी स्वाभाविक प्रक्रियास्वरूप एक विरोधी नवीन आदर्श क्रमशः साहित्य में पनपने लगा। लेखकों ने समझा पाठक ने भी अनुभव किया कि इस वस्तुपुंज के अन्तराल में जो अमूर्त अध्यात्मजगत विराजमान है उसी को जानना होगा और जतलाना होगा। तभी से प्रतीकात्मक काव्य (सिम्बोलिक पोयट्री) का सूत्रपात हुआ। इन्द्रिय सुरा के माध्यम में अतीन्द्रिय सुधा का संधान प्रारम्भ हुआ। यह अन्तर की मुक्ति है आत्मा की मुक्ति है परमात्मा की मुक्ति है। साइमन ने अपनी पुस्तक में भी यही बात कही है।[१] इसको स्पष्ट करने के लिए यह कहा जा सकता है कि मानव अपूर्ण है उसकी भाषा भी अपूर्ण है इसीलिए उस भाषा के द्वारा कोई पूर्णभाव या आदर्श प्रकाशित करना सम्भव नहीं है। परन्तु उस पूर्णता का आभास प्रतीक में प्राप्त हो जाता है। नारी सौंदर्य को समझाने के लिए यदि एक गुलाब के फूल का उदाहरण दिया जाय तो नारी सौन्दर्य का पूर्ण आदर्श प्रतिभासित हो उठता है। इएटस ने यही बात कही है।[२] मानव जिस प्रकार अपूर्ण है मानव प्रेम भी उसी तरह अपूर्ण है किन्तु जब वह अपना प्रेम भगवान् के चरणों पर अर्पित करता है तब उसको पूर्णता का आस्वाद प्राप्त होता है, उसका प्रेम परिपूर्ण तथा सार्थक बनता है। मानव तथा भगवान् का यह प्रेम सम्बन्ध पाल भलरी तथा रवीन्द्रनाथ ने

१ It is all an attempt to spiritualise literature to evade the old bondage of rhetoric the old bondage of exteriority २ Symbols are the only things free enough from all bonds to speak of perfection

स्थापित किया है। परन्तु रवीन्द्र उपनिषद के अद्वैत सिद्धान्त से प्रभावित थे तथा पॉल भलरी ईसाई संतकवियों से प्रभावित होकर बियाण्ड की खोज में लगे थे। दोनों का विषय एक है परन्तु प्रभाव सम्पूर्ण अलग।

रवीन्द्रनाथ की रचना में भारतीय अध्यात्म भावना तथा साहित्य-साधना का समन्वय प्राप्त होता है। सुकुमारसेन कहते हैं कि मनन में तथा प्रकाशन में परम्परागत चली आती हुई भारतीय साहित्य में जो कुछ मौलिक विशिष्टता है वही रवीन्द्र रचना में अवश्य ही अंतर्लीन है एवं किसी किसी भाव में व्यंजित है। भारतीय साहित्य-साधना पहले से ही अध्यात्म भावनामय है इसी लिए अधिक प्रतीकाश्रित है। तथा इसी कारण रवीन्द्र के वाणी शिल्प में प्रतीक का व्यवहार अनपेक्षित नहीं है।

सुकुमारसेन रवीन्द्र-काव्य की इस अध्यात्म भावना को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि अस्ति-नास्ति के गति स्थिति के पेण्डुलम में महाकाल की निमेष-गणना चल रही है। रवीन्द्रनाथ की कवि-कल्पना तथा अध्यात्म भावना भी द्वन्द्वाश्रित है यद्यपि वह द्वन्द्व नास्ति वर्जित है उसको कहा जा सकता है सर्वास्तिवादी। एक ओर जीवन देवता अभिसार के लिए बढ़ा चला आ रहा है और दूसरी ओर अन्तर्यामी स्वयंवर के लिए बढ़ी चली आ रही है। कवि हृदय के इस द्विधाभिन्न सत्व (Ego and super ego) की सहयोगिता में ही जीवन पूर्णता की ओर अग्रसर होता है। यही रवीन्द्र रचना का द्वैतवाद है।[1] और यह द्वैतवाद गंभीरतर अद्वैतानुभूति के ऊपर प्रतिष्ठित है। रवीन्द्रनाथ के काव्य में प्रतीकों की संयोजना इस भाव के समर्पण के लिए संयोजित हुई है जो सामान्यतः तीन प्रकार के हैं

१ परिचित वस्तु तथा भाव घटित प्रतीक।

२ पुरान कहानी कालिदास के काव्य तथा वैष्णव-पदावली से गृहीत परम्परागत प्रतीक।

३ आध्यात्मिक प्रतीक।

रवीन्द्रनाथ के इन प्रतीकों द्वारा निराला बहुत ही प्रभावित हुए हैं और मुख्यतया रवीन्द्र के *आध्यात्मिक प्रतीकों द्वारा क्योंकि निराला* का विचार-पक्ष रवीन्द्र के अध्यात्म विचारों से बहुत ही प्रभावित है। इसका विवेचन हम रवीन्द्र के प्रतीकों के वर्णन द्वारा करेंगे।

जैसा कि हम बता चुके हैं कि रवीन्द्र ने नये प्रतीकों की सृष्टि अपनी अद्वैत-

---

१ सुकुमार सेन, बांग्ला साहित्येर कथा, [illegible] नूतन संस्करण, पृष्ठ ३०१

भावना को प्रकट करने के लिए की है परन्तु यह काय उन्होंने पूर्व परिचित वस्तुओं में नवीन अर्थ भर कर किया है। निराला ने भी व्यंजनागर्भी प्रतीकों का प्रयोग रहस्यात्मक सत्ता को प्राणवान बनाने के लिए किया है। नामवरसिंह यही बात कहते हैं—छायावादी कवियों ने कभी कभी व्यंजनागर्भी प्रतीकों का प्रयोग किया। ऐसा प्राय वहीं हुआ है जहां किसी रहस्यात्मक सत्ता की ओर संकेत है।[1] परन्तु रवीन्द्र के प्रतीक जहां अद्वैत विचार पक्ष की द्वैत भावना को प्रकट करने के लिए मुख्यतया संयोजित हुए हैं और इसी कारण दो प्रतीकों का इकट्ठा सचयन सुकुमारसेन के शब्दों में गतिस्थिति की तरह द्वैत रूप में रवीन्द्र काव्य में पाया जाता है वैसी कोई स्थितिशीलता निराला-काव्य में नहीं है। कारण निराला का दार्शनिक विचार रवीन्द्र की तरह एकोन्मुखी नहीं है इसलिए निराला के प्रतीक सामान्यतः द्वैत भावना के प्रतीक नहीं हो पाये हैं यद्यपि मोटे रूप में वे अद्वैत की व्याख्या करते हैं। रवीन्द्र ने जहां-कहां से भी दार्शनिक विचारों का चयन किया है वह उनके मूलभूत अद्वैत विचार को प्रतिष्ठित करने के लिए हो है न कि विभिन्न दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति के लिए। इसीलिए उनके सभी प्रतीक एक ही द्वैत भावना को प्रकाशमय करते हैं जो कि अद्वैता नुभूति की भूमिका पर अधिष्ठित हैं। सुकुमारसेन ने इसकी एक सूची तैयार की है जहाँ द्वैत रूप में दो प्रतीकों को प्रस्तुत किया गया है। पथ स्रोत, पथ घर पथ-रथ, हाट बाट फागुन प्रदीप वह्नि वीणा धूला घास आदि। इन युग्म प्रतीकों के द्वारा रवीन्द्र ने अद्वैत की ही प्रतिष्ठा की है। निराला के प्रतीक इस प्रकार एक निश्चित रूप रेखा के अंतर्गत नहीं समा सकते हैं यद्यपि अर्थ की दृष्टि से रवीन्द्र के व्यंजनागर्भी प्रतीकों का अर्थ ही इन्होंने ग्रहण किया है जो अद्वैतधर्मी है। यह सभी रहस्यात्मक प्रतीक के अंतर्गत हैं।

रवीन्द्र के परिचित वस्तु तथा भाव घटित प्रतीक द्वारा प्रभावित निराला के प्रतीक—

पथ—रवीन्द्र के लिए पथ के सामान्यतः तीन अर्थ हैं—

(क) पथ व्यक्ति के जंगम जीवन का प्रतीक है—

यत आशा पथेर आशा
पथे जेतेइ भालबासा,
पथे चलार नित्य रस
दिने दिने जीवन उठे माति।

[1] नामवरसिंह छायावाद पृष्ठ ६६

निराला ने भी पथ प्रतीक का यही अर्थ ग्रहण किया है—

नयन ज्योति में ज्ञान अकम्पित
चली जा रही नत मुख, विकसित,
जीवन के पथ पर अविचल चित,
छवि अपार सुन्दर।[1]

अथवा— पथ पर मेरा जीवन भर दो।[2]

(ख) यहाँ रवीन्द्र के लिए पथ प्रयास का प्रतीक है

घरेइ तोमार आना गोना पथे
कि आर तोमाय खु जि।

निराला ने इसे भी ग्रहण किया है—

कब से मैं पथ देख रही, प्रिय,
उर न तुम्हारे देख रही, प्रिय।[3]

(ग) पथ प्रतीक का तीसरा अर्थ रवीन्द्र के लिए कवि-सत्व की सचेष्ट जीवन लीला है

पथे चले येते येते कोथा
कोनखाने, तोमार परस आसे
कखन के जाने।

निराला ने भी पथ के द्वारा कवि का जीवन-लीला का प्रकट किया है—

मैं बैठा था पथ पर,
तुम आये चढ़ रथ पर।
हँसे किरण फूट पड़ी
टूटी जुड़ गई कड़ी
भूल गये पहर घड़ी
आई रति रथ पर।[4]

रथ

रवीन्द्र के लिए रथ जीवन-देवता का आविर्भाव है। परम आनन्द का अनुभव है

---

१ निराला गीतिका
२ निराला अपरा
३ निराला गीतिका
४ निराला अणिमा

तोमार कि रथ पौंछवे ना मोर दुयारे।

निराला के उपर्युक्त पद्य प्रतीक कविता के चरणों में रथ का यही प्रतीकात्मक अर्थ ग्रहण किया गया है यद्यपि निराला के लिए रथ के और भी प्रतीकात्मक अर्थ हैं जैसे—

जीवन के रथ पर चढ़कर
सदा मृत्यु पथ पर बढ़कर।

अथवा—

नव काया का माया रथ।
रोका लख सुन्दर कानन।

चरण-चिह्न

रवीन्द्र के लिए चरण चिह्न का प्रतीक, सुकुमारसेन के अनुसार जीवन देवता का गोपन आविर्भाव है

हृदये मोर कखन जानि पड़ल
पायेर चिह्नखानि।

निराला का प्रतीक भी इसी भाव का द्योतक है—

प्रथम पलक खुलते ही देखा
चरण चिह्न, नूतन पथ रेखा।[1]

घाट तथा बाट

घाट, सुकुमारसेन के अनुसार रवीन्द्र के लिए संसार की अभिन्नता का प्रतीक है तथा बाट संसार की कर्मधारा है

आमारे ये नामते हबे घाटे घाटे।

एवं— तोरा कोन रूपेर हाटे चलेछिस भवेर बाटे।

निराला ने भी बिल्कुल ऐसी अर्थ को प्रकट करने के लिए इन दोनों प्रतीकों का वर्णन किया है।

रुके नहीं धनि चरण घाट पर,
देखा मैंने मरण बाट पर,
टूट गये सब आट ठाट, घर,
छूट गया परिवार।[2]

---

१ निराला गीतिका
२ वही

द्वार

सुकुमारसेन के अनुसार रवीन्द्र के लिए द्वार के दो प्रतीकात्मक अर्थ हैं।

(क) रुद्ध द्वार जो अज्ञानजनित बाधा तथा मूढ़ता प्रकाशित करता है

ये राते मोर दुयारगुलि भाँगलो झड़े

निराला ने भी 'रुद्ध द्वार' से यही अर्थ ग्रहण किया

रुद्ध द्वार पर रक्खे थे मैंने कितने ही बार
अपने वे उपहार कृपा के लिए तुम्हारी अनुपम।[1]

अथवा—

वह खुला न द्वार, दिवस बीता,
हो गई निरथ सकल गीता
मैं सोया पथ पर खिन्नमना
मुद गई दृष्टि ज्योति कारा।[2]

(ख) उन्मुक्त द्वार—प्रस्तुति तथा स्वागत का द्योतक है

तोमार कि रथ पौंछबे ना मोर दुयारे

निराला ने भी यही अर्थ ग्रहण किया है

प्रात तव द्वार पर,
आया, जननि, नैश अन्ध पथ पार कर।[3]

वसन्त

सुकुमारसेन के अनुसार रवीन्द्र के लिए वसन्त के भी प्रतीकात्मक अर्थ दो हैं।

(क) सामान्य रूप से वसन्त ऋतु

फागुन ये बान डेकेछे माटिर पाथारे।

निराला के लिए भी 'वसन्त' का एक अर्थ सामान्य वसन्त ऋतु है

सखि वसन्त आया।
भरा हर्ष वन के मन,
नवोत्कर्ष छाया।

(ख) रवीन्द्र के लिए 'वसन्त' का दूसरा अर्थ है—कवि अस्त का यौवन स्मृति

---

१ निराला परिमल
२ निराला गीतिका
३ निराला गीतिका

आमार हेथाय फागुन वृथाय
बारे बारे डाके ये ताय।

निराला के लिए भी 'वसन्त' यौवन का प्रतीक है

अभी न होगा मेरा अन्त।
अभी अभी ही तो आया है
मेरे वन मे मृदुल वसन्त—
अभी न होगा मेरा अन्त।[1]

बांसुरी और वीणा

सुकुमारसेन कहते हैं कि रवीन्द्र के लिए 'सिम्बल' की दृष्टि से बांसुरी के दो अर्थ हैं'[2]—

(क) संसार में व्यस्त जीवन देवता की पुकार

आमार ए तार बाधा काछेर सुरे,
ऐ बांशि य बाजे दूरे।

निराला के बांसुरी प्रतीक का एक अर्थ यह भी है

हृदय मे कौन जो छेड़ता बांसुरी ?[3]

(ख) जीवन की दुःख वेदना में मध्य से उत्पन्न अकारण हर्ष के अनुभव का प्रतीक

पराणे बाजे बांशि नयने बहे धारा।

और निराला में भी

बांसुरी जो बजी
लाज कुल की तजी।
यमुना पुलिन अजन,
भाजे नयन, सजन
तन, बसे फूल जन
मन देखकर सजी।[4]

वीणा रवीन्द्र के लिए जीवन और भुवन की आनन्दतन्मयता है

तोमार वीणा आमार मनोमाझे
कखनो शुनि कखनो भुलि कखनो शुनि ना ये।

---

१ निराला परिमल
२ सुकुमारसेन बाङ्ला साहित्येर कथा, तृतीय खण्ड द्वितीय संस्करण, पृ० ३७८
३ निराला गीतिका
४ निराला आराधना

निराला के लिए भी वीणा की झंकार आनन्ददायक है

नाथ, तुमने गहा हाथ वीणा बजी
विश्व यह खो गया साथ द्विविधा लजी।[1]

सुकुमारसेन के अनुसार वेणु तथा वीणा रवीन्द्र-वाणी का सबसे बड़ा सिम्बल है। वेणु के लिए वे वैष्णव-पदावली के ऋणी हैं परन्तु वीणा का रूपक रवीन्द्र का अपना है। निराला इन दोनों प्रतीकों के लिए रवीन्द्र के ऋणी हैं यद्यपि वीणा के स्थान पर उन्होंने कभी-कभी 'सितार' का प्रयोग कर अपनी स्वकीयता का परिचय दिया है

फिर सवार सितार लो।
बाँधकर फिर ठाट अपने
अंक पर झंकार दो।[2]

वह्नि तथा दीप

सुकुमारसेन कहते हैं कि रवीन्द्र के लिए वह्नि दुःखदहन का भस्म निर्वाण अर्थात् अग्नि-परीक्षा है

ज्वलते दे तोर आगुन टारे,
भय किछु ना करिस तारे
छाइ हये से निभवे यखन ज्वलवे ना आर कभु तबे।

निराला ने भी 'वह्नि' का कहीं-कहीं इस प्रतीक अर्थ में ग्रहण किया है

मुझे स्नेह क्या मिल सकेगा?
स्तब्ध, दग्ध मेरे मरु का तरु
क्या करुणाकर खिल न सकेगा।[3]

प्रदीप रवीन्द्र के लिए शोक दहन का मंगल आलोक है।

आमार सकल दुखेर प्रदीप ज्वेले
दिवस गेले करब निवेदन।

निराला के लिए भी दीप इसी भाव का प्रतीक है

जीवन प्रदीप चेतन तुमसे हुआ हमारा
ज्योतिष्क का उजाला ज्योतिष्क से उतारा।[4]

---

१ निराला : बेला
२ निराला : अपरा
३ निराला : अर्चना
४ निराला : बेला

तरी

रवीन्द्र के लिए जीवन देवता के पास पहुँचने का वाहन है—

एबार भासिये दिते हबे आमार एइ तरी।
तीरे बसे याय ये बेला मरि गो मरि॥

निराला के लिए भी नौका जगत के पार पहुँचने का प्रतीक है

जीवन की तरी खोल दे रे
जग की उत्ताल तरंगों पर।[1]

प्याला

सुकुमारसेन कहते हैं कि रवीन्द्र के अनुसार प्याला जीवन के दुख सुख की सकीर्णता तथा संक्षिप्तता को व्यंजित करता है

मिलनेर पात्रटि पूर्ण ये विच्छेद वेदनाय।

परन्तु इस अर्थ में निराला के प्याला प्रतीक का व्यवहार नहीं हुआ है। सुकुमारसेन के अनुसार रवीन्द्र ने प्याला का एक और प्रतीक गर्भित अर्थ लिया है जिसके अनुसार प्याला जन्म मृत्यु व्यवच्छिन्न मर्त्य जीवन का प्रतीक है

आमार पात्रखाना याय यदि याक भेंगे चुरे।

निराला ने केवल इस अर्थ में 'प्याला' को ग्रहण किया है

मृत्यु निर्माण प्राण-नश्वर
कौन देता प्याला भर भर?[2]

अथवा—

आज प्याले गरल के धन,
कह रही हो हँस—पियो, प्रिय
पियो प्रिय निरुपाय।
मुक्ति हूँ मैं, मृत्यु में
आई हुई, न डरो।[3]

राखी

रवीन्द्र तथा निराला दोनों के अनुसार राखी जीवन के सम्पूर्ण आनन्द की आशा की प्रतीक है।

रवीन्द्र—तोमार हातेर राखीखानि बांधो आमार दखिन—हाते।

---

१ निराला गीतिका
२ निराला अनामिका
३ निराला वही

निराला—उड़ो, तमिस्रा की रक्षा की राखी जो बाँधी।

शेफालिका

निराला काव्य में रामरतन भटनागर के अनुसार शेफालिका या शेफाली आत्मा की प्रतीक है। आत्मा के परमात्म विलास को कवि ने इस सुन्दर रूपक द्वारा स्पष्ट किया है।[1] रवीन्द्र ने भी शेफाली का प्रयोग काव्य में किया है परन्तु उनके लिए शेफाली जैसे सभी फूल, सफलता के प्रतीक हैं —

ताराय ताराय रवे तारि
वाणी कुसुम फुटिबे प्राणे।

निराला के लिए भी फूल सफलता का प्रतीक है और इसीलिए उसका कुम्हलाना उनका अभीष्ट नहीं है

मेरा फल न कुम्हला पाये,
जल उलीच कर, मूल सींच कर
लौटे तुम तरु-तरु के सोये।[2]

परम्परागत प्रतीक

रवीन्द्र की वैष्णव पदावली से गृहीत प्रतीकों का निराला पर प्रभाव

सुकुमारसेन कहते हैं कि रवीन्द्र रचना में—विशेषकर गान में—अन्तर्भावित प्रतीकों में विशिष्टतम है कविसत्व की नायिका-कल्पना। यह कल्पना प्रधानतः वैष्णव कविता की राधा के आधार पर निर्मित है और इसमें कालिदास का प्रभाव भी पाया जाता है। पदावली की राधा और मेघदूत की यक्षकान्ता (एवं यक्ष) समा गई हैं कवि चित्त की विरह भावना में। इतने पर रवीन्द्र में राधा भाव के सब रसों का इंगित मिल जायगा।[3] निराला भी रवीन्द्र की तरह इन वैष्णव कवियों की प्रेमभक्ति से प्रभावित हुए थे परन्तु रवीन्द्र की तरह इनकी भी यह विशेषता रही जैसे कि रामरतन भटनागर कहते हैं कि वैष्णव भक्ति-काव्य में इतर नये ही रूपकों का प्रयोग निराला ने किया है। राधा कृष्ण और गोपियों के रूपक इतने प्रचलित हो गये थे, और दार्शनिकों ने उनकी इतनी व्याख्याएँ कर दी थीं कि जनता इस रहस्य-दर्शन को बड़ी सरलता से समझ लेती थी।[4]

---

१ रामरतन भटनागर कवि निराला एक अध्ययन, पृष्ठ ६६

२ निराला आराधना

३ सुकुमारसेन बाङ्ला साहित्येर कथा, तृतीय संस्करण [illegible], पृ० ८०

४ रामरतन भटनागर कवि निराला एक अध्ययन, पृ० १००

सुकुमारसेन के अनुसार रवीन्द्र की कविता में नवीन प्रतीकों की सहायता से मानिनी के प्रति सखि की उक्ति ही प्रकाशित होती है

आजबे आमि दूरेर हाओयाय,
चोखेर जले शून्य चाओयार काटबे प्रहर—
आजबे बुके विदाय पथेर चरण फला
दिनयामिनी, हे गरबिनी ॥

निराला में वैष्णव कवियों की यह रोमाण्टिक भावना रामानी प्रतीकों के माध्यम से प्रतिफलित होती है।

अब नहीं आती पुलिन पर प्रियतमा,
श्याम तृण पर बैठने को, निरुपमा
बह रही है हृदय पर केवल अमा,

क्षणिक मिलन के उपरान्त वेदना की व्याकुलता रवीन्द्र में

आमार काजेर माझे माझे
कान्नाहासिर दोला तुमि थामते दिले ना ये।
आमाय परश करे
प्राण सुधाय भरे
तुमि याओ ये सरे
बुझि आमार व्यथार आड़ालेते दाड़िये थाक
ओगो दुख जागानिया

निराला में भी यह वैष्णव भावना प्राप्त होती है

तुम छोड़ गये द्वार
तब से यह सूना संसार।[1]

सुकुमारसेन कहते हैं कि विरह के उपरान्त मिलन है। रवीन्द्र के कविसत्व की स्वयंवर-कल्पना वैष्णव पदावली की सकेतकुंज में राधा अभिसार के साथ तथा रघुवंश की राज-सभा की इन्दुमती स्वयंवर के साथ सम्मिलित हो गई है। इसको हम स्वयंवराभिसार कह सकते हैं। रवीन्द्रनाथ के काव्य में अभिसार मिलन का प्रतीक है—जीवन-देवता कविसत्व के साथ सम्मिलित होना है। अभिसार प्रतीक का प्रयोग निराला में सामान्यतः नहीं मिलता है (केवल अनामिका की 'क्षमा प्रार्थना' कविता में मिलता है और वह भी रवीन्द्र के भावों से अनुप्रेरित होते हुए क्षण मिलन के उपरान्त वेदना का प्रतीक स्वरूप है— 'यौवन-वन-अभिसार

१ निराला गीतिका

निशा का यह कैसा अवसान !") यद्यपि निराला ने एक स्थान पर इसका स्पष्ट उल्लेख किया है—'तुम्हारी सुधि की प्रतिम साँस लाज लज्जा की पर्दा-फाड, मलने चली प्रीति अभिसार चपल छिपती पलकों की आड है।' यह रवीन्द्र के "आजि झड़ेर राते-तोमार अभिसार" के अनुरूप हैं। परन्तु अभिसार के फल स्वरूप मिलन का समारोह रवीन्द्र की तरह नहीं होते हुए भी निराला रवीन्द्र के भावों के उच्छवास को प्रकट कर देता है। जैसे रवीन्द्र

तोमाय आमाय मिलन हवे आलोय आकाश भरा,
तोमाय आमाय मिलन हवे बले फुल्ल श्यामल धरा।

तथा निराला

उठी है तरंग
बहा जीवन निस्संग
चला तुमसे मिलन को
खिलने को फिर मर मर ।[1]

अथवा—

बाँसुरी जो बजी
साज कुल की तजी ।
यमुना पुलिन प्रजन
तन, बसे फूल, अन
मन देखकर सजी।[2]

रवीन्द्र के पुराण कहानी आश्रित परम्परावादी प्रतीक से प्रभावित निराला के प्रतीक

पुराण कहानी आश्रित परम्परागत प्रतीक 'मिथ' के अंतर्गत आते हैं। यहाँ 'मिथ' के सम्बन्ध में विवेचन कर लेना उचित होगा कारण निराला ने शिव रूप तथा देव असुर जैसे मिथ का प्रयोग प्रतीकात्मक रूप में किया है जो रवीन्द्र तथा बंगाली शक्ति पूजा का प्रभाव है।

मिथ

मिथ पौराणिक कल्पना-व्यापार को कहते हैं। कदारनाथसिंह का कहना है कि जो काम कला अपने सौंदर्यमूलक प्रयासों के द्वारा करती है वही काम

१ निराला अर्चना
२ निराला आराधना

'मिथ' कभी विधियों और संस्कारों द्वारा करता था।[1] इस प्रकार मिथ भी काव्य में कल्पनागत रूप विन्यास का काम करता है। यहाँ मिथ पर शास्त्रीय आलोचना अपेक्षित नहीं है। केवल इतना ही कहना है कि आधुनिक साहित्य में 'मिथ' का प्रयोग तीन रूपों में पाया जाता है—

(क) उपमा, रूपक, प्रतीक अथवा बिम्ब के रूप में

(ख) प्रबन्ध काव्य नाटकों एवं उपन्यासों के कथानक के रूप में

(ग) कुछ अत्याधुनिक अंध विश्वासपरक धारणाओं के रूप में जिन्हें सुविधा के लिये आधुनिक मिथ कह सकते हैं।

रवीन्द्र ने प्रबन्ध काव्य तथा नाटकों के कथानक के रूप में एवं प्रतीक के रूप में मिथ का प्रयोग कल्पनागत रूप विन्यास के लिए किया है। रवीन्द्र के पुराण कहानी आश्रित प्रतीक शिव रुद्र का प्रयोग निराला ने भी किया है। रवीन्द्र के लिए सुकुमार सेन कहते हैं—शिव सुन्दर रूप के प्रतीक हैं। निराला के लिए भी शिव सुन्दरता का प्रतीक है जो रूखी डाल को हरा भरा कर देता है

मधु व्रत में रत वधू मधुर फल
देगी जग को स्वाद तोष दल
गरलामृत शिव आशुतोष बल
विश्व सकल नेगी,
वसन वासन्ती लेगी।[2]

सुकुमार सेन के अनुसार रुद्र रवीन्द्र के लिए ताण्डव उन्मत्तता का प्रतीक है जो गगन क्रोध दाह से अन्याय पाप को ध्वंस कर भुवन को मार्जित करता है तथा जीवन की भी मार्जना करता है। निराला का रुद्र प्रतीक भी इसी भाव का समर्पण करता है

नाचो हे रुद्रताल,
आँचो जग ऋजु अराल
झरे जीव जीर्ण-शीर्ण
उद्भव हो नव प्रकीर्ण
करने का पुन तीर्ण
हों गहरे अन्तराल।[3]

---

१ कन्हैयालाल सहल कल्पना और छायावाद
२ निराला गीतिका
३ निराला आराधना

रवीन्द्र का दूसरा पौराणिक प्रतीक 'उर्वशी' का भाव निराला में नहीं मिलता है यद्यपि 'वनबेला' में उसका किंचित संकेत मिल जाता है जो अतल की सुरभिवास सिर पर लेकर उठती है —

मस्तक पर लेकर उठी अतल की अतुल सांस,
ज्यों सिद्धि परम,
भेदकर कर्मजीवन के दुस्तर क्लेश, सुषम
आई ऊपर,
जैसे पारकर क्षीर सागर
अप्सरा सुघर।[1]

जहाँ तक रवीन्द्र के अन्य पौराणिक कल्पनागत कथानक का सम्बन्ध है वहाँ निराला रवीन्द्र से अधिक प्रभावित नहीं हुए हैं। निराला की 'राम की शक्तिपूजा' में जो प्रचलित 'मिथ' का आधार है वह रवीन्द्र का प्रभाव नहीं है वरन् बंगाल की शक्तिपूजक सम्प्रदाय' का प्रभाव है और इसके अतिरिक्त विवेकानन्द का प्रभाव भी है। केदारनाथसिंह कहते हैं कि निराला ने इस 'मिथ' को प्रतीकात्मक रूप देकर मानव जीवन में आहत रहने वाले सत और असत दैवी और आसुरी शक्तियों के 'अपराजेय समर' का बड़ा भव्य चित्र खींचा है। बीच में राम के एक सौ आठ इन्दीवरों में से अन्तिम एक का सहसा अदृश्य हो जाना कल्पना का उत्कृष्ट प्रमाण है।[2]

रवीन्द्र के आध्यात्मिक प्रतीकों द्वारा अनुप्रेरित निराला के प्रतीक

आध्यात्मिक प्रतीक 'आमि-तुमि भाव' सुकुमारसेन के अनुसार रवीन्द्र के लिए क्रमशः अन्तर्यामी या कवि-सत्व, जीवन देवता तथा विश्वभुवन का प्रतीक है। "आमि-तुमि" अन्तर्यामी जीवन-देवता का द्वन्द्व है जो अद्वैत का ही द्वैत भाव है —

तुमि एक ओइ आकाश उदार
आमि येन कोई असीम पाथार,
आकुल करेछ माझखाने तार
आनन्द-पूर्णिमा।
एकनि प्रेमेर—आमारे मिलेछे

१ निराला : अर्चना
२ रामरतन भटनागर 'कवि निराला : एक अध्ययन', पृ० १२०
३ केदारनाथ सिंह 'कल्पना और छायावाद', पृ० ११८

सकल प्रेमेर स्मृति,
सकल कालेर सकल कविर गति ।

निराला में 'तुम मैं' के इस आध्यात्मिक प्रतीक का प्रयोग प्राप्त होता है

तुम नभ हो मैं नीलिमा[1]

अथवा—

तुम्हारा मैं तुम्हारा तो तुम्हारा हो विपुल धन जन
समझकर भी न समझा मन, मिटाओ मोह घन गौरव ।[2]

रवीन्द्र का 'तुम' अपने आलोक से 'मैं' के अन्धकार को दूर करता है और निराला में भी 'तुम' आकर सन्तप्त "मैं" को उपहार से युक्त करता है। यथा—

रवीन्द्र—

तोमार एइ लोके लोके प्रदीप ज्वाला,
आमार एइ आँधार टुकु घुचले परे ॥

तथा निराला—

विश्व पादप छाया में म्लान—
मन बैठा, व्याकुल थे प्राण,
तिमिर तर प्रभा दृगों में ज्ञान
उतर आई तुम ले उपहार ।[3]

निराला के कुछ प्रतीक विवेकानन्द से प्रभावित हैं जैसे अद्वैत ब्रह्म को 'मा' रूप में सम्बोधित करना। रवीन्द्रनाथ की अध्यात्म चिन्ता में जीवन देवता को मातृरूप में सूचित नहीं किया गया है। सुकुमारसेन कहते हैं कि रवीन्द्र में यह सबसे बड़ा 'अ-बंगालीत्व' का परिचय है यद्यपि रवीन्द्र में मातृदेवता का अघ्य रचा ही नहीं गया यह भावना भूल्ता होगी। परन्तु वहाँ 'मा' बंगल देश प्रेम के स्वर में जननी को आह्वान करना है—

आय मागो यात्रा करि जगतेर काजे
तुच्छ करि निज दुःख शोक ।

निराला में भी यह भावना प्राप्त है—

१ निराला परिमल
२ निराला अणिमा
३ निराला गीतिका
४ सुकुमार सेन बांगला साहित्येर इतिहास, तृतीय खण्ड (द्वितीय संस्करण) पृ० ३६०

धन्य कर दे मां वन्य प्रसून
दिखा जग ज्योतिर्मय, मुख चूम ।[1]

परन्तु ... प्रतीक नहीं कह सकते हैं। प्रतीक रूप में निराला ने जहाँ 'मां' का प्रयोग किया है वह साधारणतया विवेकानन्द के अद्वैत ब्रह्म का प्रतीक है—

एक ही आशा में सब प्राण
बाँध मां, सत्री के से गान ।[2]

बिम्ब (चित्र कल्पना)

कल्पनागत रूप विधान के अन्तर्गत तीसरा सूत्र है बिम्ब अथवा चित्र कल्पना। आई० ए० रिचर्ड्स ने इसको कल्पना के प्रमुख उपकरणों में से एक माना है।[3] बिम्ब तथा प्रतीक में भेद बताते हुए केदारनाथसिंह ने कहा है कि बिम्ब अपेक्षाकृत अधिक स्वच्छन्द (arbitrary) और नाना अर्थ-व्यंजक होते हैं जबकि प्रतीक नियत और अचूक रूप से एकार्थ-व्यंजक होते हैं।[4] इसी का स्पष्टीकरण यीट्स (yeats) के शब्दों में हमें प्राप्त हो जाता है। उनका कहना है कि एक बिम्ब जब एक ही कवि अथवा कलाकार की रचना में बारबार प्रयुक्त होता है तो उसमें प्रतीक की-सी निश्चितता आ जाती है और उसकी उत्तरकालीन रचनाओं में वह असन्दिग्ध रूप में प्रतीक हो जाता है।

पर प्रश्न है, बिम्ब है क्या ?

सिसिल डे लुइस (cecil de lewis) ने इसकी परिभाषा देते हुए लिखा है कि काव्यगत बिम्ब स्वयं मानव मन का ही दूसरा नाम है जो प्रत्येक जीवित अथवा मृतवस्तु के साथ अपने सम्बन्ध की घोषणा करता है और इस घोषणा को अच्छी तरह सिद्ध भी करता है।[5] इस प्रकार कवि की जीवनानुभूति ही बिम्ब को प्रकट करती है जो जीवन तथा प्रकृति से सम्बन्धित है। ऐन्द्रियता मूर्तिविधान की अनिवार्य विशेषता है। पाश्चात्य आलोचकों ने बिम्ब के मुख्यतया तीन गुण माने हैं[6]—

---

१ निराला गीतिका
२ निराला, गीतिका
३ Richards Principles of Literary Criticism Page 237
४ केदारनाथसिंह कल्पना और छायावाद, पृ० ७३
५ The poetic image is the human mind claiming kinship with everything that lives or has lived and making good its claim Poetic image Page 25
६ Evocativeness Freshness Intensity

(१) पूर्व स्मृति को जगा देने की शक्ति (२) नवीनता (३) तीव्रता ।

बिम्ब केवल वस्तु का 'चित्रण' ही नहीं करता वरन अपनी सत्ता से कवि की किसी विशेष मनोदशा और दृष्टिकोण को भी सूचित करता है।

निराला के बिम्बों के आधार प्रकृति और मुख्यतया प्रकृति का विराटत्व रामानी भावावेश और वासना का उदात्त प्रवाह तथा आधुनिक जीवन के प्राय प्रत्यक्ष क्षेत्र हैं। कारण मनुष्य की ऐन्द्रिय चेतना को तृप्त करना तथा उसकी रागतन्त्रियों को झंकृत करना बिम्ब का ही काम है। इस दृष्टि से निराला में ऐन्द्रियता तथा मूर्तिमत्ता की प्रधानता है। केदारनाथसिंह कहते हैं कि अकेले निराला ही ऐसे हैं जिनकी कविताओं में अत्याधुनिक सभ्यता तथा संस्कृति के क्षेत्रों से गृहीत बिम्ब भी कभी कभी मिल जाते है। निराला के इस बिम्ब विधान पर रवीन्द्र का प्रभाव मुख्यतया है। जहां विराटत्व का प्रश्न है वहां रवीन्द्र के माध्यम से कालिदास का प्रभाव है और कहीं कहीं अंग्रेजी प्रभाव भी रवीन्द्र तथा अमियकुमार चक्रवर्ती के माध्यम से उनके काव्य में आया है जैसे अत्याधुनिक सभ्यता तथा संस्कृति के क्षेत्रों से गृहीत बिम्ब। जहाँ प्रेम की वासना के उदात्त प्रभाव का वर्णन बिम्ब के माध्यम से किया गया है वहाँ भी चण्डीदास विद्यापति का प्रभाव है जो रवीन्द्र के माध्यम से उनके काव्य में प्रस्फुटित हो उठा है।

इसके विवेचन के लिए हम बिम्ब के लक्षित तथा उपलक्षित वर्गीकरण को ग्रहण करेंगे।

लक्षित चित्र योजना

लक्षित चित्र योजना में वर्णन के द्वारा चित्र प्रस्तुत किया जाता है। शब्द वहां पर रेखा और रंग का काम करते हैं। इसके सामान्यतः तीन भेद होते हैं—

(क) सामूहिक चित्र में साधारणतया भीड़, प्रकृति अथवा शिकार आदि का सामूहिक चित्र प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार की चित्र योजना में निराला की मौलिकता की छाप अधिक स्पष्ट है। जैसे खुला आसमान में—

बहुत दिनों बाद खुला आसमान
निकली है धूप हुआ खुश जहान।
दिखीं दिशाएँ झलके पेड़,
चरने को चले ढोर गाय भैंस भेड़,

खेलने लगे लड़के छेड़ छेड़—
लड़कियाँ घरों को कर भासमान।[1]

रवीन्द्र की कविता में इस प्रकार की सामूहिक ... क्षित चित्र योजना भी प्राप्त हो जाती है जहाँ निराला से कहीं अधिक गंभीरता परिलक्षित होती है—

तखन एमनि करेइ बाजबे बाँशि एइ नाटे,
काटबे गो दिन येमन आजो दिन काटे।
घाटे घाटे खेयार तरी एमनि सेदिन उठबे भरि
चरबे गाभ, खेलबे राखाल ओइ माठे।

(ख) लक्षित व्यक्ति चित्र योजना का सुस्पष्ट चित्र निराला की यमुना तथा बुद्ध के प्रति श्रद्धांजलि में प्रगट हुआ है। यद्यपि रवीन्द्र ने ... ऐसी ही श्रद्धांजलियाँ कवि सत्येन्द्रनाथदत्त तथा अरविन्द के प्रति अर्पित कर कविताएँ लिखी हैं तथापि निराला की मौलिकता ही इन चित्रों में प्रकट हुई है।

(ग) जहाँ तक लक्षित प्रकृति चित्रण का प्रश्न है निराला रवीन्द्र से बहुत ही प्रभावित हुए हैं। और केवल मात्र प्रकृति चित्रण ही नहीं वरन् प्रकृति चित्रण के माध्यम से वातावरण के निर्माण का कार्य निराला ने बहुत ही सुन्दर तथा सुष्ठु ढंग से किया है। निराला सूर्यास्त का चित्र अंकित करते हुए वातावरण के शान्त तथा विषादमय भाव को भी चित्रित करते हैं—

डूबा रवि अस्ताचल,
सन्ध्या के दृग छल छल।
स्तब्ध अन्धकार सघन
मन्द गन्ध भार पवन,
ध्यान लग्न नग्न गगन
मूँदे पल नीलोत्पल।[2]

रवीन्द्र भी इस लक्षित चित्र-कल्पना द्वारा सन्ध्या का विषादमय चित्र अंकित करते हैं अपनी एक भावना में—

रवि अस्त याय
अरण्येते अन्धकार आकाशेते आलो।
सन्ध्या नत आँखि
धीरे आसे दिवार पश्चात

---

१ निराला अनामिका
२ निराला गीतिका

उपलक्षित चित्र योजना के अन्तर्गत उन प्रतीक चित्रों का वर्णन भी अपेक्षित है जो सम्पूर्ण चित्र को उभार कर पाठक के सम्मुख प्रस्तुत कर देते हैं। इसके सम्बन्ध में हम अभी अभी ऊपर कह आये हैं कि ये चित्र कवि की प्रेरणा के एक स्पर्श से उभर आते हैं। इनके द्वारा चित्र का चरम बिन्दु स्वतः उभर आता है। 'राम की शक्तिपूजा' में निराला ने "जलती एक मशाल" प्रतीक का वर्णन कर सम्पूर्ण चित्र के गाम्भीर्य तथा व्यंजित अर्थ को प्रकट किया है। रवीन्द्र भी *'शाहजहान' में 'नयनेर एक बिन्दु जल' प्रतीक का प्रयोग कर सम्पूर्ण चित्र* को उसके व्यंजित अर्थ को, सफलता के साथ प्रकट करते हैं। यहाँ उपलक्षित चित्र योजना के उक्त प्रमुख तीन गुण संयोजित मिलते हैं। भाव और कल्पना का यहाँ पूर्णरूप से सामंजस्य प्राप्त होता है।

निराला के चित्र या बिम्बों में धूमिलता, अस्पष्टता और अनेक प्रकार की विकृतियाँ पाई जाती हैं किन्तु वह निराला के प्रबन्ध कल्पना के विस्तारित वर्ग के कारण हुआ है। अत्याधुनिक सभ्यता तथा संस्कृति के क्षेत्रों से गृहीत बिम्बों के अंकन के समय इस प्रकार की धूमिलता अधिक प्रकट हुई है। रामरतन भटनागर इन चित्रों को dream fantasy के अन्तर्गत रखते हैं। उनका कहना है कि कवि ने अपने अर्धचेतन (subconscious ego) को मुक्त चलने दिया है।[1] 'कला' में 'गरल' तथा 'स्फटिक शिला' के चित्र इसी ढंग के हैं। यद्यपि यह प्रभाव जैसा कि रामरतन भटनागर का कहना है यूरोपीय बिम्बवादी स्कूल (इमजिस्ट स्कूल) का है। रवीन्द्र के स्थान पर नई पीढ़ी के लेखक अमियकुमार चक्रवर्ती आदि ने बंगला में इसका प्रयोग किया था। हो सकता है कि निराला ने यहीं से प्रेरणा ग्रहण की हो। यद्यपि रवीन्द्र की बहुत-सी कविताओं में आधुनिक समाज के चित्र अंकित किये गए हैं जहाँ कवि का तटस्थता तथा भाव और कल्पना का सामंजस्य सबसे अधिक दर्शनीय वस्तु है वह निराला के इन चित्रों में नहीं है।

कलागत रूप विन्यास

कल्पनागत रूप विन्यास के अन्तर्गत तीन सूत्रों यथा रूपक, प्रतीक और बिम्ब पर विवेचन करते हुए हमने यह देखा कि छायावाद कवियों को तथा मुख्यतया निराला की कविताओं की मूल प्रेरणा रूढ़ि से मुक्ति पाना था। इस सम्बन्ध में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि मानवीय दृष्टि से कवि की कल्पना अनुभूति और चिंतन के भीतर से निकली हुई वैयक्तिक अनुभूतियों के आवेग की स्वत

१ रामरतन भटनागर: कवि निराला: एक अध्ययन, पृ० २४०

समुच्छ्वसित अभिव्यक्ति बिना किसी आयास की और बिना किसी प्रयत्न के स्वयं निकल पड़ा हुआ भावस्रोत ही छायावादी कविता का प्राण है।[1] और इस वैयक्तिक अनुभूति में प्रकृति जैसा कि हम "व्यक्तित्व और कृतित्व" अध्याय में कह चुके हैं[2] छायावादी कवियों ने काव्य के अन्तरंग सौन्दर्य का प्रकाशन किया। और इस प्रकार छायावादी कवि ने आत्माभिव्यक्ति द्वारा सौन्दर्यानुभूति का चित्रण करना काव्य का लक्ष्य समझा है। डा० शम्भूनाथसिंह कहते हैं कि सौन्दर्य को भी वे वक्रोक्तिवादियों या अभिव्यंजनावादियों की तरह ही बाह्य और वस्तुगत नहीं, आत्मगत और आन्तरिक मानते थे। वे वस्तु के स्थूल शारीरिक सौन्दर्य से अधिक उसके सूक्ष्म परोक्ष सौन्दर्य को महत्त्व देते थे।[3] इस सूक्ष्म परोक्ष सौन्दर्य को महत्त्व देने के कारण जिस प्रकार उन्होंने अपने काव्य को कल्पनागत रूप विन्यास द्वारा संजोया उसी प्रकार कलागत रूप विधान में भी उनकी कल्पनामयी सौन्दर्य भावना ही काम करती रही। इस कारण ही वे परम्परागत कला विधान से विक्षुब्ध गये। परम्परागत अलंकार पद विन्यास छंद, शास्त्र रूप सभी से मुक्ति पाना ही उनका साध्य रहा और इसके पीछे उनकी नवीन सौन्दर्यानुभूति काम करती रही।

अलंकार

नामवरसिंह कहते हैं कि रीतिकाल और छायावाद की कविता के रूप विन्यास का अन्तर अलंकारों की बहुलता और न्यूनता का नहीं बल्कि उन अलंकारों के पीछे काम करने वाली रुचि अथवा सौन्दर्य भावना का है। एक के पीछे मध्ययुगीन रुचि है तो दूसरे के पीछे आधुनिक रुचि।[4] इस आधुनिक रुचि का प्रसार निराला के काव्य में मुख्यतया रवीन्द्र के माध्यम से हुआ। आधुनिक रुचि के प्रभावस्वरूप निराला में चार प्रकार की अलंकार-योजना की बहुलता दिखलाई पड़ती है—पहला उपमा—जिसमें आकार-साम्य से अधिक प्रभाव-साम्य पर बल दिया गया। प्रभाव-साम्य की विशेषता बतलाते हुए शुक्लजी कहते हैं कि सिद्ध कवियों की दृष्टि ऐसे ही अप्रस्तुतों की ओर जाती है जो प्रस्तुत के समान ही सौन्दर्य, दीप्ति, कान्ति, कोमलता, प्रचंडता, भीषणता, उग्रता, उदासी, अवसाद, खिन्नता इत्यादि की भावना जगाते हैं।[5] प्रभाव-साम्य के अन्तर्गत निराला ने

---

१ हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य, पृ० ४६२
२ [illegible] निबंध, प्रथम अध्याय
३ शम्भूनाथ सिंह : छायावाद युग, पृ० २६१
४ नामवरसिंह : छायावाद, पृ० ८६
५ रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६५०

मनुष्य तथा प्रकृति के बीच सम्बन्ध स्थापित करने का काय इन्हे उपमय तथा उपमान मानकर किया। लघु तथा विराट उपमाओं की योजना भी की। दूसरा, मानवीकरण, तीसरा विशेषण विपयय तथा चौथा ध्वन्यथ व्यंजना। इन सब पर रवीन्द्र का प्रभाव बहुत ही स्पष्ट परिलक्षित होता है जिसका वणन अब हम प्रस्तुत करते हैं।

उपमा

उपमाओं की योजना से कवि की कल्पना शक्ति का पता चलता है। इसी कारण आई० ए० रिचर्ड स ने अलकारों को कल्पना के उपादानों म से एक माना है। उनका कहना है कि अलकृत भाषा के प्रयोग म भी कल्पना ही काय करती है। रूपक उपमा उत्प्रेक्षा आदि अलकारों का निर्माण इसी के अन्तगत आता है।[1] निराला ने उपमा के अन्तगत प्रभाव साम्य पर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित किया है। यथा—बादल के आगमन की ध्वनि का प्रभाव प्रस्तुत करने के लिए रथ के पहियों की घघर ध्वनि का उपमान प्रस्तुत किया गया है—

तुम आए
रथ का घघर—नाद
तुम्हारे आने का सवाद
ऐ त्रिलोक जित ! इन्द्र—धनुधर ![2]

रवीन्द्र ने भी काल-बसाखी बादल के लिए यही उपमान प्रस्तुत किया था—

रथ चक्र घघरिया एसेछ विजयी राज सम
गर्वित निभय—
वज्रमन्त्रे की घोषिल बुझिलाम ना—इ बुझिलाम,
जय तव जय।

'तुलसीदास' म निराला ने रत्नावली को 'गान' की उपमा देकर एक ऐसा रूपक प्रस्तुत किया है जो तुलसीदास को और भी शोकातुर बना देता है—

वह आज हो गई दूर तान
इसलिए मधुर वह और गान।[3]

---

१ The use of figurative language is frequently all that is meant People who naturally employ metaphor and simile especially when it is of an unusual kind are said to have imagination - Principles of literary Criticism P 239

२ निराला परिमल

३ निराला तुलसीदास

रवीन्द्र—

अयि सन्ध्ये,
अनन्त आकाशतले बसि एकाकिनी,
केश एलाइया

निराला—

सुलाती उन्हें अंक पर अपने,
दिखलाती फिर विस्मृति के वह कितने मीठे सपने।
अर्द्धरात्रि की निश्चलता में हो जाती वह लीन,

रवीन्द्र—

अयि सन्ध्या, स्नेहमय तोर स्वप्नमय कोले
लाइ आमि आसि निति निति,
स्नेहेर आचल दिये प्राण मोर दिस् ढेके,
एने दिस् अतीतेर स्मृति।

सन्ध्या के 'दीप-शिखा' ले उतरने का वर्णन निराला ने 'माधवी' कविता में बिल्कुल उसी प्रकार किया है—

उतर रही है लिए हाथ में प्यारा तारा-दीप।[1]

यामिनी के केशों का वर्णन भी निराला ने बहुत-से स्थानों पर किया है—

खुले केश अशेष शोभा भर रहे।[2]

इसी प्रकार तरंगों के मानवीकरण की पद्धति निराला ने रवीन्द्र से ग्रहण की है जो अपनी उदास रागिनी छेड़ रही है—

निराला—

किस अनन्त का नीला अंचल हिला हिलाकर
आती हो तुम सजी मंडला कर ?
एक रागिनी में अपना स्वर मिला-मिलाकर
गाती हो ये कैसे गीत उदार ?[3]

रवीन्द्र—

थलेद्दो मे निरुद्देश सेइ चला तोमार रागिणी,
शब्दहीन सुर।
अन्तहीन दूर।

---

१. निराला : परिमल
२. निराला : अपरा
३. निराला : अपरा

वीणा बजी;
विश्व यह हो गया साथ, द्विविधा लज्जी।
खुल गये डाल के फूल, रंग गये मुख
विहग के, धूल मग की हुई विमल सुख;[1]

रवीन्द्र की कविता में प्रभात वीणा को बजाकर संसार को जगाता है—

अमनि प्रभात तार वीणा हाते बाहिरिया आसे,
शून्य भरे गाने,
ऐश्वर्य छड़ाये देय मुक्तहस्ते आकाशे आकाशे,
क्लान्ति नाहि जाने।

मानवीकरण

गिरीशचन्द्र तिवारी कहते हैं कि मानवीकरण की प्रवृत्ति हिन्दी साहित्य में प्राचीनकाल से चली आ रही है। फिर भी इस अलंकार में उतनी कुशलता नहीं आ पाई थी *जितनी छायावादी युग में आ सकी। इसका एकमात्र कारण पाश्चात्य* प्रभाव है[2] परन्तु यह प्रभाव केवल पाश्चात्य प्रभाव नहीं वरन् निराला पर इसका मूलगत प्रभाव रवीन्द्र का है। उपर्युक्त 'प्रभात' का मानवीकरण स्पष्टतया रवीन्द्र का प्रभाव है। इसके और भी दृष्टान्त निम्नलिखित है—

निराला—

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या—सुन्दरी परी-सी
धीरे-धीरे-धीरे,[3]

रवीन्द्र—

नामे संध्यातन्द्रालसा सोनार आंचल खसा
हाते दीपशिखा।

निराला—

गुंथा हुआ उन घुंघराले काले-काले बालों से
हृदय—राज्य की रानी का वह करता है अभिषेक।

---

१. निराला : वेणा
२. गिरीशचन्द्र तिवारी कवि निराला और उनका काव्य-साहित्य, पृ० १७०
३. निराला - परिमल

शब्द बधा ध्वनिमय साकार" रहे। गिरीशचन्द्र तिवारी इस सम्बन्ध मे कहते हैं कि इससे काव्य मे सगीतात्मकता की वृद्धि होती है तथा एक प्रकार के माधुर्य का अनुभव होता है। इससे चित्रमयता, नादव्यजकता एव भाव-व्यजकता की वृद्धि होती है। यह अलकार रीतिकालीन परम्परा के काव्यो मे भी प्राप्त होता है। इसमे काव्य मे छिपी चित्र-भाषा स्पष्ट होती जाती है।[1] नामवरसिंह छाया-वादी कवियो की इस कला के विषय मे लिखते हैं कि शब्द-रचना सम्बन्धी सगीत का जहाँ तक प्रश्न है छायावादी कवियों ने अलग-अलग एक-एक शब्द के सगीत पर ध्यान रखने के साथ ही सम्पूर्ण शब्द-सगति अथवा शब्द-गुम्फन के सगीत पर भी ध्यान रखा। शब्द-सगति बैठाने मे इन कवियो ने स्वर अथवा व्यजन सम्बन्धी अनुप्रास का सहारा लिया है। निराला मे यह प्रवृत्ति अधिक प्रबल दिखाई पड़ती है, जैसे—

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या-सुन्दरी परी-सी
धीरे-धीरे-धीरे।

यहाँ "दिवसावसान-आसमान", "समय मेघमय" तथा "सुन्दरी परी-सी धीरे" मे स्वर और व्यजन सम्बन्धी अनुप्रास की छटा देखने योग्य है।[2] कहना न होगा कि यह प्रभाव सम्पूर्ण बंगला-काव्य का निराला पर है। रवीन्द्र ने इस प्रकार की ध्वन्यार्थ-व्यजना की अपूर्व सयोजना अपने काव्य मे की है—

नामे सन्ध्या तन्द्रालसा, सोनार-आँचल-खसा,
हाते दीपशिखा।

अथवा—

दीपशिखासम काँपे भीत आलोवासा।

ध्वन्यात्मक व्यजना रवीन्द्र-काव्य की एक विशेष निधि है। इस अलकार प्रयोग मे कवि ने सस्कृत शब्द का अत्यधिक सहारा लिया है और निराला ने बिल्कुल यही किया है—

रवीन्द्र—शिला राशि राशि पड़िछे खसे।
निराला—शत राशि-राशि जल पर चढ़ता खाता पछाड़।[3]

---

[1] गिरीशचन्द्र तिवारी : 'कवि निराला और उनका काव्य साहित्य, पृ० १६८
[2] नामवरसिंह : छायावाद, पृ० १०६
[3] निराला : परिमल

इस प्रकार मानवीकरण के उदाहरण निराला मे बहुलता से प्राप्त हो जाते हैं और इन पर रवीन्द्र का प्रभाव स्पष्टत दिखाई पड जाता है।

विशेषण विपर्यय

इसमे विशेष्य के गुण का विशेषण पर आरोप होता है। इसमे एक ऐसे विशेषण की सहायता ली जाती है, जिसमे विशेष्य प्राय. अरूप रहता है। उसमे एक ऐसा विशेषण लगा दिया जाता है कि एक अरूप चित्र सहसा पाठक के सामने आ जाता है :—

> धरा के खिन्न दिवस के दाह !
> बिदाई के अनिमेष नयन !

विशेषण विपर्यय से काव्य मे कलात्मक बोध तथा चित्राकन शैली द्वारा बातो को ग्रहण कराने मे बडी सहायता मिलती है। यह अलकार निराला मे बहुलता से नही मिलता, क्योकि ये नाद-व्यजना के कवि हैं। तो भी कुछ उदाहरण प्राप्त अवश्य हो जाते हैं

> किस विनोद की तृषित-गोद मे,
> आज पोंछती वे दृग नीर।

अथवा—

> शिथिल सेज निद्रित जीवन।

अथवा—

> चल चरणों से व्याकुल पनघट
> कहाँ आज वह वृन्दाधाम।

डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय कहते हैं कि उक्त नूतन प्रयोग कवि ने रवीन्द्र की कविताओ से प्रेरणा लेकर किये हैं।[1] एक उदाहरण प्रस्तुत है—

> निराला—वह निशीथ की नग्न वेदना
> रवीन्द्र—फेलिछे विरह छाया श्रावण तिमिर।

ध्वन्यर्थ व्यंजना—

नाद-व्यजना विशेषत: समास-शैली वाले कवियो के काव्यो म मिलती है। "मेरे गीत और कला" निबन्ध मे निराला जी ने सस्कृत के "क्षण वल" और हिन्दी के "श म ब स" सगीत की जो रोचक व्याख्या की है, वह ध्वन्यर्थ व्यजना वाली प्रवृत्ति की सूचक है। उनके लिए "वर्ण-चमत्कार" इसी मे था कि "एक एक

१. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय : महाकवि निराला काव्य कला और कृतियां, पृ० ११८

के माध्यम से प्रकट करना ही काव्य का धर्म है। जिसको प्रकट करना है वह लेखक की अपनी सृष्टि है इसीलिए उसकी भाषा भी लेखक को अपने आप ही प्रस्तुत करनी पड़ती है, शब्द-योजना तथा शब्दार्थ-व्यंजना से उस भाव को वही रूप देना पड़ता है। भाव जिस प्रकार अभिनव और मौलिक होता है, शब्द विन्यास तथा वाक् पद्धति को भी वही अभिनव रूप देना आवश्यक है। भाषा की शक्ति उसकी प्रकाश-क्षमता है और युग के भावों की अग्रगति के साथ ही कदम बढ़ाकर भाषा यदि चल न पाये तो कवि-मानस की सृष्टि में बाधा आ जाती है। द्विवेदी युग के इतिवृत्तात्मक काव्य के लिए भाषा का जो रूप प्रयुक्त हो रहा था, उसमें वह शक्ति न थी जो छायावादी नूतन सूक्ष्म भावनाओं के भार को वहन कर सके। अतः जैसे डा० विश्वम्भरनाथ कहते हैं कि छायावादी कवियों को भाषा का बहुत कुछ रूप गढ़ना पड़ा, बंगला की पद्धति पर एक ओर कोमलकान्त पदावली का सन्निवेश हुआ और दूसरी ओर अंग्रेजी के अनुकरण पर लक्षणात्मक प्रयोगों का प्रचलन हुआ।[1] डा० श्रीकृष्णलाल ने इस सम्बन्ध में कहा है कि स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन के द्वितीय चरण में काव्य-भाषा का आदर्श बिल्कुल बदल गया और एक समृद्ध भाषा शैली का विकास होने लगा, जिसमें संस्कृत-तत्सम तथा ध्वनि-व्यंजक शब्दों का प्राधान्य था। वह चमत्कारपूर्ण और आलोकमय विशेषणों तथा चित्रमय और ध्वन्यात्मक शब्दों का युग था।[2] परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि द्विवेदी-युग में संस्कृत-तत्सम तथा ध्वनि-व्यंजक शब्दों का प्रयोग ही नहीं हुआ। परन्तु द्विवेदी-युग में इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग करके भी उस युग के साहित्यकार भाव को प्रेषणीय नहीं बना सके कारण वे यह नहीं समझ सके थे कि कविता की भाषा में भावात्मकता की ही प्रधानता रहती है। आई० ए० रिचर्ड्स ने अपनी पुस्तक में यही बात कही है।[3] भाषा शब्दों की संख्या से धनी नहीं होती, धनी होती है उसकी भाव-व्यंजकता से। निराला ने भाषा के सम्बन्ध में कहा है—

"भाषा बहुभावात्मिका रचना की इच्छामात्र से बदलने वाली देह है। रचना युद्ध-कौशल है, भाषा तदनुरूप अस्त्र। इस अस्त्र का पारगत वीर साहित्यिक ही यथासमय समुचित प्रयोग कर सकता है। जाति को भाषा के भीतर से भी देख सकते हैं। बाहरी दृष्टि से देखने की अपेक्षा साहित्य के भीतर से देखने का महत्त्व

---

१. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय : महाकवि निराला : काव्य कला और कृतियाँ, पृ० २७४
२. श्रीकृष्णलाल : आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास
3. But it may also be used for the sake of the effects in emotions and attitude produced by the reference in occasions. This is the emotive use of languages—Principles of literary Criticism, P. 267

अथवा—

रवीन्द्र— अरुणमयी तरुण उषा जागाये दिल गान ।

निराला— तरुण-अरुण-यौवन-प्रभात विहान ।[1]

अथवा—

रवीन्द्र— कंकण झंकार नूपुर बाजे ।

निराला— कण-कण कर कंकण, प्रिय
किण-किण रव किंकिणी ।[2]

अथवा—

रवीन्द्र— गुरु गुरु मेघ गुमरि गरजे गगने गगने, गरजे गगने ।

निराला— झूम झूम मृदु गरज-गरज घनघोर ।[3]

अथवा—

रवीन्द्र— रथेर घर्घरमन्द्रे ।

निराला— रथ का घर्घर नाद ।[4]

अथवा—

रवीन्द्र— आज वारि झरे झर झर भरा बादरे ।

निराला— झर झर झर झर धारा झर ।[5]

निष्कर्षत निराला के अलंकारों पर बंगला-काव्य का प्रभाव काफी है जो रवीन्द्र-काव्य के माध्यम से उनके काव्य में सम्प्रेषित हुआ है। यद्यपि निराला ने इन प्रभावों को, जैसाकि उपर्युक्त दृष्टान्तों से पता लग सकता है, आत्मसात् कर अपना बना लिया है।

पद-विन्यास

पद-विन्यास के अन्तर्गत भाषा और शैली के प्रश्न पर विवेचन करेंगे। निराला के पद विन्यास पर भी रवीन्द्र का प्रभाव विस्तारित है। काव्य-सृष्टि के दो उपादान हैं, कवि का मन तथा काव्य की भाषा। भाषा में हम शब्द-विन्यास पर विचार करते हैं। शब्द-समूह रूप विन्यास का मूल धन है। मन के भावों को भाषा

---

१ निराला परिमल
२ निराला : गीतिका
३ निराला : परिमल
४. निराला वही
५. निराला : गीतिका

की भूमिका में इसका आभास प्राप्त होता है'—निराला की पहली कविता "जुही की कली" के पदों में बंगला-कविता की पदावली का अनुगुंजन स्पष्ट सुनाई पड़ता है, विशेषतः इसके आरम्भ में—

विजन-वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहागभरी
स्नेह स्वप्न मग्न-अमल-कोमल तनु तरुणी
जुही की कली,
दृग बंद किए, शिथिल, पत्रांक में।

नामवरसिंह कहते हैं कि यहाँ "विजन-वन-वल्लरी", 'स्नेह-स्वप्न-मग्न", "अमल-कोमल-तन" अथवा अगले चरणों में "कुंज-लता-पुंज" और "उपवन-सर-सरित गहन गिरि कानन" जैसे पदोच्चय रवीन्द्रनाथ की कविताओं के पदों की गूंज से भरे हैं। ये पद-समूह एकत्र ही रवीन्द्रनाथ की किसी कविता में भले ही न मिलें और निराला जी ने जान-बूझकर एक ही जगह से उन्हें भले ही न उठा लिया हो, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसी पद-रचना का प्रेरणा स्रोत वही है, यहाँ तक कि इनका उच्चारण भी थोड़ा-सा बंगला की मुख-सुख-परम्परा की अपेक्षा रखता है। निराला की "सम्राट एडवर्ड अष्टम के प्रति" कविता को रवीन्द्रनाथ की 'शाहजहाँ' कविता के साथ पढ़ने से दोनों के ध्वनि-साम्य का पता चलेगा।

निराला—सम्राट्! दिखाया
सत्य कौनसा वह सुन्दर।
जो प्रिया, प्रिया वह
रही सदा ही अनामिका

रवीन्द्र—हे सम्राट् कवि
एइ तव हृदयेर छवि
एइ तव नव मेघदूत
अपूर्व अद्भुत
छन्दे गाने
उठियाछे अलक्ष्येर पाने
येथा तव विरहिणी प्रिया
रयेछे मिशिया

---

१. सुधाकर चट्टोपाध्याय : अाधुनिक हिन्दी साहित्ये बांगलार स्थान, पृ० ६८

अधिक होगा।[1] निराला ने और एक स्थान पर भाषा के सम्बन्ध मे विचार करते हुए लिखा है "प्रकृति की स्वाभाविक चाल से भाषा जिस तरफ भी जाय—शक्ति-सामर्थ्य और मुक्ति की तरफ या सुखानुगयता, मृदुलता और छन्दलालित्य की तरफ। यदि उसके साथ जातीय जीवन का भी सम्बन्ध है तो यह निश्चित रूप से कहा जायेगा कि प्राण शक्ति उस भाषा मे है।" पत ने इसी को दूसरे शब्दो मे रागतत्व कहा है जो भाषा का और मुख्यत कविता की भाषा का प्राण है।[2]

भाषा के भावात्मक प्रयोग के लिए छायावादी कविगण और उनमे मुख्यतया निराला ने बगला के महाकवियो से प्रेरणा ली। सस्कृत के तत्सम शब्दो का प्रयोग द्विवेदी-युग मे प्रारम्भ हो जाने से भी छायावादी कवियो ने इस विशेषता को बगाली कवियो से ग्रहण किया है कारण बगला कवियो मे उन्होने भावात्मक भाषा के रूप का गठन देखा था। इस सम्बन्ध म नामवरसिंह कहते हैं कि हिन्दी की अपनी परम्परा के असख्य लोक-प्रचलित तथा साहित्यरूढ शब्दो के स्थान पर सस्कृत शब्दो को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न किया गया। इस दिशा मे बगला हिन्दी की अग्रणी है। माइकेल मधुसूदनदत्त और रवीन्द्रनाथ ने बगला भाषा को सस्कृत के तत्सम शब्दो की सहायता से एकदम नया रूप दिया है। हिन्दी मे इस तरह का प्रयत्न आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, अयोध्यासिंह उपाध्याय आदि ने भी किया परन्तु छायावादी कवियो ने अपने आचार्यों की अपेक्षा बगला के महाकवियो से प्रेरणा ली।[3] तात्पर्य यह कि छायावादी कवियो ने सस्कृत के तत्सम शब्दो को सीधे सस्कृत कोशो अथवा काव्यो से न लेकर बगला के माध्यम से लिया और इसका कारण था। रवीन्द्र ने कालिदास जैसे कवि के शब्द-सस्कार से तत्सम शब्दो को लेकर भी नवीन भावों को ऐसे प्रवाह मे सजो दिया कि वे नई अर्थवत्ता से भर उठे। रवीन्द्रनाथ ने निर्जीव से लगने वाले सस्कृत शब्दो मे भावो की नवीन सजीवनी डालकर उन्ह सजीव कर दिया। इसीलिए इन पुनर्जीवित शब्दो ने छायावादी कवियों का ध्यान विशेष आकृष्ट किया।

निराला ने शब्द-रचना व पद-मैत्री की दृष्टि से क्रान्ति की है यद्यपि प्रभाव अधिकतर रवीन्द्र का है। डा० सुधाकर चट्टोपाध्याय के अनुसार निराला की काव्य-भाषा का माध्यम मोटे तौर पर रवीन्द्रनाथ की भाषा है, उनके काव्य-ग्रंथ

---

१. नया साहित्य, निराला अक, सन् १६५३
२ निराला की कविता—बच्चन सिंह का लेख आलोचना के २५ वें पूर्णांक में उद्धृत।
३. नामवरसिंह छायावाद, पृ० १०२

निराला ने अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग परवर्तीकाल में ज्यों का त्यों कर दिया है। गिरीशचन्द्र तिवारी कहते हैं कि इसका मुख्य कारण कवि के मन की क्षुब्ध दशा है, जिससे एक व्यंग्य की भावना निकलती है। इस सम्बन्ध में प्रभाकर माचवे का कहना है कि बंगला के उदाहरणों से निराला के व्यंग्य-काव्य की समानता है। वस्तुतः अमियचक्रवर्ती के प्रभाव-स्वरूप ही निराला की कविता में इस प्रकार के व्यंग्य की अभिव्यक्ति हुई है।[1] डा० सुधाकर चट्टोपाध्याय निराला की कविता में प्रयुक्त यथार्थ दुनियावी शब्दों के प्रयोग को रवीन्द्र की "शेष रात्रिगोर प्रथम धूयाँ" का प्रभाव बतलाते हैं।[2] इसको स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि निराला में समास-गुम्फित तत्सम शब्दों का पुष्प-प्राचुर्य रवीन्द्र के यौवन वसन्त काल के प्रभाव-स्वरूप लक्षित होता है, और फिर शेष काल में, कविगुरु का वार्द्धक्य—शीत-जर्जर आवेगविहीनता ने प्रभाव विस्तारित किया है निराला की गद्य-कविता में। वहाँ निराला की कोमलता से तत्सम शब्द तथा प्राणावेग-चंचल भाषा के रंगीन माधुर्य झर कर गिर पड़े हैं।[3]

शैली

भाव जितना अभिनव और मौलिक होगा, शब्द-विन्यास तथा वाक्पद्धति का भी उसी प्रकार अभिनव होना आवश्यक है। और फिर जिसको भाषा के माध्यम में प्रकट करना है वह कोई चिन्तावस्तु नहीं—केवल एक भाव है और इस भाव या भावावस्था को एक मन से दूसरे मन में संक्रमित करना ही काव्य-सृष्टि है। इस प्रकार भाव को भी सुस्पष्ट, सुनिर्दिष्ट अर्थवाचक शब्द में हम बाँध नहीं सकते, नहीं तो वह भाव न रहकर एक अर्थ-समन्वित तत्त्व का रूप ग्रहण करेगा—किसी एक चिन्ता का आकार धारण करेगा। प्रत्येक तत्त्व ही एक निर्विशेष साधारण बुद्धि प्रकट करता है किन्तु भाव ठीक उसके विपरीत है, विशेषत्व (particularity) ही उसका सर्वस्व है। अतएव वाक्य के किसी निर्दिष्ट अर्थबन्धन को शिथिल करके किसी एक अतिशय विशिष्ट भाव का भाषा-रूप निर्माण करना ही काव्य की समस्या है। यही शैली की समस्या है। काव्य की शैली किस प्रकार होगी यह लेखक की आन्तरिक अनुभूति ही निर्णय कर लेती है, एवं जब भाषा में लेखक की वह अनुभूति हमारे सम्मुख उद्भासित हो उठती है, तब हम समझ पाते हैं—इस रचना की यही यथार्थ भाषा है, यथार्थ-

---

१. निराला के काव्य में [illegible], साहित्य, पौष २००७
२. सुधाकर चट्टोपाध्याय : आधुनिक हिन्दी साहित्ये बाङ्लार स्थान, पृ० ६६
३. वही, पृ० १०८

इस प्रकार एक ओर—

वीक्षण अराल, बज रहे जहाँ जीवन
के स्वर भर छन्द ताल मौन में मन्द्र।

तो दूसरी ओर है—

हीरा मुक्ता माणिक्येर घटा
जेनो शून्य दिगन्तेर इन्द्रजाल इन्द्रधनुच्छटा।

संस्कृत शब्दों का प्रयोग, निराला ने विराटत्व के प्रदर्शन के लिए, माइकेल तथा रवीन्द्र के प्रभावस्वरूप किया है। और इस प्रक्रिया में वे बंगला कविताओं की भांति क्रियापद का लोप कर बैठे हैं परन्तु उससे ओज बढ़ गया है।

निराला ने बहुत ध्वन्यर्थ व्यंजक शब्दों का भी अपनी काव्य भाषा में प्रयोग किया जैसे—उत्ताल तरंग, अट्टहास, लोल हिलोर, झूम-झूम, गरज गरज, घनघोर निर्झरपात, घर्घरनाद, कलकल, छलछल, झरझरझर निर्झर, खलखल, धकधक, थरथर, लकलक आदि। यह सब बंगला-भाषा के प्रभाव-स्वरूप निराला ने अपनाया है जिसके उदाहरण 'ध्वन्यर्थ व्यंजना" के विवरण में हम दे चुके हैं। डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय कहते हैं कि मौलिकता की दृष्टि से 'निराला' ने बंगला से संगीत व शब्द-विधान लिया है किन्तु यह प्रेरणा मात्र है उन्होंने हिंदी में जो संगीत व शब्द साधना की है, वह उनकी अपनी है, आज तक कोई कवि उनका अनुकरण नहीं कर सका।[1]

निराला एक ही शब्द को दो दो बार एक ही वाक्य में प्रयुक्त करते हैं। जैसे तृण-तृण, गहन गहन, रणन-रणन पादप-पादप, रेणु रेणु, किण-किण, पुंज-पुंज। गिरिशचन्द्र तिवारी इसको रवीन्द्र का प्रभाव कहते हैं[2]—

छन्दे छन्दे नाचि उठे सिंधु माझे तरंगेर दल।

अथवा— बाजितेछे रागिनि तोमार तृणे तृणे पल्लवे पल्लवे।

इसके अतिरिक्त निराला ने बंगला और उर्दू शब्दों का भी व्यवहार किया है जिसके सम्बन्ध में डा० शम्भूनाथसिंह कहते हैं कि पन्त तथा निराला ने बंगला के 'सकाल' का व्यवहार कई जगह किया है।[3] काँदना, सिहरना छलछल अश्रु-पात आदि शब्द भी बंगला से ग्रहण किये गये हैं। उर्दू तथा फारसी शब्दों का व्यवहार एक ओर तो निराला की मौलिक विशेषता है और दूसरी ओर बंगला कवि नज़रुल इस्लाम का प्रभाव है।

---

१ विश्वम्भरनाथ उपाध्याय महाकवि निराला—काव्य और कृतियाँ, पृ० १८०
२ गिरीशचन्द्र तिवारी कवि निराला और उनका काव्य साहित्य, पृ० १८८
३ शम्भूनाथसिंह छायावादी युग, पृ० २४७

स्वय लिखा है—

कल्पना की सुन्दर भूमि मे हिन्दी के अभिनय की सफलता पर विचार करते हुए, बोलते हुए, पार्ट खेलते हुए, जिस छन्द की सृष्टि हुई, वह यही है और पीछे से विचार करके भी देखा तो हमे स्वभाववश निश्चल हृदय की सत्य-ज्योति की तरह इसे निकला हुआ पाया।

यहाँ मुक्तगीत तथा मुक्त-छन्द मे भेद समझ लेना उचित होगा। मुक्तगीत के चरणो को भावानुकूल घटाया बढाया अवश्य जाता है, किन्तु उसम तुको की अवहेलना नही की जाती। मुक्त-छन्द मे तुको का न कोई विचार है और न चरणो मे नियत मात्रा का आग्रह। मुक्त गीत का प्रवर्तन हिन्दी मे निराला से पूर्व हो गया था। मुक्तगीत वास्तव मे असमपदी मित्राक्षर छन्द है। इसके वास्तविक निर्माता रवीन्द्रनाथ हैं जिस कारण इसको "वलाका" छन्द भी कहा गया है। इसकी पक्तियो मे रबर की तरह प्रसरणशीलता व ह्रस्व-दीर्घ-कुंचन होने पर भी अन्त मे तुक की अवहेलना नही की जाती है। निराला से पहले हिन्दी मे रवीन्द्र के प्रभावस्वरूप इसका प्रवर्तन हो गया था यद्यपि निराला ने भी इसका प्रयोग किया है—

आज नहीं है मुझे और कुछ चाह
अर्ध-विकच इस हृदय कमल मे आ तू
प्रिये छोड कर बन्धनमय छन्दों की छोटी राह।
गजगामिनी रह पथ तेरा सकीर्ण, कटकाकीर्ण।

परन्तु हिन्दी मे निराला ही सर्वप्रथम मुक्त छन्द के प्रवर्तक हैं। इस सम्बन्ध मे डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं—

यह ध्यान देने की बात है कि निराला जी के आरम्भिक प्रयोग छन्द के बन्धन से मुक्ति पाने का प्रयास है। छद के बधनो के प्रति विद्रोह करके उन्होने उस मध्ययुगीन मनोवृत्ति पर पहला आघात किया था जो छद और कविता को प्राय: समानार्थक समझने लगी थी। निराला जी ने जब छदो के प्रति विद्रोह किया तो उनका उद्देश्य छद की अनुपयोगिता बताना नही था। वे केवल कविता मे भावो की—व्यक्तिगत अनुभूति के भावो की—स्वच्छद अभिव्यक्ति को महत्व देना चाहते थे। जिसे वे मुक्त छद कहते थे उसमे भी एक प्रकार का झकार और एक प्रकार की ताल विद्यमान है।[1] उदाहरणार्थ—

विजन-वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहाग-भरी

---

[1] हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य, पृ० ४६८

रवीन्द्रनाथ भी मुक्त छन्द के सम्बन्ध में कहते हुए प्राचीन संस्कृत की बात करते हैं जो मत श्री क्षितिमोहन सेन ने अपनी पुस्तक में उद्धृत किया है—

'संस्कृत छन्दे विषमेर देखा पाओया याय। वर्सं—लिवेरेतेओ ता आछे। शार्दूल-विक्रीडित स्रग्धरा प्रभृति संस्कृत छन्दे चमत्कार ध्वनि ऐश्वर्य (म्यूज़िक) रयेछे। ताके नृत्य-छन्देर गुरुगम्भीर वा चल-चंचल नाना ताले सजानो याय। प्रकृतिर क्षेत्रेओ ताइ।'[1]

पाश्चात्य आलोचकों में भी मुक्त छन्द के सम्बन्ध में निराला जैसे विचार हैं। कालरिज का कहना है कि—श्रेष्ठतम कविता बिना छन्द के भी संभव है।[2]

छायावादी युग, जैसाकि हम इस अध्याय के प्रारम्भ में कह चुके हैं, रूढ़ि से मुक्ति पाने की कामना पर आधारित रहा। इसलिए रीतिकाल के विरुद्ध छायावादी कवियों ने वार्णिक छन्दों में उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा, शार्दूल-विक्रीडित, वंशस्थ-वृत्त, द्रुतविलम्बित, वसंततिलका, मन्दाक्रान्ता और शिखरणी का प्रयोग खूब चलाया। मात्रिक में उर्दू के बहरों, बंगला के पयार, अंग्रेज़ी के सानेट तथा फारसी की रुबाइयाँ भी हिन्दी में इस युग में लिखी जाने लगीं। फिर तुक के विरुद्ध प्रतिक्रियास्वरूप मुक्त छन्द का प्रसार भी इसी युग में चला। डा० उपाध्याय कहते हैं कि मुक्त छन्द बंगला में माइकेल मधुसूदन द्वारा प्रवर्तित हुआ था, गिरीशचन्द्र नाट्याचार्य ने नाटकों में इस छन्द का प्रयोग किया था, निराला ने 'माइकेल' के समान हिन्दी में इसका प्रवर्तन किया।[3] मुक्त छन्द के बारे में निराला ने लिखा है—*मुक्त छन्द वह है जो छन्द की भूमि पर रहकर भी मुक्त है, मुक्त छन्द का समर्थक उसका प्रवाह है, वही उसे छन्द सिद्ध करता है, और उसका नियम-राहित्य उसकी मुक्ति।*[4]

डा० बच्चनसिंह का कहना है कि बचपन से ही बंगाल में रहने के कारण निराला को बंग साहित्य के समुचित अध्ययन का अवसर मिला। बंगाली रंगमंच पर अभिनय देखने के सुयोग भी मिले। उस समय हिन्दी-रंगमंच के लिए भी कलकत्ता प्रसिद्ध स्थान था। हिन्दी-रंगमंच के अलफ्रेड और कोरोन्थियन के नाटक इन्हें पसन्द न आते थे। पात्रों के भद्दे अस्वाभाविक कथोपकथन को ठीक करने की कल्पना से ही मुक्त छन्द की सृष्टि हुई।[5] 'पंतजी और पल्लव' लेख में इन्होंने

---

१. *बलाका-काव्य परिक्रमा से उद्धृत*
२ Poetry of the highest kind may exist without meter
३. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, महाकवि निराला : काव्यकला और कृतियाँ, पृ० २७०
४ *वहीं से उद्धृत*
५ बच्चनसिंह क्रान्तिकारी कवि निराला, पृ० २४

किन्तु उसमे तुक का निर्वाह नही। इसके विपरीत निराला ने "राम की शक्ति-पूजा" मे तुकान्त का निर्वाह करते हुए भी धारावाहिकता बनाये रखी है। इस छन्द मे निराला का अपना नयापन झलकता है।[1] यह विचार भ्रमात्मक है क्योंकि माइकेल तथा रवीन्द्र दोनो ने ही तुकान्त का प्रयोग अमित्राक्षर छंद मे किया है। जैसे रवीन्द्र का उद्धरण मित्राक्षर-अमित्राक्षर छन्द के सम्बन्ध मे देते हुए श्री अमूल्यधन मुखोपाध्याय कहते हैं[2]—

हे आदि जननी सिन्धु, वसुन्धरा सन्तान तोमार
एकमात्र कन्या तव कोले ताइ तन्द्रा नाहि आर।

इसके अतिरिक्त "मेघनाद-वध" को मुक्त-छंद (फ्री वर्स) हम नही कह सकते कारण वह पयार छन्द मे अमित्राक्षर तथा यति-अनिश्चयता को लेकर बना है और ऊपर का उदाहरण मित्राक्षर होते हुए भी यति की अनिश्चितता पर स्थित है इसलिए इसको मित्राक्षर-अमित्राक्षर कहा गया है।

निराला ने जहाँ गद्यमय कविता की रचना की है वह निश्चय ही रवीन्द्र-नाथ तथा अमियकुमार चक्रवर्ती का प्रभाव है। वास्तव मे गद्यमय कविता को ही मुक्त-छंद कहा जाता है। मुक्त-गीत मे तुक का बन्धन रहता है जिसे असम-पदी मित्राक्षर छन्द कहना अधिक उपयुक्त है। और मुक्त-छन्द बिल्कुल ही मुक्त है। इसके उदाहरण "नये पत्ते" तथा "कुकुरमुत्ता" म प्राप्त होते हैं।

गद्य-कविता का लक्षण है—विषममात्रिक यति, असम छन्द-स्पन्दन एव यथोचित वाचनभंगी। गद्य के साथ गद्य-कविता का भेद पंक्ति सजाने मे नही है वरन् यह भेद छन्द के बहाव तथा वाचन-रीति के द्वारा प्रकाशित होता है। गद्य तथा पद्य के बीच गद्य-कविता स्थित है। सुकुमारसेन इसको स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि गद्य का छन्द वाक्यार्थ का अनुसरण करता है, वहाँ यति वाक्य के मध्यास पर पड़ती है जहाँ अर्थ के साथ ही श्वास-वायु के लिए भी सामयिक विराम आवश्यक है, एव वहाँ वाक्य के बीच ताल अथवा मात्रा-समता का प्रश्न नही उठता है। पद्य का छन्द मात्रा अथवा ताल की समता का अनुसरण करता है, वहाँ विराम निर्दिष्ट मात्रा अथवा ताल के बाद होता है। गद्य-कविता के छन्द मे यति गद्य-छन्द की तरह अर्थ-समाप्ति के साथ श्वासवायु के स्वल्प विराम पर पड़ता है, और यह भी बात है कि निर्दिष्ट मात्रा समता के नहीं रहने पर भी वाक्य के बीच ताल के लालित्य का अनुभव होता है। मोटी बात तो यह है

१. कवि निराला और उनका काव्य-साहित्य, पृ० १८०
२. अमूल्यधन मुखोपाध्याय: बाङ्ला छन्देर मूलसूत्र

स्नेह-स्वप्न-मग्न अमल-कोमल-तनु तरुणी
जुही की कली
दृग बन्द किए-शिथिल-पत्रांक में।

निराला के कथनानुसार इसकी सफलता के लिए कवित्त-छन्द का आधार ग्रहण करना होगा। कवित्त का सौन्दर्य पढ़ने के ढंग पर अवलम्बित है। इस तरह मुक्त छंद में आर्ट ऑफ म्यूजिक (Art of music) नहीं मिल सकता वहाँ है *आर्ट ऑफ रीडिंग (Art of reading)*।[1] निराला ने इस छंद को अपने नवीन भाव के संप्रेषण के लिए ही अपनाया जैसाकि" "मेरे गीत और कला" निबन्ध में उन्होंने लिखा है—

भावों की मुक्ति छन्दों की भी मुक्ति चाहती है। यहाँ भाषा, भाव और छन्द तीनों स्वच्छन्द है। भाव के संप्रेषण के साथ-साथ प्रवाह तथा गति की दृष्टि से साधारण छन्दों की अपेक्षा मुक्त-छन्द अधिक स्वाभाविक सिद्ध होता है। निराला ने मुक्त-छन्द की प्रेरणा भूमि रवीन्द्र को मानने से सर्वथा इनकार कर दिया है और "पंत और पल्लव" में इस कारण पंत को वे नीचा दिखाते है। इसकी वास्तविक प्रेरणा गिरीशचन्द्र से मिली है। इसका संकेत उन्होंने अनेक स्थानों पर दिया है। परिमल की भूमिका के प्रसंग में उन्होंने लिखा है—

बंगला में माइकेल मधुसूदनदत्त द्वारा अतुकान्त कविता की सृष्टि हो जाने पर नाट्याचार्य "गिरीशचन्द्र" ने अपने स्वच्छंद छन्द का नाटकों में ही प्रयोग किया। यह बात ठीक है कि मुक्त-छंद (अमित्राक्षर छंद नहीं) का सर्वप्रथम और उचित व्यवहार-कर्ता गिरीशघोष है न कि रवीन्द्रनाथ। यह बात "बांगला छन्देर मूलसूत्र" के प्रणेता प्रख्यात विद्वान् श्री अमूल्यधन मुखोपाध्याय मानते हैं। उनका कहना है—

गिरीश घोषेर नाटके ये छन्द व्यवहृत हइयाछे ताहाकेइ फर फी वर्स नाम देओया येते पारे।[2]

इस प्रकार वे गिरीश घोष को ही फ्री वर्स (Free verse) अर्थात् मुक्त-छन्द का प्रथम प्रणेता मानते हैं जहाँ से निराला ने प्रेरणा ग्रहण की है। हिन्दी-साहित्य में इसका प्रयोग निराला ने सर्वप्रथम किया है। 'पंचवटी प्रसंग' ही इसका प्रथम उदाहरण है। श्री गिरीशचन्द्र तिवारी का कहना है कि मेघनाद भी मुक्त-छन्द में है,

---

१. निराला पंत और पल्लव
२. गिरीश घोष के नाटक में जो छन्द व्यवहृत हुआ है उसको ही फ्री वर्स (Free verse) कहा जा सकता है—पृ० १६३

पुरवाइ चलती है,
जुही फूलों से भरी;
दूर तक हरयाली ज्वार की, अरहर की...

और रवीन्द्र—

पश्चिमेर गंगातीर शहरेर शेष प्रान्ते बासा।
दूर प्रसारित चर
शून्य आकाशेर नचे शून्यतर
माल्य करे येन।
हेया-होया करे गन
शस्य-शेष बाजरार खेत,

गद्य-कविता का आभासयुक्त अन्त्यानुप्रास-विरहित काव्यमय स्पन्दनयुक्त छन्द का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

रवीन्द्र—

पलेश्वरी। नदी तीरे। पसीवेर ग्राम
तीर देखो...ते रेर मेघे,।
प्रभागार। साये तार। बियाहेर। छिन्न ठिक। ठाक।

इसका प्रभाव निराला पर स्पष्टतया लक्षित होता है—

दूर तक। हरियाली ज्वार की। अरहर की।
सन मुग। उड़द और।
चनों के हरे खेत।
दूर के। पहाड़ों की। और थानी। नीलिमा।

बंगला से प्रभावित होकर निराला ने 'मित्राक्षर-अमित्राक्षर', 'मुक्तगीत' या 'अममपदी मित्राक्षर' तथा 'मुक्त छन्द' (फ्री वर्स) या 'गद्य-गीत' का प्रयोग अपने काव्य में किया है। डा० सुधाकर चट्टोपाध्याय ने निराला-काव्य से कुछ उदाहरण उद्धृत कर यह भी प्रमाणित कर दिया कि उपर्युक्त छन्दों के अतिरिक्त निराला ने रवीन्द्रनाथ के प्रथम युग के छदों से भी प्रभाव ग्रहण किया है। उदाहरणतया—

१—कण-कण-कर कंकण, प्रिय
किण-किण-रव किंकिणी,
रणन-रणन नूपुर, और लाज लोट रंगिणि...

तथा—नदि-कल कल, छन-सी
रह छवि दिगन्त पथ की

कि गद्य अतिताल, पद्य समताल एव गद्य कविता विषमताल पर स्थित है।[1] *'पुनश्च'* की भूमिका मे गद्य-कविता के सम्बन्ध मे रवीन्द्रनाथ ने कहा था—

गद्य-काव्य मे अतिनिरूपित छन्द का बन्धन तोडना ही यथेष्ट नही है, पद्य काव्य की भाषा तथा प्रकाशरीति मे जो एक ससज्ज सलज्ज अवगुण्ठन की प्रथा है उसी को हटाने से ही गद्य के स्वाधीन क्षेत्र म उसका सचरण स्वाभाविक होगा। असकुचित गद्य-रीति के द्वारा काव्य के अधिकार का प्रसार करना सभव होगा। यह मेरा विश्वास है एव इसी की ओर दृष्टि रखकर इस ग्रन्थ मे प्रकाशित कविताएँ मैंने लिखी हैं।

उदाहरण के रूप मे—

रवीन्द्र—

हठात् सन्धाय।
सिन्धु वारोयाँय लागे तान ॥
समस्त आकाशे वाजे
आदि कालेर विरह वेदना
हठात्—खबर पाइ मने
आकबर बादशार सगे
हरिपद केरानीर कोन भेद नेइ॥

निराला की गद्य-कविताओ म रवीन्द्र की उपर्युक्त कविताओ का प्रभाव स्पष्टतया लक्षित होता है। उदाहरण के लिए—

निराला—

"मैं कुकुरमुत्त हूँ,
पर बेनजोइन (Ben zoin) वैसे,
बने दर्शन शास्त्र जैसे।
ओमफलस (omphalos) और ब्रह्मावर्त,
वैसे ही दुनिया के गोले और पर्त ।[2]

अथवा—

निराला—

घने घने बादल हैं
एक ओर गडगडाने,

---

१. सुकुमारसेन बगला साहित्येर इतिहास, तृतीय खड, द्वितीय सस्करण, पृ० १४४
२. निराला कुकुरमुत्ता

के कारण यह प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। अपने युग की इस प्रवृत्ति को रवीन्द्रनाथ ने 'क्षणिक' की एक कविता 'क्षतिपूरण' में बहुत अच्छी तरह व्यक्त किया है—

आम नावको महाकाव्य
सचरने
छिलो मने—
ठेक्लो कखन तोमार कांकन—
किंकिणीते
कल्पनाटि गेलो फाटि
हाजार गीते।
महाकाव्य सेइ अभाव्य
दुर्घटनाय
पायेर काछे छड़िए आछे
कणाय कणाय।

यद्यपि निराला तथा रवीन्द्र दोनों ने ही लम्बी आख्यानात्मक कविताएँ (Narrative Poems) लिखी हैं तथापि निराला की 'पचवटी प्रसग', 'राम की शक्ति-पूजा' तथा 'तुलसीदास' रवीन्द्र की 'कच-देवयानी सवाद', 'गान्धारीर आवेदन', 'पुजारिनी', 'शिशुतीर्थ' आदि कविताएँ महाकाव्य के उदात्त-भाव (Epic Grandeur) को लिए हुए हैं। फिर निराला ने रवीन्द्र तथा युगीन विचारधारा से प्रभावित गीत, प्रगीत, गीतिनाट्य, शोकगीत सबोधगीत आदि गीतो की रचना की है। इन पर प्रभाव का विवेचन चतुर्थ अध्याय मे किया गया है। निराला ने रवीन्द्र की कुछ कविताओ पर पैरोडी भी लिखी हैं जिनके सम्बन्ध मे द्वितीय परिशिष्ट मे विवेचन किया गया है। जहाँ व्यग—काव्य-रूपों का गद्यमयी भाषा मे प्रयोग दिखलाई पडता है वह वस्तुत. रवीन्द्र तथा अन्य बगाली कवियों का प्रभाव है। मॅस्को डायलोग्स, कुकुरमुत्ता आदि निश्चयरूप से बगला व्यग्य-काव्य के अनुरूप हैं जैसाकि प्रभाकर माचवे कहते हैं—

बगला के उदाहरणो से निराला के व्यग्य-काव्य की समानता है, किन्तु मराठी, गुजराती, उर्दू मे जो उदाहरण मिलते हैं वे व्यग्य-युक्त भले हों, उनमे अभिव्यक्ति का वह वैलक्षण्य नही जिसके कारण ही निराला की व्यग्य-कविताएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।[1]

'सानेट' का उल्लेख हम 'छन्द' के विवेचन मे कर चुके हैं। इसके

---

1. निराला के काव्य में कनिपयार्थवाद, 'साहित्य' का पौष अंक, २००७

घन-गहन-गहन
बन्धु दहन
असहन निस्तल को…

उपर्युक्त इन दोनों उदाहरणों में रवीन्द्रनाथ की "ओगो मरण, हे मोर मरण" कविता के छन्द का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। इसके अतिरिक्त—

२—सौध शिखर पर प्रात मनोहर
कनक गात तुम अरुण चरण धर
सरणि-सरणि पर उतर रहो भर
छन्द-भ्रमर-गुंजित नीलोत्पल

इसमें "कल्पना" काव्य की कविता "भारतलक्ष्मी" के छन्द की अनुकृति स्पष्ट लक्षित होती है। इस प्रकार डा० चट्टोपाध्याय कहते हैं कि निराला की भाषा तथा छन्द की आलोचना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि रवीन्द्र के प्रारम्भिक जीवन का उद्दाम तथा शेष जीवन का स्तिमित माधुर्य का युगपत् प्रकाश निराला की भाषा तथा छन्द में हुआ है।[१]

इसके अतिरिक्त निराला ने अंग्रेजी 'सॉनेट' का भी प्रयोग किया हुआ है। 'अणिमा' में 'रविदास जी के प्रति' और 'विजयलक्ष्मी पंडित के प्रति' वाली कविताएँ सॉनेट के ढंग में लिखी गई हैं। इस सम्बन्ध में डाक्टर शम्भूनाथसिंह लिखते हैं कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कुछ सुन्दर चतुर्दशपदियों की रचना की थी जिनकी देखा-देखी हिन्दी के आधुनिक कवि भी इस ओर प्रवृत्त हुए : किन्तु यह विदेशी शैली हिन्दी-कविता की प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं थी, अतः वह अधिक प्रचलित न हो सकी।[२]

काव्य-रूप

छन्द की ही तरह काव्य-रूपों की दृष्टि से भी निराला का काव्य छायावाद में सबसे अधिक विविधतापूर्ण है। निराला ने महाकाव्य की रचना नहीं की। नामवर-सिंह कहते हैं कि यह आधुनिक युग की विशेषता है कि किसी भी कवि ने महाकाव्य की रचना नहीं की और यदि "कामायनी" जैसे महाकाव्य लिखे भी गए तो वे लम्बे प्रतीत होकर ही रह गए।[३] रवीन्द्रनाथ का परोक्ष प्रभाव छायावादी कवियों पर पड़ने

---

१ सुधाकर चट्टोपाध्याय : आधुनिक हिन्दी साहित्ये बांगलार स्थान, प्रथम खण्ड, पृ० १०२
२ शम्भूनाथसिंह : छायावाद युग, पृ० २३१
३. नामवरसिंह : छायावाद, पृ० १२६

चतुर्थ अध्याय

निराला के गीत पर बंगला-प्रभाव

पिछले अध्याय मे निराला के कला-पक्ष पर विवेचन करते हुए हमने यह देखा है कि निराला के कला पक्ष म नवीनता का समावेश वस्तुत नूतन भावाभिव्यक्ति के समागम के कारण ही हुआ है। भावाभिव्यक्ति की तीव्रता के कारण ही काव्य मे प्रगीतात्मकता का समावेश होता है जैसाकि सगीत के प्रख्यात आलोचक हर्बर्ट स्पेन्सर ने कहा है।[1] नूतन भावाभिव्यक्ति के उच्छलन ने उस युग मे प्रगीतात्मकता का सयोजन ही नही किया वरन् वह सयोजना पूर्णत नूतन ढग की हुई। खडी बोली म रीतिकाल के विरुद्ध बिल्कुल नए ढग म गीतो की रचना 'प्रसाद' ने प्रारम्भ की। ये गीत उनके नाटको के पात्र विशेष वातावरण मे गाते है। निरपेक्ष रूप म अलग गीत लिखने का श्रेय सर्वप्रथम निराला को ही है। डा० बच्चनसिंह का कहना है कि विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर की भाति इनका झुकाव भी सगीत-काव्य की ओर विशेष रहा है।[2] दोनो ही ने नई शैली गीतो की रचना की। पुरानी लीक के विरुद्ध निराला का मत बहुत ही तीव्र था। उनका कहना था—

हिन्दी गवैयो का समपद पर आना मुझे ऐसा लगता था जैसे मजदूर लकडी का बोझ मुकाम पर लाकर धम्म से फेंककर निश्चिन्त हुआ।

निराला ने गीतो की नवीन शैली को रवीन्द्र तथा द्विजेन्द्रलालराय से ग्रहण किया था। इस सम्बन्ध मे डा० बच्चनसिंह का कहना है कि अग्रेजी और बगला कविता के प्रभाव से छायावादी कवियों ने भावानुकूल व्यजना, लाक्षणिक-वैचित्र्य, मूर्तप्रत्यक्षीकरण, भाषा की वक्रता के नवीन विन्यास से खडी बोली को काफी समृद्ध बनाया। काव्य की तरह सगीत का क्षेत्र भी पाश्चात्य प्रभावों से अछूता न बच सका। प्रत्येक क्षेत्र मे अग्रेजियत का प्रभाव सबसे पहले बगला

---

१ Music is but an idealization of the natural Language of emotion, and that consequently, must be good or bad accordingly, as it conforms to the laws of natural language—The orgin and function of music

२ बच्चनसिंह, क्रान्तिकारी कवि निराला, पृ० ७८

अतिरिक्त गजल का विवेचन गीतिकाव्य नामक अध्याय में किया गया है। निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि छन्द की ही तरह काव्य-रूपों की दृष्टि से भी निराला का काव्य छायावाद में सबसे अधिक वैविध्य-सम्पन्न है जिसकी प्रेरणा उन्हें निश्चय रूप से बंगला कवियों से प्राप्त हुई।

कला का अंतिम रूप

शैली-पक्ष पर विचार करते हुए हमने कहा है कि काव्य की शैली किस प्रकार की होगी, उसका निर्णय लेखक की आन्तरिक अनुभूति ही कर लेती है, एवं जब भाषा में लेखक की वह अनुभूति हमारे सम्मुख उद्भासित हो उठती है, तब हम समझ पाते हैं—इस रचना की यही यथार्थ भाषा है, यथार्थ वाणी रूप है। जब हम यह समझ पाते हैं, तब उस रचना के समग्र वाङ्मय को भाव की समग्रता के साथ मिलाकर देखते हैं—शब्द या वाक्य का कोई पृथक् मूल्य स्वीकार नहीं करते हैं। भाव के आधार पर यदि उनका पारस्परिक सम्बन्ध सामंजस्यपूर्ण तथा अभिन्न है तभी उनका चयन और उनकी योजना सार्थक है। इस प्रकार भाव तथा भाषा का एकांगी सम्बन्ध है। ब्रैडले तथा क्रोचे ने इसी मत का प्रतिपादन किया है।[1] निराला के अपने नूतन काव्यजात भावों की व्यंजना के लिए नूतन भाषा तथा रूप-विन्यास के उपकरणों की आवश्यकता हुई। और इन नूतन उपकरणों की खोज में उन्होंने बंगला काव्य से प्रेरणा ग्रहण की। यदि वे ऐसा न करते तो नवीन अनुभूतिजन्य भावाभिव्यक्ति में शायद समर्थ न होते और यदि होते तो शायद भाव तथा भाषा का एकांगी रूप हमारे सम्मुख उद्भासित नहीं हो पाता।

---

1 And this identity of Content and Form, you will say, is no accident, it is of the essence of Poetry in so far as it is Poetry, and of all art in so far as it is art—Bradley Oxford lectures on Poetry, P. 15

कारण अनादिकाल से गीत के मूल में वेदना की छाया ही सबसे अधिक प्रस्फुटित दिखाई पडी है। संगीत चिरकाल का है। वेद तथा उपनिषद् के ऋषियों ने गम्भीर ध्यान के द्वारा यह जानना चाहा था कि संगीत का मूल कहाँ है, क्यों वह हमारे मन को प्रकम्पित करता है, एवं क्यों संगीत एक अनिर्देश्य आवेग के द्वारा प्राण को पूर्ण करता है तथा मन को उदास बना देता है। शान्तिदेव घोष कहते हैं कि इन ऋषिगण ने चिन्ता के गम्भीर स्तर में उतर कर एक दिन अनुभव किया कि सृष्टि की गम्भीरता में एक विश्वव्यापी प्राण-कम्पन की ध्वनि गूँज रही है और गाना सुन कर उसी का वेदनावेग मानो हम अपने चित्त में अनुभव करते हैं।[1] रवीन्द्र के गीतों में भी यह विरह वेदना व्यंजित हुई है—

आमि ये आर सइते पारि ने
सुरे बाजे मनेर माझे गो, कथा दिये कइते पारिने।
तुमि ये आमारे चाओ आमि से जानि
केन ये मोरे कांदाओ आमि से जानि।

और निराला ने भी—

माँ वहाँ तू ले चल
देखूँगा वह द्वार-दिवस का पार
बेसुध पड़ा जहाँ वेदना का संसार
आ वेदने! मैं भी तुझको गा गाकर जीवन दूँ।

विषय की दृष्टि से निराला के गीत पाँच भागों में विभक्त हो सकते हैं—

(१) प्रार्थना-प्रधान गीत।
(२) नारी-सौंदर्य-प्रधान गीत तथा प्रेम-गीत।
(३) प्रकृति प्रधान गीत।
(४) राष्ट्रीयता-प्रधान गीत।
(५) दार्शनिक गीत।

इन पाँचों वर्गों के गीतों में रवीन्द्र का तथा नजरुल इस्लाम का विषयगत-प्रभाव सबसे अधिक परिलक्षित होता है। गीतिका के गीतों के सम्बन्ध में लिखते हुए डा० रामरतन भटनागर कहते हैं कि बंगला में रवीन्द्रनाथ इस प्रकार के गीतों की सहस्रश रचना कर चुके थे। अतः रवीन्द्रनाथ के गीतों की छाया में पलने

[1] शान्ति देव घोष, रवीन्द्र संगीत, पृ० १

निराला के आध्यात्मिक हास्य-प्रधान गीतो मे रवीन्द्र की आध्यात्मिकता की छाप स्पष्टत. परिलक्षित होती है। सुकुमारसेन कहते हैं कि रवीन्द्रनाथ के गीतो मे वैष्णव पदावली का प्रभाव उतना नही है जितना बाउल गान का प्रभाव लक्षित होता है।[1] यहाँ 'अणिमा' के एक गीत में यह प्रभाव दिखाई पड़ता है—

सुन्दर हे, सुन्दर
दर्शन से जीवन पर
बरसे अविनश्वर स्वर।
परसे ज्यों प्राण,
फूट पड़ा सहज गान,
तान-सुर सरिता बही
तुम्हारे मंगल पद छूकर।
उठी हैं तरंग,
बहा जीवन निस्संग
चला तुमसे मिलने को
खिलने को फिर-फिर भर-भर

इसे पढ़कर रवीन्द्र का यह गीत स्मरण हो आता है—

एहे लोभिनु संग तव,
सुन्दर, हे सुन्दर
पुण्य हल अंग मम
धन्य हल अन्तर
सुन्दर, हे सुन्दर
आलोके मोर चक्षु दुटि
मुग्ध हये उठल फूटि,
हृदयगगने पवन हल,
सौरभते मन्थर,
सुन्दर, हे सुन्दर
एहे तोमारि परश-रागे
चित्र हल रंजित,
एहे तोमारि मिलन-सुधा
रइल प्राणे संचित

1. सुकुमारसेन बांगला साहित्येर कथा, तृतीय खण्ड, पृ० २६६

पुण्य के शुभ प्रस्रवण ये,
हृदय द्वार गये ।

और रवीन्द्र—

ऐसो श्यामल सुन्दर
आनो तव तापहरा तृषाहारा संगसुधा ।
विरहिणी चाहिया आछे आकाशे ।

निराला के इस वर्षा-गीत में तथा अन्य प्रकृति के गीतों में रवीन्द्र का प्रभाव होने पर भी रवीन्द्र की रागात्मक अन्विति (जो गीतों की मुख्य विशेषता है) की प्रेरणा को निराला ग्रहण नहीं कर पाये हैं। इसीलिए ये चित्र रवीन्द्र की तरह इतने प्रवाहमय नहीं दीख पड़ते हैं। निराला ने कहीं-कहीं अपने प्रकृति-प्रधान गीतों में नज़रुल-इस्लाम के भाव की प्रेरणा को भी ग्रहण किया है जैसाकि बादल-राग के गीतों के सम्बन्ध में डा० रामविलास शर्मा कहते हैं कि बादल-राग की दूसरी कविता में जहाँ नज़रुल-इस्लाम के 'विद्रोही' की तरह विप्लव का नव जल-धर है वहाँ कली को थी निखरकर उसे पीड़ित करने वाला उद्दण्ड नायक भी है।[1] "गीतगुंज" के एक गीत में भी प्रेरणा का सूत्र स्पष्ट दिखाई पड़ता है—

निराला—बढ़ बढ़ कर बहती पुरवाई,
पुन मलार-कजली की छाई ।
नज़रुल—दुरन्त वायु पुरवइयां बहे
अधीर आनन्दे ।

स्वदेश-प्रेम के गीत

निराला रवीन्द्र के स्वदेश-प्रेम का बखान करते हुए लिखते हैं कि महाकवि रवीन्द्रनाथ ने केवल दूसरे विषयों की उत्तमोत्तम कविताओं की रचना में ही अपना सम्पूर्ण काल नहीं बिताया, उन्होंने देश के सम्बन्ध में भी बड़ी मर्म-स्पर्शिनी कविताएँ लिखी हैं।[2] वास्तव में उस समय के प्रत्येक कवि ने स्वदेश-प्रेम की कविताएँ या गीत लिखे हैं। निराला ने भी रवीन्द्र आदि कवियों से प्रेरणा ग्रहण कर स्वदेश-प्रेम के गीतों का प्रणयन किया। इनका स्वदेश-प्रेम भारतवर्ष के प्राचीरों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उसमें रवीन्द्र की तरह सम्पूर्ण विश्व को वरा गया है।

निराला—

१. रामविलास शर्मा : निराला, पृ० ३६
२. निराला : रवीन्द्र कविता कानन, पृ० ३२

सब मधु तार चरणे तोमारि धरिया।

कहीं-कहीं नारी के चित्रण द्वारा सात्विक प्रेम का रूप प्रकट किया गया है। जैसे निराला के इस गीत में प्रकट होता है—

कौन तुमि शुभ्रकिरण वसना ?
सीखा केवल हसना, केवल हंसना

अथवा—

बहा स्नेह का सरस सरोवर
श्वेत-वसन लौटी सालज घर,
प्रलस सखा के ध्यान-लक्ष्य पर
डूबी, प्रमल धुली।

नारी के इस प्रकार के चित्र रवीन्द्र की कविता में भी मिलते हैं—

आजि निर्मलवाय शान्त ऊषाय
निर्जल अवसाने शुभ्रवसना
चलियाछो धीरे-धीरे।

प्रकृति-प्रधान गीत

निराला ने प्रकृति से सम्बन्धित दो प्रकार के गीत लिखे हैं। एक में कोरा प्रकृति-चित्रण होता है और दूसरे में प्रकृति के माध्यम से हृदय में उत्पन्न विविध विचारों का चित्रण। निराला के प्रकृति-वर्णन पर रवीन्द्र के प्रभाव का विवेचन हम कर चुके हैं और प्रकृति में नारी-रूप के आरोप का भी वर्णन हो चुका है। यहाँ प्रकृति-प्रधान गीतों का वर्णन करेंगे जहाँ प्रगीतात्मक विशेषता से युक्त होकर इनमें कला की अपेक्षा सहज अन्त प्रेरणा तथा प्रवाहमयी शैली का प्राधान्य रहा है। वर्षा के वर्णन में यह रूप सबसे अधिक फूट पड़ा है और इनका वर्षा-वर्णन जैसाकि डा० रामविलास शर्मा कहते हैं—नद और दलदल के वर्णन से स्पष्ट है कि यह वर्षा बंगाल की है।[1] परिमल के वर्षा-गीतों में बंगाल तथा बंगला-कवियों का, मुख्यतया रवीन्द्र का प्रभाव लक्षित होता है। उदाहरणतया 'गीतगुंज' का एक गीत लेते हैं—

गगन मेघ छाये
नए नयन भाये
प्राण धन के श्याम घन ये
तापजल शीतल श्रवण ये,

---

१. रामविलास शर्मा : निराला, पृ० ५६

'मिथलजि' प्राप्त होती है परन्तु कहीं-कहीं गीत सार्वजनीनता के पद को प्राप्त कर गए हैं'—

जागो क्षीनो के बाजाय,
बनफुलेर मालार गन्ध बादिर ताने मिशे याय।
अधर छुँये बाँशिखानि.. ।

जीव और ब्रह्म सम्बन्धी रहस्यवाद निराला का प्रिय विषय है। डा० भटनागर कहते हैं कि जिस गीताजलि से आधुनिक छायावादी काव्य को विशेष प्रेरणा मिली, उसमें भी आत्मा-परमात्मा के रहस्यात्मक और भक्तिभावपरक अनेक गीत हैं। गीत में निराला ने जहाँ-कहीं भी इस भाव को व्यक्त किया है वह आत्मपरक भावना से उद्बुद्ध होने के कारण रवीन्द्र की तरह विरागपूर्ण बन गया है—

कितने बार पुकारा,
खोल दो द्वार, बेचारा।[2]

रवीन्द्र— तोमाय डाकिनु यबे कुञ्जवने
तखनो आमेर वने गन्ध छिल,
जानि ना की लागि छिल अन्यमने
तोमार दुयार केन बन्ध छिल।

उस ब्रह्म को बुलाने के लिए निराला सितार की झंकार से वातावरण को मुखर कर देते हैं और जहाँ सितार खराब हो जाता है वहाँ निराला रवीन्द्र की तरह सितार को सवारने में लग जाते हैं—

फिर सवार सितार लो।
बाँधकर फिर ठाठ, अपने
अंक पर झंकार दो।[3]

और रवीन्द्र—

एकटि एकटि करे तोमार
पुरानो तार खोलो,
सेतारखानि नूतन बेँधे तोलो।

इस सम्बन्ध में विशद विवरण हम 'निराला के प्रतिपाद्य' वाले अध्याय में दे चुके हैं।

---

१. सुकुमार सेन : बाँग्ला साहित्येर कथा, तृतीय खण्ड, पृ० ३७०
२ निराला : गीतिका
३. अपरा

जागो जीवन धनि के
विश्व पराय-प्रिय वणिके

भारत का वर्णन भी इसी प्रकार प्रेरणास्त्र में किया है। डा० बच्चनसिंह कहते हैं कि बंगला के गीतों की तरह निराला की भारत-भूमि की यह प्रशस्ति है।[1]

लंका पदतल शतदल,
गर्जितोर्मि सागर-जल
धोता शुचि चरण युगल
स्तव कर बहु अर्थ भरे।
× × ×
अंचल में खचित सुमन
मुकुट शुभ्र हिम तुषार।

रवीन्द्र—नीलसिन्धुजल—धौत चरण तल,
अनिल-विकम्पित श्यामल अंचल,
अम्बर-चुम्बित भाल हिमाचल
शुभ्र-तुषार-किरिटनी।

पराधीनता के विरुद्ध कवि का आक्रोश सर्वदा नजरुल की तरह है। दोनों ही विद्रोही कवि थे और दोनों ने ही उदात्त गम्भीर शैली में विद्रोह का गाना गाया है।

दार्शनिक गीत

दार्शनिक गीतों का प्रतिपाद्य अद्वैतवाद है। डा० भटनागर कहते हैं कि जिस मुरली-ध्वनि को गोपिकाओं ने वृन्दावन में सुना था, वही मुरली-ध्वनि जीवात्मा को जब भीतर-भीतर सुनाई पड़ती है, तब उसके जगत् के बन्धन धीरे-धीरे टूटने लगते हैं। तब अभिसारिका-रूपी जीवात्मा के मन में उस प्रिय के प्रति जिज्ञासा जाग उठती है।[2]

हृदय में कौन जो छेड़ता बाँसुरी ?
हुई ज्योत्स्नामयी अखिल मायापुरी ,[3]

यह प्रेरणा रवीन्द्र की विचारधारा की है। रवीन्द्र के सम्बन्ध में सुकुमारसेन कहते हैं कि नितान्त स्वाभाविक रूप में उनके गाने में वैष्णव-पदावली के रूप-रस की

---

१. बच्चनसिंह : क्रान्तिकारी कवि निराला, पृ० ८८
२. भटनागर : कवि निराला : एक अध्ययन, पृ० १४८
३. निराला : गीतिका

पंचम अध्याय

उपसंहार

प्रस्तुत निबन्ध में जहाँ तक सम्भव हो सका है, तटस्थ तथा निरपेक्ष होकर निराला-काव्य में बंगीय-प्रभाव के सूत्र को स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है। इस सम्बन्ध में आलोचना करते हुए हमने मुख्यतया निराला पर रवीन्द्रनाथ का प्रभाव ही प्रदर्शित किया है। इसके अतिरिक्त आनुषंगिक रूप में विवेकानन्द, नजरुल-इस्लाम, द्विजेन्द्रलालराय तथा बंगाली या मैथिली वैष्णव कवि विद्यापति और चण्डीदास के प्रभाव की भी आलोचना प्रस्तुत की गई है। चूँकि 'निराला-काव्य पर बंगला का प्रभाव' आलोचना का विषय रहा है इसीलिए बंगीय चिन्तनधारा तथा वातावरण के प्रभाव को भी स्पष्ट कर दिया गया है। सम्पूर्ण निबन्ध में आनुषंगिक प्रभाव-प्रदर्शन के अतिरिक्त मुख्यतया तीन विषयों पर व्यवहारगत आलोचना प्रस्तुत की गई है—

१ निराला के काव्य की आलोचना।

२ रवीन्द्र के काव्य (प्रसंग) की आलोचना।

३ निराला और रवीन्द्र के काव्य की साम्य या वैषम्यमूलक आलोचना।

निराला के काव्य की आलोचना करते हुए उनके सम्पूर्ण काव्य साहित्य की व्यवहारगत (प्रैक्टिकल) आलोचना प्रस्तुत की गई है और साथ ही रवीन्द्र के काव्य-साहित्य के विचार-पक्ष तथा कलापक्ष को आलोचना का विषय बनाया गया है। पृथक् आलोचना होने के उपरान्त निराला पर रवीन्द्र के प्रभाव-विस्तार की व्याख्या की गई है और निष्कर्ष रूप में रवीन्द्र से साम्य या वैषम्य का भी प्रदर्शन किया गया है। निराला द्वारा अनूदित बंगला-कविताओं वाले परिशिष्ट[1] में रवीन्द्र के विचारों के क्रम विकास की व्याख्या मनोवैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से प्रस्तुत की गई है। इस प्रकार सम्पूर्ण निबन्ध की विषयवस्तु निराला तथा रवीन्द्र के काव्य की आलोचना ही रही।

प्रस्तुत निबन्ध की आलोचना का लक्ष्य विषयगत तथ्यों की व्याख्या ही रही इसीलिए निराला की मौलिकता या हिन्दी-साहित्य को निराला की मौलिक देन

---

१. देखिए परिशिष्ट।

इस प्रकार निराला के गीतो के प्रतिपाद्य पर स्पष्टतया रवीन्द्र का प्रभाव परिलक्षित होता है। यद्यपि यह कहना ही पडेगा कि निराला के गीतो में भाव-प्रवणता, सहज अन्त प्रेरणा तथा प्रवाहमयी शैली का अधिकतर अभाव है। इनमे गेयता तथा आत्मतत्त्व के गुण प्राप्त हो जाते है परन्तु रागात्मक अन्विति के अभाव के कारण इनमे भाव का सहज उच्छलन दृष्टिगोचर नही होता। शायद इसी कारण डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी निराला के गीतो को, मुख्यतया गीतिका के गीतो को ठूठ के पर्याय मे रखते हैं।[1] इसी कारण उनके गीत द्विजेन्द्रलाल-राय तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर की तरह इतने प्रसिद्ध नही हो सके है। बाद मे चलकर उन्होंने "नये पत्ते" मे गजल के तर्ज पर कुछ गीत लिखे थे परन्तु यहाँ भी निराला व्यर्थ हुए। डा० भटनागर कहते हैं कि नजरुल की गजलो मे बगला की अपनी रूप-रेखाएँ उभर आई हैं। यह बात निराला की इन गजलो मे नही।[2] जहा निराला ने हिन्दुस्तानी सगीत के आधार पर गीत रचे वहा वे सफल बन पाये हैं जिसके उदाहरणों से सम्पूर्ण गीतिका के पृष्ठ भरे पडे हैं।

जहा तक निराला के गीतो के कला-पक्ष का सम्बन्ध है वहा वे रवीन्द्र के गीतो की सहज भाषा, रीति तथा ढग से प्रभावित दिखाई पडते हैं यद्यपि कही कही रवीन्द्र की तरह तत्सम शब्दो का प्रयोग भी काफी करते है। रवीन्द्र ने कीर्तन, बाउल तथा भाटियाली आदि लोक-गीतो के ढग पर अपने गीत रचे परन्तु ऐसा कुछ काम निराला ने अपने गीतो मे नही किया यद्यपि रवीन्द्र की कान्त पदावली तथा नजरुल की उदात्त शैली का अपने गीतो के लिए निराला ने ग्रहण किया था। सक्षेप म हम कह सकते हैं कि रवीन्द्र के गीतो स अनुप्रेरित निराला ने अनेक गीतों की रचना की परन्तु ये गीत भाव तथा कल्पना की अन्विति के अभाव के कारण प्राय रवीन्द्र के गीतो की भाति सुन्दर तथा कलात्मक रूप धारण नही कर पाय। जहा कही भी वे भाव तथा कल्पना की अन्विति करने म समर्थ हुए हैं वहा निराला की प्रतिभा स्पष्टतया सहज स्फूर्त उद्गीत का रूप धारण कर लेती है और गीत के माध्यम से अपनी विद्युच्छटा को प्रतिभासित करती है।

---

१. हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिंदी साहित्य, पृ० ४६६
२ भटनागर : कवि निराला : एक अध्ययन, पृ० २३७

पंत पर रवीन्द्र के प्रभाव की आलोचना करते हुए कहते हैं कि प्रभाव का अपहरण न कहकर अलंकरण कहना चाहिए। इस अलंकरण के प्रयास में ही छिपी हुई है—निराला की मौलिकता, जिसका अभिनव रूप उनके काव्य के माध्यम से प्रकट हुआ है और इस प्रकार इस अलंकरण के प्रयास में ही छिपा हुआ है। निराला का व्यक्तित्व जो कविताओं में अपने सम्पूर्ण काव्यत्व को लेकर प्रकट हुआ है और जिसका प्राप्य है—

"नव जीवन की प्रबल उमंग,
जा रही मैं मिलने के लिए, पार कर सीमा
प्रियतम असीम के संग।"

आदि विषयो को आलोच्य विषय के अन्तर्गत नही रखा गया है जिसके सम्बन्ध मे भूमिका मे बात स्पष्ट कर दी गई है। भूमिका में हमने कहा है कि निराला मे मौलिकता का अभाव नही है और जहाँ रवीन्द्र से प्रभावित भी हुए हैं वहाँ रवीन्द्र के भाव को आत्मसात् कर उसको मौलिक रूप मे प्रकट भी किया है। 'प्रभाव' की आलोचना करने का या निराला के काव्य मे बगीय प्रभाव-विस्तार को प्रदर्शित करने का अर्थ यह नही कि निराला मे मौलिकता नही है वरन् उनकी या छायावादी कवियो की मौलिकता को बगाली आलोचक भी स्वीकार करते हैं। सुधाकर चट्टोपाध्याय का कहना है—

छायावादी कविरा साहित्यकार कवि। भारतेर विभिन्न अचले तादेर अनेक कविताइ अनुकूल अभ्यर्थना पावे सहृदय-हृदयेर काछे। तादेर अनन्त कवितार मध्ये खुजले अनन्त कालेर दु एकटि कविताओ आविष्कृत हवे।[1]

अर्थात् छायावादी कवि वास्तविक कवि हैं। भारत के विभिन्न प्रान्तो के सहृदय-हृदय के पास से उनकी बहुत-सी कविताएँ अनुकूल अभ्यर्थना पा सकेंगी। उनकी अनन्त कविताओ के बीच ढूंढने पर अनन्तकाल के लिए लिखी गई दो-एक कविताएँ अवश्य ही मिल जायेंगी।

यहाँ उपसहार के रूप मे दो प्रश्नो पर हम प्रकाश डालना उचित समझेंगे—

प्रथम, प्रभावान्वित कविताओ का मूल्य क्या है ?

द्वितीय, प्रभाव को किस रूप मे निराला ने अपनाया है ?

प्रथम प्रश्न का उत्तर हम भूमिका मे 'प्रभाव की उपयोगिता' म दे चुके हैं। यहाँ केवल इतना ही कहना है कि रवीन्द्र-प्रभावान्वित होने से ही निराला की कविताएँ मूल्यहीन नही हो जाती। जिस प्रकार रवीन्द्र की कविताओं ने, दूसरे साहित्यकारो के प्रभाव से पूर्ण होते हुए भी, अपनी अलग सत्ता को बनाए रखा है उसी प्रकार निराला की कविताएँ अनुकरण की स्थूलता से मुक्त होकर स्वीकरण की सार्थकता से पूर्ण बनी हुई हैं। यही निराला की कविताओ का परम मूल्य है और यह सार्थकता ही इन कविताओ को हिन्दी-काव्य की स्थायी सम्पत्ति बनाए रखेंगी।

जहाँ तक दूसरा प्रश्न है कि निराला ने प्रभाव को किस रूप मे अपनाया है उसके उत्तर मे हम कह सकते हैं कि अन्य छायावादी कवियो की तरह निराला के अनुकरण की चेष्टा अनुभूतिजन्य होने के अतिरिक्त अपने काव्य को अलकृत करने का प्रयास भी है। इस विषय मे नन्ददुलारे वाजपेयी, सुमित्रानन्दन

---

१. चट्टोपाध्याय : आधुनिक हिंदी साहित्ये बांगलार स्थान, प्रथम खड, पृ० १११

उसी अर्थ को दूसरी भाषा मे प्रस्फुटित कर देना उसका कर्तव्य है। यदि मूल मे कोई चमत्कार हो तो अनुवाद मे भी चमत्कार दिखलाना चाहिए। मूल की भाषा मे यदि किसी ऐसे मुहावरे का प्रयोग आया है जिसकी ओर स्वभावत पाठक खिच जाय तो अनुवादक को भी उसी ढग का करना चाहिए। साराश यह है कि मूल की भाषा और भावो मे अनुवाद की भाषा और भाव को शिथिल न होने देना चाहिए।[1]

अनुवाद के सम्बन्ध मे प्रत्येक बड़े आलोचक का भी यही मत है। अग्रजी साहित्य के विख्यात इतिहासकार कौमटन रिकेट भी यही कहते हैं—

"A literal translation as the student of letters knows often does far less justice to the genius of the original than a free translation"[2]

कौमटन रिकेट ने अपना यह मत फिटजरल्ड द्वारा अनूदित उमर खैयाम की रुबाइयो के सम्बन्ध म आलोचना करते हुए व्यक्त किया है। कौमटन रिकेट कहते हैं कि "फिटजरल्ड द्वारा उमर खैयाम की रुबाइयो का सफल अनुवाद का रहस्य है कि अनुवादक का व्यक्तित्व मूलवस्तु के साथ घुलमिल गया था और इसी ममरमता के कारण अनुवाद इतना सफल हो पाया—

Although only a tolerable scholar with a partial knowledge of persian, he found in Omar a writer with whom he was spiritually at one, and for this reason his bold and unblushing liberties with the text, his own variation to the original music are in perfect accord with the primal melody For this reason Fitz Gerald's translation has the force and beauty of an original work[3]

निराला की अनूदित कविताओ के सम्बन्ध मे भी बिल्कुल यही बात कही जा सकती है। रवीन्द्रनाथ तथा विवेकानन्द के विचारों द्वारा अनुप्रेरित उन्होंने काव्य-रचना प्रारम्भ की थी। इन दोनो बगला-कवियो का प्रभाव निराला के काव्य पर बराबर बना रहा, परन्तु निराला ने उस प्रभाव को आत्मसात् कर लिया और यह आत्मसात्, परस्पर के विचारो की समता के कारण ही सम्भव हो सका। निराला वेदान्त से प्रभावित थे इसीलिए वे 'विराट् म

१. निराला, 'चरित्रहीन', पाकुर
२ Rickett. A history of Eng Lit Page 467
३ Rickett · A history of Eng Lit Page 467

परिशिष्ट

(१) निराला द्वारा अनूदित बंगला-कविताएँ

निराला द्वारा अनूदित बंगला-कविताएं आलोच्य निबन्ध की परिधि के भीतर नहीं समा सकती क्योंकि सामान्यतः अनुवाद का 'प्रभाव' के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होता है। परन्तु निराला के लिए अनुवाद एक सामान्य वस्तु नहीं है, उनके साहित्यिक जीवन में अनुवाद का एक विशेष स्थान है। निराला के लिए अनुवाद प्रभावसापेक्ष है। जैसाकि वे कहते हैं कि अंग्रेजी या बंगला की अनूदित पुस्तकों की भाषा चाहे कितनी सावधानी से क्यों न लिखी जाये परन्तु मूल ग्रंथों के जातीय भावों का निराकरण कभी किया नहीं जा सकता।[1] निराला ने उन्हीं दो बंगाली कवियों अर्थात् रवीन्द्र तथा विवेकानन्द की ही कविताओं का अनुवाद किया है जिन्होंने उन्हें काव्य की सृष्टि में सबसे अधिक प्रभावित किया है। इसी कारण, आलोच्य विषय की अंगहानि के दोष से बचने के लिए अनूदित कविताओं पर आलोचना आवश्यक-सी हो गयी है। और यह आवश्यकता और भी निगूढ़ बन जाती है जब हम अनुवाद के सम्बन्ध में निराला की मौलिक मान्यताओं से परिचित होते है। निराला के लिए अनुवाद प्रभाव-सापेक्ष के अतिरिक्त व्यक्तित्व-सापेक्ष भी है अर्थात् अनुवाद के लिए यह आवश्यक नहीं कि मूल पुस्तक का अक्षरशः अनुवाद किया जाय वरन् उसमें अनुवादक की व्यक्तिगत मान्यताओं तथा रुचि का रंग यदि चढ़ जाय तो कोई आपत्ति नहीं और वैसे भी व्यक्तिगत रंग तो अनूदित वस्तु में लग ही जाता है। निराला की अनूदित कविताओं में निराला के व्यक्तित्व की छाप स्पष्टतया परिलक्षित होती है और इसीलिए इस विषय पर विवेचन आवश्यक हो गया है यद्यपि व्यक्तिगत छाप का अर्थ यह नहीं कि अनुवादक मूल वस्तु के साथ मनमानी करे। इसी बात को ध्यान में रखते हुए निराला ने कहा है—

अनुवाद के लिए यह नियम नहीं कि मूल पुस्तक का अक्षरशः अनुवाद किया जाय, परन्तु यह भी ठीक नहीं कि मूल का अर्थ आदि कुछ और हो और अनुवाद का कुछ और। अनुवादक को मूल के अर्थ पर ध्यान रखना चाहिए।

---

१ निराला : भाषा की गति और हिंदी की शैली, चयन

इस प्रकार हम देखते हैं कि निराला के अनुसार अनुवाद के लिए दोनों भाषाओं का परिपक्व ज्ञान तथा अनूदित कविता के भावों का सुललित चित्रण आवश्यक है—यद्यपि अक्षरशः उन्हीं शब्दों तथा भाव-क्रम का अनुवाद आवश्यक नहीं है—इसी दृष्टि से देखने पर हम यह ज्ञात होता है कि जहां तक विवेकानन्द की कविताओं के अनुवाद का प्रश्न है निराला एक सच्चे अनुवादक रह पाये हैं परन्तु रवीन्द्र की कविताओं का अनुवाद करते हुए वे अपने भाव, विचार तथा कल्पना के स्रोत में इतने आगे बह गए हैं कि अनूदित कविताएँ मूल के भाव से स्पष्ट होने पर भी स्वतन्त्र दीख पड़ती हैं। किसी निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले मूल तथा उसके अनुवाद पर आलोचना कर ली जाय।

रवीन्द्र की कविताओं का अनुवाद

कहाँ देश है? (निरुद्देशयात्रा)

रवीन्द्रनाथ की रचनाओं की कालानुक्रमिक सूची के अनुसार हम अनूदित कविताओं की आलोचना करेंगे। इस दृष्टि से सर्वप्रथम रवीन्द्र के 'सोनारतरी' काव्यसंग्रह के अन्तर्गत 'निरुद्देश यात्रा' कविता के अनुवाद की आलोचना करनी होगी। 'निरुद्देश यात्रा' शीर्षक को बदलकर निराला ने कविता का नूतन नामकरण 'कहाँ देश है' रखा है। यहाँ 'सोनार तरी' काव्य संग्रह के मूलगत भावना विचार को हमें समझ लेना होगा कारण उसी से ही हमें निरुद्देश यात्रा' में अन्तर्निहित मूल चिन्तनधारा की अनुभूति होगी और हमें यह समझने में सुविधा भी होगी कि केवल अनुवादार्थ निराला ने इसका अनुवाद किया अथवा इसकी भाव-धारा से प्रभावित होकर उन्होंने इसका प्रणयन किया और करते हुए उनके मौलिक भावों का भी समावेश इसमें हो गया।

'सोनार तरी' की चिन्तनधारा की आलोचना करते हुए सुकुमार सेन कहते हैं कि कविमानस की प्रकृति तथा उसकी रस-दृष्टि के विकास तथा परिणति के आधार पर विचार करने से रवीन्द्रनाथ की सुदीर्घ काव्य-सृष्टि को तीन कालों में विभक्त किया जा सकता है—

आत्ममुखीन—इन्ट्रोस्पेक्टिव
प्राङ्मुखीन—प्रोस्पेक्टिव
पराङ्मुखीन—रिट्रोस्पेक्टिव[1]

बचपन में कठोर शासन के अन्दर रहने से केवल उनकी अन्तर्यामी आत्मा ही आरम्भिक रचनाओं में प्रस्फुटित हुई है। धीरे-धीरे कवि चित्त अपनी रची हुई बाधा को

---

१. सुकुमार सेन, बाङ्ला साहित्येर इतिहास, तृतीय खंड, पृ० ४

उपासक" थे और इसी कारण स्वामी विवेकानन्द के वेदान्त से अनुप्रेरित वे कविताओं का सफल अनुवाद कर सके। इसके अतिरिक्त रवीन्द्र की सौन्दर्यानुभूति तथा स्वदेश-प्रेम और रहस्यवादी कविताओं के विचारों का स्वतः स्फुरण उनके मन में बाल्यकाल से ही हो गया था इसी कारण वे रवीन्द्र के भी सफल अनुवादक बन सके क्योंकि विचारों की समता ही सफल अनुवाद का रहस्य है।

निराला के अनुवाद के प्रति अपने विचार सशक्त तथा प्रबल है। वे गलत अनुवाद के घोर विरोधी है और गलत अनुवाद करनेवाले को नीचा दिखाने में वे कदापि नहीं चूकते। पंडित रूपनारायण पाण्डेय के गलत अनुवाद पर निराला के विचारों को प्रकट करते हुए डा० रामविलास शर्मा लिखते हैं—

एक जगह 'फुलकी' का अर्थ पाण्डेय जी ने 'रोटी' लिखा था जबकि उस का अर्थ 'चिनगारी' था। बंगला के वाक्य का अर्थ है—उसका तरुण हृदय आग की चिनगी की तरह चारों ओर फैल रहा था (ताहादेर भावप्रवण तरुण हृदय आगुनेर फुलकीर मतनेंइ स्वाधीन आनन्देर उज्जवलताय क्षणे क्षणे आपनादिगके चारिदिके विकीर्ण करिते थाकितो)। पाण्डेय जी ने अनुवाद किया था "उसका भाव-प्रवण तरुण हृदय सिंक रही फुलकी (रोटी) की तरह ही स्वाधीन आनन्द की तरह फूल फूल उठता था।" पाण्डेय जी के अनुवाद पर टीका करते हुए निराला जी कहते है, "खूब! पण्डित जी, जान पड़ता है, उस समय भूख बड़े जोरों की लगी थी, नहीं तो रोटी क्यों सेंकते? यहाँ न कहीं रोटी है न दाल, फुलकी है सो यह भी चिनगारी है रोटी नहीं। कल्पना भी कैसी! मूल में तो है "विकीर्ण करिते थाकितो" और अनुवाद में "फूल फूल उठता था।"... फूल-फूल उठना रूपनारायणजी की रोटी के लिए ही उपयुक्त है। अच्छा है, सेंकिए रोटी।'[1] यहाँ निराला ने पाण्डेय जी के प्रति व्यक्तिगत रोष के कारण इस प्रकार की आलोचना नहीं की वरन् उन्होंने तो एक सच्चे अनुवादक के नाते गलत अनुवाद का केवल सशक्त शब्दों में विरोध किया है, नहीं तो पाण्डेयजी के सुन्दर अनुवादों का निराला सर्वदा प्रशंसा करते रहे। अनुवाद के लिए निराला दोनों भाषाओं के ज्ञान को बहुत महत्त्वपूर्ण समझते थे। उनका कहना है—

अनुवाद का अर्थ वही समझता है, मौलिक ग्रंथ का चमत्कार उसी दृष्टि में अपनी शोभनीय सृष्टि रखता है—अनुवाद और मूल दोनों की भाषाओं पर जिसका पूर्ण अधिकार हो।[2]

---

१ रामविलास शर्मा, निराला, पृ० ७८

२ निराला, चाबुक

द्वितीय स्तर की कविताओं में नव यौवन के अकृतार्थ प्रेम ने, रसायित लोकातीत आदर्श में परिवर्तित होकर, कवि को चिरविरही बनाया है। यह विरह-रसाश्रित प्रेम ही रवीन्द्रनाथ के कवि-जीवन का प्रधान आलम्बन बन गया है—

ए प्रेम आमार सुख नहे दुख नहे

इस द्वितीय स्तर की कविताओं में ही 'मानसी' का निजस्व स्वर ध्वनित है। वास्तव प्रेम के मोह के टूट जाने के साथ ही प्रेम-कल्पना को केन्द्रित कर कवि-हृदय की सारी आकांक्षा तथा आशा धीरे-धीरे सुस्पष्ट रूप धारण कर कवि-जीवन के ध्रुवतारा के रूप में उदित हुई है। यही रवीन्द्र की 'मानस-प्रतिमा' है।[1]

'सोनार तरी' में हृदयवेग स्तिमित हो गया है तथा कवि-चित्त में गम्भीर शान्ति एवं कवि-दृष्टि में प्रगाढ़तर रसावेग का संचार हुआ है। 'सोनारतरी' की 'मानस सुन्दरी' कविता में 'मानसी' की 'मानसी प्रतिमा' को अतीत मनोगत के चिरन्तन रसलोक में पहुँचाकर कविचित्त ने उसे रसानुभूति के परम आलम्बन रूप में ग्रहण किया है—

छिले खेलार संगिनी
एखन हयेछ मोर मर्मेर गेहिनी,
जीवनेर अधिष्ठात्री देवी।

जीवन की अधिष्ठात्री देवी, अपनी मानस-सुन्दरी को लेकर कवि 'सोनारतरी' पर बैठ 'निरुद्देशयात्रा' को निकला है—विश्वजीवन की चेतना में जागृत होकर कवि गाता हुआ चला है—

आर कतदूर निये जाबे मोरे
हे सुन्दरी
बलो, कोन पार भिड़िबे तोमार
सोनार तरी।

मौन की तरी की चालक मानस-सुन्दरी इसके उत्तर में हँस देती है। मानस-सुन्दरी रोमांस की नायिका या परी-कथा की मोहिनी के रूप में कवि-हृदय के अक्लिम सागर को मथित कर चली है फिर भी अपने रहस्य को सम्पूर्ण रूप से व्यक्त नहीं करती—

तरीते उठिया, शुधानु तखन
आछे कि होथाय नवीन जीवन

---

१. सुकुमार सेन, बांग्ला साहित्येर इतिहास, पृ० २४

भेद कर वृहत्संसार की विभिन्न अभिज्ञता के स्वाद को ग्रहण करने निकल पड़ता है। सुकुमार सेन के अनुसार 'कड़ि ओ कोमल' काव्य संग्रह से यह द्वितीय अर्थात् प्राङ्मुखीन युग का प्रारम्भ होता है। कवि-हृदय की अतृप्त विरह-वेदना अब मर्मदहन का कारण न बन रस-परिणति का कारण बनती है एव भावार्पित अथवा 'आईडिएलाइज्ड' होकर एक ओर तो अतीन्द्रिय अध्यात्मलोक तक बढ़ जाती है, और दूसरी ओर विश्व प्रकृति के बीच फैल जाती है।[1] यही से हम रवीन्द्रकाव्य के ब्रह्म तथा विश्व, जीव तथा जगत् के अखंड भाव का कारण समझ पाते हैं। हमारा जीवन एक ओर अहं द्वारा केन्द्रित सीमाबद्ध है, दूसरी ओर विश्व में परिव्याप्त है। जीवन जहाँ अहं केन्द्रित है, वहाँ 'मैं छोटा' मैं है तथा 'पिंजरे की चिड़िया' है। जीवन जहाँ विश्वमुखीन है वहाँ 'मैं बड़ा' मैं है तथा 'वन की चिड़िया' है। तपनकुमार बन्द्योपाध्याय के अनुसार इस अहं से विश्व की ओर बढ़ना, छोटा-मैं से बड़े-मैं की ओर अभिसार ही रवीन्द्र दर्शन तथा रवीन्द्र-साहित्य की मर्मवाणी है। 'सोनार तरी' काव्य में पिंजरे के पक्षी तथा वन के पक्षी का पहला परिचय हम पाते हैं।[2] जिस अभिनव जीवन-ध्यान से अनुप्रेरित कवि सोने के पिंजरे से निकल आए, जिस वृहत्तर जीवन-बोध से प्रेरित कवि का मानसाभिसार शुरू हुआ, उसी विकसित चेतना अथवा वृहत्तर जीवन-बोध को ही कवि ने 'सोनार तरी' कहा है। कवि के सोने के पिंजरे में एक सोने की तरी डोल रही है। पिंजरे की चिड़िया उस नौके की सहायता से बाहर निकलने की चेष्टा कर रही है। कवि पहले अपने व्यक्तिगत जीवन के सुख-दुःख में मग्न थे, अब कवि विश्व-जीवन की आनन्द-चेतना से उद्बुद्ध हुए हैं। कविचित्त का यह उद्बोधन ही 'सोनार तरी' काव्य की मर्मवाणी है।

यद्यपि इस चिन्तनधारा का सूत्रपात, जैसाकि हम पहले कह चुके हैं, 'कड़ि ओ कोमल' से हो गया था और 'मानसी' में आकर इसको और भी अधिक स्पष्टता प्राप्त हुई। भाव तथा कालानुसार मानसी की कविताओं में दो स्तर लक्षित होते हैं। पहले स्तर की कविता में हम देखते हैं कि प्रेम-स्वप्न छिन्न-भिन्न हो गया है और कविचित्त आत्मस्थ होकर स्थूल प्रेम की अतृप्ति तथा ग्लानि से चलकर स्थिरतर आत्मरति के मध्य आश्रय ढूंढ रहा है। फिर भी अन्तर्द्वन्द्व की गति बिल्कुल लुप्त नहीं हो गई है। इसीलिए प्रश्न है—

हृदयेर धन कभु धरा याय देहे?

---

१ सुकुमार सेन, बांगला साहित्येर इतिहास, तृतीय खण्ड, पृ० १२

२ तपनकुमार बन्द्योपाध्याय, रवीन्द्र-जिज्ञासा, पृ० ७

सामना कवि को करना न पड़े—

झुलसाता जल तरल अनल
है प्लावित कर जग को असीम रोदन लहराता,
खड़ी दिग्वधू, नयनों में दुख की है गाथा
प्रबल वायु भरती है एक अधीर श्वास,
है करता अनय प्रलय का-सा भर जलोच्छ्वास,
यह चारों ओर घोर संशयमय क्या होता है ?
क्यों सारा संसार आज इतना रोता है ?
कहाँ हो गया इस रोदन का शेष,
क्यों सखि, क्या है वही तुम्हारा देश ?

परन्तु रवीन्द्र की कविता जीवन में भागना नहीं, जीवन को परिपूर्णरूप से पाने की व्याकुलता है जो साधारण मानवी प्रिया की सहायता से सभव नहीं वरन् उसके लिए तो एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता है जो रहस्याच्छन्न विदेशिनी हो—

आंधार रजनी आसिबे एखनि मेलिया पाखा,
सध्या-आकाशे स्वर्ण-आलोक पड़िबे ढाका।
शुधु भासे तव देहसौरभ,
शुधु काने आसे जलकलरव
गाये उड़े पड़े वायुभरे तव केशेर राशि।
विकल हृदय विवश शरीर
डाकिया तोमारे कहिब अधीर—
'कोथा आछ ओगो, करह परश निकटे आसि।'
कहिबे न कथा, देखिते पाव ना नीरव हासि।

निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि यह कविता वास्तव में अनुवाद नहीं वरन् रवीन्द्र के भावों का चयन कर निराला ने अपने मन के अन्तर्द्वन्द्व को एक नया रूप देना चाहा है। रवीन्द्र के 'मानस सुन्दरी' जैसे अतीन्द्रिय रूपक को ग्रहण करके उसकी नयी सृष्टि में यह अन्तर्द्वन्द्व ही अधिक प्रकट हुआ है जहाँ वह स्थूल तथा अतीन्द्रिय प्रेम का समन्वयात्मक रूप बन गया है। रवीन्द्र की कविता का स्थायित्व, इसी अन्तर्द्वन्द्व के कारण, इस कविता को प्राप्त नहीं हुआ है। निराला में पलायनवादी प्रवृत्ति अधिक लक्षित होती है जहाँ रवीन्द्र की कविता में निज तथा विश्व के समन्वयात्मक बोध से परिपूर्ण जीवन की प्राप्ति की इच्छा अधिक दिखाई पड़ती है। निराला को इस पलायनात्मक भाव के सप्रेषण के लिए रवीन्द्र की कविता के भाव-क्रम का परिवर्तन करना पड़ा है और इस प्रकार

मानस-सुन्दरी विदेशी, 'अपरिचिता' है क्योंकि वहाँ कवि स्थूल प्रेम की अतृप्ति तथा ग्लानि से विमुख होकर स्थिरतर आत्मरति के मध्य आश्रय ढूंढ रहा है। और निराला में विराटत्व की जिज्ञासा के साथ ही अवचेतना से अनुप्रेरित रोमांस का पुट कविता को कुछ और ही रूप दे देता है। इसी कारण रवीन्द्र की 'विदेशिनी' 'अपरिचिता निराला के लिए 'प्रिय' तथा 'सखि' है। चूंकि निराला की मानस सुन्दरी उसकी अपनी प्रिया है इसीलिए वह उसे गाना भी सुनाती है, जो निराला की मौलिक संयोजना है—

> प्रिय, सँभालती हुई कपोलों पर के कुंचित केश,
> मुझे चढ़ाया बाँह पकड़ अपनी सुन्दर नौका पर,
> फिर समझ न पाया, मधुर सुनाया कैसा वह संगीत
> सहज-कमनीय-कण्ठ से गाकर।

इसके अतिरिक्त निराला अपनी प्रिया के सान्निध्य में आकर वास्तविक जगत् की क्रूरता को भूल जाते हैं, यह भी निराला की मौलिक संयोजना है—

> मिलन मुखर उस सोने के संगीत राज्य में
> मैं विहार करता था,—
> मेरा जीवन—श्रम हरता था,
> मीठी थपकी क्षुब्ध हृदय में तान-तरंग लगाती
> मुझे गोद पर ललित कल्पना को वह कभी सुनाती कभी जगाती।
> जगकर पूछा, कहो कहाँ मैं आया ?
> हँसते हुए दूसरा ही गाना तब तुमने गाया

फिर व्याकुलचित्त होकर प्रिया के 'त्रस्त वस्त्र' को पकड़ना भी काफी रोमाण्टिक है, यह भी निराला की मौलिक संयोजना है—

> झाँका खिड़की खोल तुम्हारी छोटी सी नौका पर,
> व्याकुल थीं निस्सीम सिन्धु की ताल तरंगें।
> गीत तुम्हारा सुनकर,
> विकल हृदय यह हुआ और जब पूछा मैंने
> पकड़ तुम्हारे त्रस्त वस्त्र का छोर

वास्तव में रवीन्द्र की 'सोनार तरी' का रूपक अर्थात् व्यक्ति का विश्व के साथ मिलन के लिए यात्रा के भाव का अभाव निराला की कविता में दीखता है। निराला की कविता में जीवन की वास्तविकता से डरे हुए कवि का जीवन से पलायन (Escape) की इच्छा अधिक द्रष्टव्य है और वह एक ऐसे भाव-देश में (Eutopia) भागकर जाना चाहता है जहाँ जीवन की क्रूर वास्तविकता का

भक्ति ही नहीं जीवन को भी अन्तर्यामी की सेवा में लगा दिया है।[1] इसी बात को स्पष्ट करते हुए तपनकुमार बन्द्योपाध्याय कहते हैं कि 'सोनार तरी' को अर्थात् संसार की तरणी के खिवैया को संसार की अधिष्ठात्री को देवी रूप में कल्पना के बाद स्वयं रवीन्द्रनाथ ने व्याख्या करते हुए कहा है। 'नैवेद्य' और 'शांति निकेतन' में रवीन्द्रनाथ के जीवन-देवता का ध्यान विश्वदेवता के ध्यान में पर्यवसित हो जाता है परन्तु उस 'नैवेद्य' और 'शान्ति निकेतन' के स्तर पर कवि 'सोनार तरी' के खिवैया का आत्मगत रूप में ध्यान नहीं कर सके हैं। भावात्मक (objective) ध्यान-कल्पना 'सोनार तरी' में स्पष्ट नहीं है यद्यपि इसका इंगित अवश्य मिल जाता है।[2] 'सोनार तरी' में बृहत्तर जीवन-चेतना का बोध हो जाता है किन्तु यह विषयगत (subjective) है तथा यह केवल बोधमात्र है। यह बोधमात्र ही परवर्ती रचना में विश्वजीवन की वास्तविक भूमिका को ग्रहण करती है और इस प्रकार जीवन-देवता विश्व देवता में परिणत हो जाता है। 'सोनार तरी' से होते हुए 'चित्रा' काव्य के भीतर से चलकर हम इस परिणाम में उपनीत होते हैं।

'निरुद्देश यात्रा' के खिवैया में जीवन-देवता के बोध का प्रथम आभास हम प्राप्त होता है। यहाँ 'बोध' शब्द का प्रयोग जान-बूझकर किया गया है। कारण जैसाकि तपनकुमार बन्द्योपाध्याय कहते हैं कि जीवन-देवता को रवीन्द्रनाथ के ने एक निर्दिष्ट तत्त्व के रूप में नहीं जाना है, वरन् उसकी एक भाव या आइडिया रूप में उपलब्धि की है। इसीलिए जीवन देवता के प्रसंग में हम रवीन्द्रनाथ के जीवन-देवता का ज्ञान नहीं कहेंगे, जीवन-देवता का बोध कहेंगे।[3] 'निरुद्देश यात्रा' की विदेशिनी ही में कवि के जीवन-देवता का प्रथम प्रकाश होता है परन्तु ये विदेशिनी कवि के ही जीवनदेवता हैं यह बात तब तक कवि नहीं समझ पाए थे। जीवनदेवता का निगूढ़ संयोग अभी तक परिस्फुट नहीं हुआ था, ये केवल कवि की जीवनरूपी वस्तु के उदासीन व्यवसायी ज्ञात होते हैं। जिस रहस्यलोक में उसकी दूकान है उस रहस्यलोक का पता कवि को नहीं है। उनको पूछने पर वे केवल मौन हँसते हैं। यह रहस्यमय ही कवि के जीवन का कर्णधार है। इस प्रकार 'सोनार तरी' में हम देखते हैं कि 'जिस जगत् में कवि के जीवन के सोने की फसल की सार्थकता प्राप्त होगी वह जगत् जिस प्रकार कवि के लिए अस्पष्ट है उसी प्रकार उस जगत् की फसल के व्यवसायी का परिचय कवि के लिए

१. सुकुमार सेन : बांग्ला साहित्येर कथा, पृ० १०६
२. तपनकुमार बन्द्योपाध्याय : रवीन्द्र जिज्ञासा, पृ० ३३
३. वही, पृ० ३८

कविता की मूलगत भावना में प्रभेद आ गया है यद्यपि जहाँ कहीं वाक्यों को ग्रहण कर अनुवाद किया गया है वह सुन्दर तथा स्वच्छ हुआ है। उदाहरणार्थ—

नीरवे देखाओ अंगुलि तुलि
=मौन इशारा किया उठा कर उंगली तुमने।

और

डूबे पश्चिमे डुबिछे तपन गगन कोणे।
=धँसते पश्चिम सान्ध्य गगन में पीत तपन की ओर।

और

झलिछे जल तरल अनल,
गलिया पड़िछे अम्बर तल,
दिकवधू येन छलछल-आँखि अश्रुजले
=झुलसाता जल तरल अनल
गलकर गिरता सा अम्बरतल
है प्लावित कर जग को असीम रोदन लहराता;
खड़ी दिगवधू, नयनों में दुख की गाथा।

तथा

हू हू करे वायु फेलिछे सतत दीर्घश्वास
अन्ध आवेगे करे गर्जन जलोच्छ्वास।
संशयमय घननील नीर,
=प्रबल वायु भरती है एक अधीर श्वास,
है करता अनय प्रलय का सा भर जलोच्छ्वास,
यह चारों ओर घोर संशयमय क्या होता है?

तट पर (विजयिनी)

रवीन्द्रनाथ की दूसरी कविता 'विजयिनी' का अनुवाद निराला ने 'तट पर' शीर्षक से किया है। यह रवीन्द्र के 'चित्रा' काव्य-संग्रह में संगृहीत है। 'सोनार तरी' के उपरान्त ही रवीन्द्र का यह दूसरा काव्य-संग्रह है। सुकुमारसेन के अनुसार 'चित्रा' काव्य में 'सोनारतरी' रूपक ने एक विशिष्ट रूप धारण कर लिया है। कवि-मानस सुन्दरी, जीवन देवता रूप में, प्रेयसी राज्ञी के सिंहासन पर अधिष्ठित होकर उसके जीवन की निगूढ़ प्रेरणा को नियन्त्रित कर रही है एवं उसकी समस्त सफलता-विफलता का पूजोपहार ग्रहण कर रही है। कवि ने अपनी

चेष्टा ही व्यंजित हो पायी है और इसी कारण रूप का उदात्तीकरण (अवलोकन) यहाँ स्पष्ट हो उठा है।

वासना के स्पर्शमात्र से विरहित महिमामय नारी-सौन्दर्य की अनवद्य प्रतिमा 'विजयिनी' है। ऐसा ज्ञात होता है कि बाणभट्ट की मानसी महाश्वेता को स्मरण कर रवीन्द्रनाथ ने विजयिनी का चित्र अंकित किया है। अच्छोदसरोवर में नहाकर सोपान पारकर तीर पर आ खड़ी हुई है सुन्दरी—

छायाखानि रक्त पदतले
च्युत वसनेर मत रहिल पड़िया;
अरण्य रहिल स्तब्ध, विस्मये मरिया।

इस रूप को कवि वासना-भोग के द्वारा बाँधना नहीं चाहते हैं। यह रूप महाविश्वसंगीत है। इस कविता में, समग्र विश्व-परिव्याप्त सौन्दर्य की घनीभूत सत्ता के सम्मुख, अनंगदेवता को हम प्रणाम करते देखते हैं। सौन्दर्य-सत्ता को अनंग देव भोग के बीच बाँध नहीं सके हैं, उसको केवल प्रणाम कर कृतार्थ हुए हैं—

सम्मुखेते आसि
थमकिया दाँडाल सहासा। मुखपाने
चाहिल निमेषहीन निश्चल नयाने
क्षणकाल तरे। परक्षणे भूमि परे
जानु पाति बसि, निर्वाक विस्मयभरे
नतशिरे, पुष्पधनु पुष्प शर भार
समर्पिल पदप्रान्ते पूजा-उपचार
तूण शून्य करि। निरस्त्र मदन पाने
चाहिला सुन्दरी शान्त प्रसन्न नयाने।

रवीन्द्रनाथ इस भाव के सम्बन्ध में कहते हैं—'सौन्दर्य को हमारी वासना से, भोग से हटाकर स्वतन्त्र रूप में उसे नहीं देखने पर उसको पूर्ण रूप से देखना नहीं होता है। उस अनिश्चित असंयत, असम्पूर्ण दृष्टि से हम जो कुछ देखते हैं, उसमें हमें तृप्ति नहीं मिलती है, तृष्णा ही बढ़ती है।'[1]

प्रवास जीवन चौधुरी का कहना है कि सौन्दर्य-बोध के साथ रवीन्द्रनाथ की यह संयम-भावना का अर्थ हम तभी समझ पाएँगे जब हम यह समझ लेंगे कि बाहर के साथ अन्तर की मैत्री की स्थापना से ही सौन्दर्य का बोध होता है और यह मैत्री तभी संभव हो सकेगी जब बाहर की किसी चीज से अपने स्वार्थ के

---

१. रवीन्द्रनाथ : साहित्य, पृ० ४७

अस्पष्ट है। 'सोनार तरी' में जो विरोध तथा वेदना दिखाई पड़ती है वह मूलत रस बोध की अस्पष्टता के कारण है।"[1]

परन्तु 'चित्रा' में यह बोध और अस्पष्ट नही रह जाता है। अब कवि के सम्मुख दो जगत् स्पष्ट हो उठे हैं—एक रूपमय विश्वजगत् दूसरा भावमय स्वप्न-जगत्। यह दोनो जगत् ही अपने स्व-पार्थक्य को लेकर कवि के सम्मुख स्पष्ट हो उठे हैं। एक जगत् मे कवि नाना प्रकार के दुख, दैन्य तथा अभाव अभियोग की अनुभूति कर रहे हैं एव दूसरे जगत् मे परिपूर्णता तथा सार्थकता की अनुभूति हो रही है—वहाँ सब दैन्य विलीन हो चुका है, समस्त अभाव मिट चुके हैं। किन्तु इस स्पष्टता मे भी कवि मन के विरोध का शमन नही हो पाया है। कवि इन दोनो पृथक् जगत् के मध्य सामजस्य स्थापित करना चाहते हैं परन्तु इनके बीच सामजस्य स्थापित नही कर पा रहे हैं। कवि जब भाव-राज्य म चले जाते हैं तब उस अन्तर के अन्त पुर से समस्त विश्वजगत् निर्वासित हो जाता है, और फिर जब विश्वजगत् म वापिस चले आते हैं, तब उस सुख स्वर्गलोक से उन्हे विदा लेनी पड़ती है। चूँकि रवीन्द्रनाथ पलायनवादी (एस्केपिस्ट) कवि नही हैं इसीलिए वास्तविक जगत् को वे तुच्छ नही समझते हैं और सुख स्वर्गलोक से उसके सामजस्य की चेष्टा करते हैं। कारण इन दोनो के सामजस्य से ही मानव की मानवता का परिचय उद्‌घाटित होता है जैसे रवीन्द्रनाथ ने स्वय कहा है—

'वास्तविक जगत् म मनुष्य का जो परिचय है वही उसकी प्रतिष्ठा है। परन्तु बाहर के इस परिचय का यदि भीतर के सत्य के साथ मिलन न हो तो उसके अस्तित्व मे एक आत्मविच्छेद घटित होता है।'[2] रवीन्द्र इन दोनो का मिलन चाहते हैं परन्तु चाहने पर भी मिलन नही हो पा रहा इसीलिए कही केवल रूप-लोक का वर्णन है तो कही भावलोक का। परन्तु इन दोनो लोको मे सामजस्य ढूँढ़ते हुए कवि ने अनुभव किया कि 'दीनता से होकर महिमा के बीच, क्षुद्र से होकर वृहत्तर के मध्य, सकीर्णता से होकर व्यापकता के बीच आत्मा के विकास द्वारा मानव का मन मुक्ति लाभ करता है, और उस आदर्शलोक मे समस्त श्रेष्ठता के बीच कवि अपने जीवन देवता को अधिष्ठित देखते हैं।'[3] परन्तु 'चित्रा' मे सामजस्य नही हो पाया है केवल कवि के रूप-जगत् मे अर्थात् सीमा म उसे बाँधने की

---

१ तपनकुमार बन्दोपाध्याय रवीन्द्र-जिज्ञासा, पृ० ३६
२ रवीन्द्रनाथ : 'धर्म'
३. तपनकुमार बन्दोपाध्याय रवीन्द्र-जिज्ञासा, पृ० ४८

—तो भी यह कहना ही पड़ेगा कि इस भाव की व्यंजना रवीन्द्रनाथ की कविता में, कामदेव के प्रतीक की सहायता से, अधिक प्रेषणीय (Communicative) हो पाया है। कामदेव चिरन्तन वसन्त के प्रतीक हैं और उस चिर-वसन्त का निरस्त्र होकर विजयिनी को प्रणाम करना विजयिनी के स्थूल देह-सौष्ठव के चित्र को एकदम ही उदात्त बना देता है पर निराला का—

नव-वसन्त कांपा पत्रों में,
देख दृगों की कोर।

—से साधारण वसन्त ऋतु का ज्ञान होता है और उसके—

मूर्छित वसन्त पत्रों पर।

—इस समाचार से वसन्त का चिर-सौन्दर्य के सम्मुख आत्मसमर्पण नहीं वरन् उसे देखकर भावावेग में मूर्छित होना ही प्रकट होता है। और आखिर के दो पद—

तरु से वृन्तच्युत फूल,
गिरे उस तरुणी के चरणों पर

—से ऐसा प्रकट होता है कि वसन्त के मूर्छित होने पर उसके देहभार से विध्वस्त वृक्ष से वृन्तच्युत होकर कुछ फूल अकस्मात् ही तरुणी के चरणों पर गिर पड़ते हैं न कि वसन्त के प्रणाम-निवेदन स्वरूप वे गिरे हैं। वास्तव में अनंग के प्रसंग को हटाकर साधारण वसन्त के प्रसंग की उत्थापना द्वारा निराला रवीन्द्र के भाव का सौन्दर्य को खो देते हैं।

इसके अतिरिक्त निराला नए शब्दों की संयोजना से अथवा रवीन्द्र के शब्दों का व्यवहार न करने से रवीन्द्र की कविता के चित्रात्मक रूप वैभव का समाहार अपनी कविता में नहीं कर पाये हैं। उदाहरणार्थ—

खड़ी दूर सारस की जोड़ी,
क्या जाने क्या क्या कहकर दोनों ने ग्रीवा मोड़ी।

अभिधात्मक चित्र के रूप-वैभव में निराला ने 'क्या जाने क्या-क्या कहकर' शब्दों की संयोजना कर उसके वास्तविक रूप-सौन्दर्य की हानि कर दी है। रवीन्द्रनाथ का यह चित्र अधिक सुन्दर तथा भावों के सम्प्रेषण में अधिक सहायक है—

कपोत दम्पति
बसि शान्त अकम्पित चम्पकेर डाले
घन चंचु चुंबनेर अवसार काले
निभृते करितेछिल विह्वल कूजन॥

वास्तव में पूरी कविता में जितने भी अभिधात्मक चित्रों का वर्णन है वे मूल

लिए प्रेम न कर हम उसे उसके लिए ही (A thing for its own sake) प्रेम करें।[1]

इस प्रकार, रवीन्द्रनाथ की 'विजयिनी' कविता की आधारभूत चिन्तनधारा के सम्बन्ध मे हम जान जाते हैं।

इसके अनुवाद मे भी निराला ने वही प्रथा अपनायी है जिस प्रथा से अनुप्रेरित उन्होने 'निरुद्देश यात्रा' का अनुवाद किया था अर्थात् अनुवाद न करके केवल कुछ भावो को ग्रहण कर अपने मौलिक भावो के साथ उसकी सयोजना करते हुए अपनी चिन्तनधारा को एक नवीन रूप दिया है। यह कविता भी सन् १९२४ को लिखी गई थी और निराला के जीवन का यह एक ऐसा समय था जबकि वे रोमान्स तथा बृहत्तर जीवनोपलब्धि के बीच मडरा रहे थे और इस आवर्त्त म फँसे हुए वे रोमान्स को ही अधिक रूप दे रहे थे। रवीन्द्र की भाँति वे स्थिरतर आत्मरति मे सौन्दर्य की अनुभूति कर स्व का विश्व मे विकास नही कर पाये थे इसीलिए जहाँ तक रवीन्द्र की सौन्दर्यानुभूति मे वासना के पुट का लेशमात्र नही वहाँ निराला की सौन्दर्यानुभूति म वासना चारो ओर छाई हुई है और उस वासना को रूप देकर ही वे शान्त नही होते हैं वरन् पादटिप्पणी लिखकर स्पष्ट भी कर देते हैं—

नग्न बाहुओं से उछालती नीर,
तरगों मे डूबे दो कुमुदों पर
हँसता था एक कलाधर

निराला ने ही इसका भाव स्पष्ट किया है—'(दिन में भी) दो कुमुद (उरोजो) को देखकर चन्द्र (मुख) हँस रहा था।' यद्यपि 'विजयिनी' कविता के समान इस कविता का अन्त भी प्रेम के उदात्तीकरण म हुआ है—

वायु सेविका-सी आकर
पोंछे युगल उरोज, बाहु, मधुराधर।
तरुणी ने सब ओर
देख, मन्द हँस, छिपा लिये उन्नत, पीन उरोज,
उठा कर शुष्क वसन का छोर।
मूर्छित वसन्त पत्रों पर,
तरु से वृन्तच्युत कुछ फल
गिरे उस तरुणी के चरणों पर।

---

१. प्रवास जीवन चौधुरी 'रवीन्द्रनाथेर सौन्दर्य दर्शन', पृ० ११

उड़िया पलितेछिल गलितनीहार
कैलासेर पाने। वहू वनगंध वहे
अकस्मात श्रान्त वायु उत्तप्त आग्रहे
लुटाय पड़ितेछिल सुदीर्घ निश्वासे
मुग्ध सरसीर वक्षे स्निग्ध बाहुपाशे।

फिर निराला ने जहाँ-जहाँ रवीन्द्र के भावों का भावानुवाद किया है वे साधारणतया ठीक नहीं हो पाये हैं और कहीं-कहीं ग़लत अर्थ भी लगा लिये हैं, जैसे रवीन्द्र के अच्छोदसरसीनीरे का अनुवाद 'क्षीण-कटि तटिनी के तट' ग़लत किया है। 'अच्छोर' का अर्थ 'क्षीण-कटि' नहीं है। फिर रवीन्द्र के वसन्त, यथा—

वसन्त नवीन
सेदिन फिरितेछिल भुवन व्यापिया
प्रथम प्रेमेर मतो काँपिया काँपिया
क्षणे क्षणे शिहरि शिहरि

—के इस प्रसंग को निराला ने वसन्त तथा वायु में बाँट कर भाव के घनत्व को कम कर दिया है जैसे—

नव वसन्त करता था वन की सैर
× × ×
काँप रही थी वायु प्रीति की प्रथम रात की
नवागता, पर प्रियतम-कर पतिता सी प्रेममयी।

फिर रवीन्द्र ने समीरण के 'प्रलाप' को 'खेल' में परिवर्तित करना उचित नहीं हुआ है। यथा—

समीरण
प्रलाप वकितेछिल अच्छायसघन
पल्लव शयन तले, मध्याह्नेर ज्योति
मूर्छित वनेर कोले,

और निराला

पर नीरव अपराजिता-सी
किरण-बालिकाएँ लहरों से
खेल रही थीं अपने ही मन से, पहरों से।

यद्यपि कहीं-कहीं अनुवाद स्वच्छ तथा सुन्दर हुआ है तथापि भाव को प्रेषणीय बनाने में सफल भी हुआ है। उदाहरणार्थ—

भाव—अर्थात् नारी के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में सहायक रूप में हैं। वे चित्र एक ऐसे वातावरण की सृष्टि करते हैं जिसमें नारी का सौन्दर्य द्विगुणित हो जाता है और वह सौन्दर्य बहुत ही सहज रूप में हमारे लिए प्रेषणीय बन जाता है। परन्तु निराला ने अधिकतर उन सब चित्रों को त्याग दिया है और इस प्रकार सौन्दर्यानुभूति के वातावरण की सृष्टि नहीं कर पाये हैं। परन्तु रवीन्द्र के वे चित्र वातावरण के लिए बहुत ही उपादेय सिद्ध हुए हैं, जैसाकि—

> चौदिके उठिते छिल मधुर रागिनी
> जले स्थले नभस्तले। सुन्दर काहिनी
> के येन रचिते छिलो छाया रौद्रकरे,
> अरण्येर सुप्ति आर पातार मर्मरे,
> वसन्तदिनेर कत स्पन्दने कम्पने
> निश्वासे उच्छ्वासे भावे आभासे गुञ्जने
> चमके झलके। येन आकाशवीणार
> रविरश्मि तन्त्रीगुलि सुरबालिकार
> चम्पक अंगुलिघाते संगीत झंकारे
> कांदिया उठिते छिल मौन स्तब्धतारे
> वेदनाय पीडिया मूर्छिया। तरुतले
> स्खलिया पडितेछिल निःशब्दे विरले
> विवश बकुलगुलि, कोकिल केवलि
> अश्रान्त गाहितेछिल, विफल काकलि
> कांदिया फिरितेछिल वनान्तर घुरे
> उदासिनी प्रतिध्वनि, छायाय अदूरे
> सरोवर-प्रान्तदेशे क्षुद्र निर्झरिणी
> कल नृत्ये बाजाइया माणिक्यकिंकिणी
> कल्लोल मिशितेछिल, तृणाञ्चित तीरे
> जलकलकलस्वरे मध्याह्न समीरे
> सारस घुमाये छिल दीर्घ ग्रीवाखानि
> भंगीभरे बाकाइया पृष्ठ लये टानि
> धूसर डानार माझे, राजहंस दल
> आकाशे बलाका बांधि सत्वर चंचल
> त्यजि कौन दूर नदी—सैकत विहार

निराला बहुत ही सफल हुए हैं। यहाँ अनुवाद का प्रश्न नहीं निराला के कवित्व का प्रश्न है और कवित्व का विषय अर्थात् लज्जाशीला नारी का वर्णन बहुत ही सफल हुआ है और उसके लिए निराला की मौलिक उद्भावनाएँ भी बहुत ही स्पष्ट हैं तथा व्यंजना में सहायक बनी हैं। यथा—

देख चतुर्दिक, सरिता में
उतरी तिर्यग्दृग, अविचल-चित।

तथा—

तरुणी ने सब ओर
देख मन्द हँस, छिपा लिए उन्नत पीन उरोज
उठाकर शुष्क वसन का छोर

—आदि वर्णन में विषयानुकूल नारी का ही रूप चित्रित हुआ है। कदाचित् इसी कारण कविता के शीर्षक 'विजयिनी' को बदल कर 'तट पर' शीर्षक के द्वारा नारी के नदी-तट पर एक साधारण रूप-सौन्दर्य का चित्र अंकित करना ही निराला को अभीष्ट था और इस कार्य में वे सफल भी हुए हैं।

ज्येष्ठ (वैशाख)

रवीन्द्रनाथ की रचनाओं की कालानुक्रमिक सूची के अनुसार तीसरी अनूदित कविता 'ज्येष्ठ' है। रवीन्द्रनाथ के 'कल्पना' काव्य-संग्रह में संगृहीत यह कविता है जिसका शीर्षक रवीन्द्रनाथ ने 'वैसाख' रखा था।

रवीन्द्र की रचनाओं की कालक्रमानुसार आलोचना करते हुए हमने यह देखा कि 'चित्रा' की कविताओं में 'सोनारतरी' के विशुद्ध हृदयावेग के ऊपर भक्ति के रंग का लेप लगा हुआ है। 'मानसमुन्दरी' मानो अब कवि-हृदय की वासना के प्रतीत में जाकर 'अन्तर्यामी' हो कवि के निगूढ व्यक्तित्व को दुःख-सुख की विचित्र अभिज्ञता के बीच से आध्यात्मिक अभिव्यक्ति तथा परम सार्थकता की ओर बढ़ाए ले जा रही है।[1] 'चित्रा' के पश्चात् 'चैताली' में हम कवि को जीवन-रस की सर्वांगीण अनुभूति में अनुप्रेरित कर्मचाञ्चल्य-स्पृहा से मुक्त देखते हैं। जीवन के सहज आनन्द तथा प्रकृति के सरल सौन्दर्य ने कवि के चित्त में रस की इस परिपूर्णता को संचित किया है। यथा—

धन्य आमि हेरितेछि आकाशेर आलो
धन्य आमि जगतेरे बासियाछि भालो।

---

१. सुकुमार सेन, बांगला साहित्येर इतिहास, तृतीय खण्ड

तीरे श्वेत शिलातले सुनील वसन
लुटाइछे एक प्रान्ते स्खलित गौरव
अनाहत;
=रक्खी साड़ी शिला-खण्ड पर
ज्यों त्यागा कोई गौरव-वर।

तथा—

जलप्रान्ते क्षुब्ध क्षुण्ण कम्पन राखिया,
सजल चरणचिह्न आँकिया आँकिया
सोपाने सोपाने, तीरे उठिला रूपसी;
× × ×
अगे अगे यौवनेर तरंग उच्छल
लावण्येर मायामन्त्रे स्थिर अचंचल
बन्दी हये आछे;
=वियोग से नदी-हृदय कम्पित कर,
तट पर सजल-चरण रेखाएँ निज अंकित कर,
केश-भार जल-सिक्त चली वह धीरे-धीरे
शिला खण्ड की ओर,
× × ×
अंग-अंग में नव-यौवन उच्छृंखल,
किन्तु बाँधा लावण्य-पाश से
नम्र सहास अचंचल।

तथा—

सेवकेर मतो
सिक्त तनु मुछि दिल आतप्त अंचले
=वायु सेविका-सी आकर
पोंछे युगल उरोज, बाहु, मधुराधर।

इसके अतिरिक्त निराला की कुछ मौलिक उद्‌भावनाएँ सराहनीय हैं जैसे नारी का अपने साथ साड़ी लाना—

साथ वसन्ती रंग की, चुनी हुई, साड़ी लाई थी।

निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि रवीन्द्र की विजयिनी कविता से भाव ग्रहण करने पर भी निराला की नारी विजयिनी की तरह विश्व-सौन्दर्य का प्रतीक नहीं वरन् वह एक साधारण सुन्दरी लज्जाशीला नारी है और उसके वर्णन में

ज्वलितेछे सम्मुखे तोमार
लोलुप चिताग्निशिखा लेहि लेहि विराट अम्बर—
निखिलेर परित्यक्त मृत स्तूप विगत वत्सर
करि भस्मसार
चिता ज्वले सम्मुखे तोमार ॥
हे वैरागी करो शान्ति पाठ।
उदार उदास कण्ठ याक छुटे दक्षिणे ओ वामे—
याक नदी पार हये, याक चलि ग्राम हते ग्रामे,
पूर्ण करि माठ।
हे वैरागी, करो शान्ति पाठ ॥

यहाँ पर भी निराला रवीन्द्र की दूसरी कविताओं के अनुवाद के समान केवल कुछ भावों का चयन कर अपनी कविता में उसे स्थान दे अपनी मौलिक चिन्तनधारा का विकास करते हैं और इस कविता में वे पूर्णरूप से अपनी चिन्तन-धारा की अभिव्यक्ति में सफल हुए हैं। सम्पूर्ण कविता एक अखण्ड इकाई (whole) रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित हुई है और रवीन्द्र के भाव की संयोजना द्वारा एक अखण्ड मौलिक भाव प्रस्फुटित हो उठा है।

निराला के जीवन की दो मौलिक चिन्तनधाराओं का समन्वित रूप है यह कविता। कवि-मन का विद्रोह तथा विवेकानन्द के कर्ममय अद्वैतवाद को रूप मिला है इस कविता में। भूमिकारूप में कविता का पहला पद निराला की मौलिक रचना है—

ज्येष्ठ ! क्रूरता-कर्कशता के ज्येष्ठ ! सृष्टि के आदि !
वर्ष के उज्ज्वल प्रथम प्रकाश !
अन्त ! सृष्टि के जीवन के हे अन्त ! विश्व के व्याधि !
चराचर के हे निर्दय त्रास !
सृष्टिभर के व्याकुल आह्वान !—अचल विश्वास !
सृष्टिभर के शंकित अवसान !—दीर्घ निश्वास
देते हैं हम तुम्हें प्रेम-आमन्त्रण,
आओ जीवन-शमन, बन्धु, जीवन-धन !

इस प्रकार कवि विद्रोह की भावना से अनुप्रेरित हो संसार में शान्ति लाना चाहते हैं। कर्मवाद ही शान्ति का द्योतक है और इसी भाव का सम्प्रेषण कविता के अन्त में हुआ है जो निराला की अपनी मौलिक देन है।

'चैतालि' में सुकुमारसेन के अनुसार कवि के दृष्टिकोण के दो रूपों की उपलब्धि होती है। एक तात्त्विक, दूसरा रोमाण्टिक और 'कल्पना' की अधिकांश कविताओं में रोमाण्टिक दृष्टिकोण का भाव प्रसार ही अधिक परिलक्षित होता है। परन्तु यह साधारण रोमाण्टिक दृष्टिकोण नहीं है कारण इस रोमाण्टिक दृष्टि-माधुर्य का अर्थ है—प्रत्यक्ष इन्द्रियानुभूति से निर्लिप्त होना—जो भाव हमें रवीन्द्र की कविताओं में सहज ही मिल जाता है। धीरे-धीरे 'चैतालि' के प्रशान्त परिवेश के अवसान पर मुक्ति का जो शान्तरस कविहृदय को आप्लुत किये हुए था वह जीवन की नूतनतर साधना के रुद्र आह्वान से खतम हो जाता है।[1] सुकुमारसेन कहते हैं कि यह साधना नवनियुक्त भृत्य का श्रमदुर्भर कर्म-चाचल्य नहीं, विश्वस्त सेवक का लीलासाहचर्य है।[2] 'वर्ष शेष' तथा 'वैशाख' के उन्मादनृत्य में कविहृदय ने सर्वविध जड़ता तथा संस्कार से मुक्त होने के दुर्जय आह्वान को स्वीकार किया है।

छाडो डाक, हे रुद्र वैशाख।
भागिया मध्याह्न तन्द्रा जागि उठि बाहिरिब द्वारे,
चेये रब प्राणीशून्य दग्धतृण दिगन्तेर पारे
निस्तब्ध निर्वाक।
हे भैरव हे रुद्र वैशाख॥

रुद्र एवं गम्भीर रूप का प्रकृति-वर्णन रवीन्द्र-काव्य में हमें पहले-पहल यहीं दीख पड़ता है। वर्णन में चित्र तथा संगीत का समन्वय दर्शनीय विशेषता है—

हे भैरव, हे वैशाख।
धुलाय धूसर रुक्ष उड्डीन पिंगल जटाजाल,
तप: क्लिष्ट तप्त तनु, मुखे तुलि पिनाक कराल
कारे दाओ डाक,
हे भैरव हे रुद्र विशाख॥

प्रकृति के इस रुद्ररूप के सम्बन्ध में एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अमियकुमार सेन कहते हैं कि कवि प्रकृति के इस रूप को अधिक देर तक सह नहीं पाते हैं। दूर दिशा के घने पुंजमेघ की दीर्घ छाया को कवि 'धरणीर स्निग्ध गन्धोच्छ्वास' से कोमल बना देते हैं और वैशाख से अनुरोध करते हैं कि वह अपने शान्तवारि के द्वारा होमाग्निशिखा को निर्वापित कर दे।[3]

---

१. सुकुमारसेन 'बांगला साहित्येर इतिहास, तृतीय खण्ड
२ वही, पृ० २११
३ अमियकुमार सेन, प्रकृतिर कवि रवीन्द्रनाथ, पृ० १२६

वर्ष के उज्ज्वल प्रथम प्रकाश

ग्रीष्म ऋतु से वर्ष का प्रारम्भ मानने पर ज्येष्ठ वर्ष का प्रथम महीना होता है कारण वैसाख मे वसन्त छाया रहता है गरमी नही दिखाई पड़ती।

निष्कर्ष मे हम कह सकते है कि निराला इस कविता मे रवीन्द्र से भाव-ग्रहण करने मे सम्पूर्ण रूप से सफल हुए हैं और रवीन्द्र के प्रभाव को इन्होने अपनी मौलिक चिन्तनधारा की सहायता से रस रूप मे आत्मसात् कर लिया है। यही कारण है कि यह कविता निराला की श्रेष्ठ कविताओ मे अन्यतम सिद्ध होती है।

विवेकानन्द की अनूदित कविताएँ

विवेकानन्द की कविताओ का अनुवाद करते हुए निराला ने रवीन्द्र की कविताओ के तथाकथित अनुवाद की भांति केवल कुछ भावो का चयन कर मौलिक विचारो का प्रतिपादन नहीं किया है वरन् अक्षरश: अनुवाद किया है। विवेकानन्द के प्रभाव ने ही निराला को इन कविताओ के अनुवाद के लिए प्रेरित किया था। डॉ० रामविलास शर्मा इस सम्बन्ध मे लिखते हैं कि 'परिमल' की रहस्य-वादी कविताओं को एक साथ पढ़ने पर पता लगता है कि रवीन्द्र से अधिक कवि पर विवेकानन्द का प्रभाव है। इष्टदेव की मातृ रूप मे कल्पना को स्वामी विवेकानन्द ने ही लोकप्रिय बनाया था। 'देवी तुम्हें मैं क्या दूँ' 'एक बार बस और नाच तू श्यामा' आदि रचनाओ मे यह प्रभाव स्पष्ट है। इन कविताओ की विशेषता यह है कि भावुकता के आसुओ के बदले जीवन की दारुण व्यथा को गहरे रंगो मे अंकित किया गया है और माता के रूप मे इष्टदेवी आनन्द से अधिक शक्ति की देवी बन गई है।[1]

सन् २४ मे निराला जी ने स्वामी विवेकानन्द की कई रचनाओ का अनुवाद किया था। डॉ० रामविलास शर्मा का कहना है कि सरल भाषा के प्रवाह मे वे मूल बंगला के ओज को भलीभांति सुरक्षित रख सके हैं। इन कविताओं मे शृंगार से विरक्ति और ध्वंस से प्रेम प्रकट किया गया है। छायावादी कवियो ने प्रलयकर रुद्र के ताण्डव के जो गीत गाये हैं, उनका श्रीगणेश 'नाचे उस पर श्यामा' आदि कविताओ से होता है।[2] निराला ने सर्वप्रथम विवेकानन्द की 'गाइ गीत शुनाते तोमाय' का अनुवाद किया था। अक्षरशः अनुवाद के होने पर विवेकानन्द की चिन्तनधारा के सम्बन्ध मे आलोचना की आवश्यकता और नहीं रह गई है क्योंकि मूल भावधारा मे कहीं भी परिवर्तन नहीं हुआ और न हो

१. रामविलास शर्मा : निराला, पृ० ६६
२. रामविलास शर्मा : निराला, पृ० ६६

कर्मयोग—की विमल पताका और मोह का ग्रस्त,
सत्य जीवन के फल का त्याग।
मृत्यु मे तृष्णा में अभिराम एक उपदेश,
कर्ममय, जटिल, तृप्त, निष्काम; देव, निश्शेष !
तुम हो वज्र-कठोर किन्तु देवव्रत,
होता है ससार अतः मस्तक—नत।

और इस मौलिक भाव को स्पष्ट करने के लिए निराला ने रवीन्द्र के 'वैशाख' से भावो का चयन किया जो कविता के वातावरण में सुन्दर रूप से समा गया है। और उनका अनुवाद भी सुन्दर हुआ है यद्यपि यह अनुवाद अक्षरशः शब्दानुवाद नहीं है जैसे—

धुलाय धूसर रक्ष उड्डीन पिंगल जटाजाल,
तप: क्लिष्ट तप्त तनु, मुखे तुलि विषाण भयाल,
कारे दाओ डाक,
=घोर जटा पिंगल मंगलमय देव ! योगिजन सिद्ध।
धूलि धूसरित, सदा निष्काम !
उग्र ! लपट यह लू की है या शूल—करोगे विद्ध
उसे जो करता हो आराम।

तथा—

ज्वलितेछे सम्मुखे तोमार
लोलुप चितामिशिखा लेहि लेहि विराट अम्बर
निखिलेर परित्यक्त मृत स्तूप विगत वत्सर
करि भस्मसार
=उगलते श्वास धरा आकाश;
पड़ा चिता पर जलता मृत गत वर्ष प्रसिद्ध असार,

तथा—तोमार गेरुआ वस्त्रांचल
दाओ पाति नभस्तले-विशाल वैराग्ये आवरिया
=शाम हो गई, फैलाओ वह पीत गेरुआ वस्त्र,
रजोगुण का वह अनुपम राग,

तो हम देखते हैं कि मूल भावधारा की अभिव्यक्ति में चयन किये गये भाव बहुत ही सफल रूप से सयोजित हुए हैं। इसके अतिरिक्त वर्ष को कर्ममय जीवन का प्रतीक मानने के कारण निराला ने "वैशाख" शीर्षक को बदल कर "ज्येष्ठ" कर लिया है ; कारण ज्येष्ठ है—

गलता है हिम-शृंग
टपकता गुहा में,
घोर नाद करता हुआ
टूट पड़ता है गिरि,
स्वप्न-समजस-विम्ब जल मे मिल जाता है।

इसके अतिरिक्त निराला ने मूल कविता के कुछ शब्दो मे हेर फेर कर तथा कुछ नवीन वाक्यो का संयोजन कर भाव को और भी अधिक तीव्र बना दिया है। जैसे—

शियरे दाड़ाय तुमि रेते
निर्वाक् आनन, छल छल आंखि
चाह मम मुखपाने।

और निराला का अनुवाद है—

किन्तु निशाकाल मे
देखता हूँ,
शय्या शिरोभाग मे खड़े तुम चुपचाप,
छल छल आँखें,
हेरते हो मेरे मुख की ओर एक-टक।

यह अनुवाद मूल से अधिक सुन्दर है। यद्यपि एक स्थान पर निराला की, कुछ वाक्यो को कविता मे फिर से दुहराकर अर्थ को सरल करने की चेष्टा खराब नही तो बेकार अवश्य रही है। जहाँ विवेकानन्द केवल एक वाक्य को—

महा अन्धकार फेरे अन्धकार-बुके

—दुहराते है वहाँ निराला पूरे भाव को दुहरा जाते है—

प्रलय के समय मे जब
ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता-लय
होता है अगणन ब्रह्माण्ड-ग्रास करके, यह
ध्वस्त होता ससार,
पार कर जाता है तर्क की सीमा को
नहीं रह जाता कुछ सूर्य-चन्द्र-तारा-गृह—

यद्यपि हम इसे दोष नही कह सकते तथापि इसको हम गुण के अन्तर्गत भी नहीं रख सकते।

निष्कर्ष मे हम कह सकते है कि उपर्युक्त सामान्य त्रुटि-विच्युति के रहने पर भी यह अनुवाद सर्वांगीण दृष्टि से सुन्दर है।

निराला ने किसी नए भाव की सयोजना की बात ही सोची है। अनुवाद की दृष्टि से यह एक सफल अनूदित कविता है जहाँ शीर्षक से लेकर अन्त तक मूल की स्थिति उसी रूप में वर्तमान है। विवेकानन्द की कठिन चिन्तनधारा समन्वित कविता के सुष्ठु अनुवाद से निराला के गम्भीर बंगला-ज्ञान का पता चलता है। उदाहरणार्थ—

मेरुतटे हिमानी पर्वत,
योजन योजन से विस्तार ;
अभ्रभेदी निरभ्र आकाशे
शत उठे चूड़ा तार।
झकमकि ज्वले हिमशिला
शत शत बिजलि-प्रकाश।
उत्तर अयने विवस्वान,
एकीभूत सहस्र किरण,
कोटि वज्रसम करधारा
ढाले यबे ताहार ऊपर,
शृंगे शृंगे मूर्च्छित भास्कर,
गने चूड़ा शिखर गह्वर,
विकट निनादे खसे पड़े गिरिवर,
स्वप्नसम जले जाय मिले।[1]

=योजनो तक फैला हुआ
हिम से आच्छादित
मेरु तट पर है महागिरि
अभ्रभेदी बहु शृंग
अभ्रहीन नभ में उठे,
दृष्टि झुलसती हुई हिम की शिलाएं वे,
विद्युत-विकास से है शतगुण प्रखर ज्योति ;
उत्तर अयन में उस
एकीभूत कर की सहस्र ज्योति-रेखाएँ
कोटि-वज्र-सम-खर-कर-धारा जब ढालती हैं,
एक एक शृंग पर
मूर्च्छित हुए- से-भुवन-भास्कर हैं दीखते,

1 विवेकानन्द : वीरवाणी, पृ० ४०

तारों की कोमल झंकार
ताल-ताल पर चली बढ़ाती
ललित वासना का संसार।

इसके अतिरिक्त, इस स्पष्टीकरण की प्रक्रिया में उन्होंने अपनी ओर से कई वाक्यों की सयोजना कविता में की है, जैसे—

१ मलय वनज-वन-यौवन हास
२. वहक वहक वह कथा रहीं भू-नभ के छोर।
३ (बढ़ा हाथ दोनों मिलने को)
चलती प्रकट प्रेम अभिसार
४. (किन्तु कलाधर को ही देता)
सारा विश्व प्रेम सम्मान
५. 'श्यामयी' कह कह चिल्लाते,
माँ, दुनिया का देखा ढोंग।
तथा ६ (नाचे उस पर श्यामा), घन रण
में लेकर निज भीम कृपाण।

निष्कर्ष में हम कह सकते है कि निराला के श्रेष्ठतम अनुवादों में इस कविता को स्थान मिलेगा। अनुवाद करते हुए कविता में छिपे हुए सौन्दर्य का उद्घाटन करने में कवि निराला समर्थ हुए हैं और केवल समर्थ ही नहीं, कहीं-कहीं अधिक कवित्वमय होकर विवेकानन्द से आगे भी बढ़ गए हैं।

'अनामिका' (१९३७) में जो तीसरी विवेकानन्द की अनूदित कविता है उसका शीर्षक है 'सखा के प्रति'। यह अनुवाद भी विवेकानन्द की अन्य अनूदित कविताओं के समान सुन्दर तथा स्वच्छ है। विवेकानन्द की कठिन भाषा का सुन्दर तथा प्रांजल अनुवाद सत्य ही प्रशसनीय है। उदाहरणार्थ—

पक्षहीन शोन विहगम, ए ये नहे पथ पालाबार
बारंबार पाइछ आघात, केन कर वृथाय उद्यम ?
छाड़ विद्या जप यज्ञ बल, स्वार्थहीन प्रेम ये सम्बल,
देख शिक्षा देय पतंगम अग्निशिखा करि आलिंगन।
रूपमुग्ध अन्ध कीटाधम, प्रेममत्त तोमार हृदय
हे प्रेमिक, स्वार्थ मलिनता अग्निकुण्डे कर विसर्जन।
==पक्षविहीन हो रहे हो तुम, सुनो वहाँ के वियोग सकल।
नहीं कहीं उड़ने का पथ है, कहाँ भाग जाओगे तुम ?
बार बार आघात पा रहे—व्यर्थ कर रहे हो उद्यम।

विवेकानन्द की दूसरी कविता 'नाचुक ताहाते श्यामा' का अनुवाद भी सुन्दर हुआ है। इस कविता मे कोमल तथा कठोर भाव के चित्रो को पास-पास दिखाया गया है। कोमलता प्रत्येक को प्रिय है, यह भी अभिव्यक्त है—' मन चाय हासिर हिन्दोल ' इत्यादि। कठोर भाव को कोई नही चाहता है, सभी उससे दूर रहना चाहते हैं। किन्तु कोमल-प्राण व्यक्ति यदि दारिद्रय, दु ख, रोग, महामारी इत्यादि का देख कर भय से अभिभूत हो जाते है, फिर वह कोमलता यथार्थ दृष्टि से दुर्बलता तथा कापुरुषता है, उसको हटाकर सर्वदा मृत्यु को आलिंगन करने के लिए प्रस्तुत रहना ही वीरत्व तथा मनुष्यत्व है एव इस प्रकार के कठोर भावुक के हृदय पर श्यामा नृत्य करती है, यही यहाँ वर्णित है।

निराला ने अनुवाद करते हुए इसी भाव को सुन्दर रूप स व्यजित किया है और स्थान-स्थान पर मूल से अधिक कवित्वमय भाव को प्रकट किया है। उदाहरणार्थ—

भ्रमर चचल, कत या कमल दोले।
=चल-शतदल पर भ्रमर विहार।

नि सन्देह निराला का यह अनुवाद अधिक कवित्वमय है। कवित्वमय का और एक उदाहरण—

स्वरमय पत्रनिचय, लुकाय पाताय, शुनाय सोहागवाणी।
=स्वरमय किसलय, निलय विहगों
के बजते सुहाग के तार॥

इसके अतिरिक्त विवेकानन्द के भावो को निराला नूतन शब्दो म सयोजित कर उसका अपूर्व स्पष्टीकरण करन म समर्थ हुए हैं। उदाहरणार्थ—

वर्णखेला धरातल छाय,
राग परिचय भावराशि जेगे उठे।
=धरा-अधर धारण करते हैं,—
रग के रागों के आकार
देख देख भावुक जन मन मे
जगते कितने भाव उदार।

और इस स्पष्टीकरण की प्रक्रिया मे निराला कही-कही विवेकानन्द स आगे भी बढ़ गए हैं। जैसे—

श्रुतिपथे वीणार झकार,
वासना विस्तार, राग ताल मान लये।
बजती है श्रुति पथ मे वीणा,

रइल यखन केवल सुखेर तुण्ठन—इ
तखन केन विस्मयेर एइ कुण्ठने
काल-अकालेर बाद्य-विचारे चुप, प्रिय ?[१]

सुधाकर द्वारा अनूदित निराला की एक गद्य-कविता के कुछ अंश का अनुवाद भी नीचे प्रस्तुत किया जाता है :

आज ठण्डक अधिक है।
बाहर ओले पड़ चुके हैं,
एक हफ्ते पहले पाला पड़ा था—
अरहर कूल-की कूल मर चुकी थी,
हवा हाड़ तक बेध जाती है,
गेहूँ के पेड़ ऐंठे खड़े हैं,
खेतिहारों में जान नहीं
मनमारे दरवाजे कौड़े ताप रहे हैं
एक दूसरे से गिरे गले बातें करते हुए,
कुहरा छाया हुआ।

इसका बंगला-अनुवाद है—

आज ठाण्डा किछु बेशि
बाइरे पड़ेछे शिल
हप्ता खानेक आगे झरेछे बरफ
अड़रेर कूल के कूल गेछे मरे
हाओया हाड़ेर भितर याच्छे बिंधे
गमेर धारा तेबड़े रयेछे खाड़ा
किसानदेर फुर्ति नेइ मने
मनमारा-दरजाय आगुन पोयाच्छे
ए ओर साथे निचुगलाय कइछे कथा
छेयेछे कुयाशा।[२]

(३) निराला की बंगला-कविताएं

निराला अपने प्रारम्भिक काल में बंगला-भाषा में कविताएँ रचा करते थे जिसका प्रमाण उनका एक दोहा है—

१. शांतिरंजन बन्द्योपाध्याय : आधुनिक भारतीय साहित्य, पृ० ५७
२. वहीं : पृ० ५८

जड़-समेत उखाड़कर, हर
बला पथ की साफ करके ।
शोर से आ मिला सागर,
उठ रहे हैं कृष्ण नभ को
स्पर्श करने के लिए द्रुत.

अनुवाद की सुन्दरता बंगला के प्रख्यात कवि सत्येन्द्रनाथदत्त के अनुवाद से तुलना करने पर और भी स्पष्ट हो जाती है —

निःशेषे मिलेछे तारादल, मेघ एसे आवरिछे मेघ
स्पन्दित, ध्वनित अन्धकार, गरजिछे घूर्ण्यवायुवेग !
लक्ष लक्ष उन्माद पराण बहिरास वन्दिशाला हते,
महावृक्ष समूल उपाड़ि फुत्कार उड़ाये चले पथे ।
समुद्र संग्रामे दिल हाना, उठे ढेउ गिरिचूड़ा जिनि
नभस्तल परशिते चाय !

(२) निराला की कविताओं का बंगला-अनुवाद

निराला के अनुवादों की आलोचना के उपरान्त निराला की कविताओं के बंगला-अनुवाद का उल्लेख कर देना यहाँ अनुचित न होगा । अनुवाद साधारणतया लेखक मूल की भावनाओं से प्रभावित होकर ही करता है । परन्तु निराला जहाँ बंगला से प्रभावित हुए वे वहा बंगला को भी उन्होंने प्रभावित किया है इसीलिए उनकी कविताओं का अनुवाद हमें बंगला-भाषा में प्राप्त होता है । सुधाकर चट्टोपाध्याय द्वारा अनूदित कविताओं के कुछ अंश नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

कब से मैं पथ देख रही, प्रिय
और न तुम्हारे रेख रही, प्रिय ।
तोड़ दिये जब सब अवगुंठन
रहा एक केवल सुख लुण्ठन
तब क्यों इतना विस्मय कुण्ठन ?
असमय-समय न करो सखी, प्रिय ?

इसका बंगला-अनुवाद—

कबे थेके पथ चेये आर काल गुणे
बसेइ आछि तोमार लागि हाय प्रिय ।
टूटल वसन सकल अवगुण्ठन-इ

रइल यखन केवल मुखेर गुण्ठन—इ
तखन केन विस्मयेर एइ कुण्ठने
काल-अकालेर बाछ-विचारे चुप, प्रिय ?[1]

सुधाकर द्वारा अनूदित निराला की एक गद्य-कविता के कुछ अंश का अनुवाद भी नीचे प्रस्तुत किया जाता है :

आज ठण्डक अधिक है।
बाहर ओले पड़ चुके हैं,
एक हफ्ते पहले पाला पड़ा था—
अरहर फूल-की फूल मर चुकी थी,
हवा हाड़ तक बेध जाती है,
गेहूं के पेड ऐंठे खड़े हैं,
खेतिहारों में जान नहीं
मनमारे दरवाजे कौड़े ताप रहे हैं
एक दूसरे से गिरे गले बातें करते हुए,
कुहरा छाया हुआ।

इसका बंगला-अनुवाद है—

आज ठाण्डा किछु बेशि
बाइरे पड़ेछे शिल
हप्ता खानेक आगे झरेछे बरफ
अड़रेर फूल के फूल गेछे मरे
हाओया हाड़ेर भितर याच्छे बिंधे
गमेर चारा तेजे रयेछे खाड़ा
किसानदेर फुर्ति नेइ मने
मनमारा-दरजाय आगुन पोयाच्छे
ए ओर साथे निचुगलाय कइछे कथा
छेयेछे कुयाशा।[2]

(३) निराला की बंगला-कविताएं

निराला अपने प्रारम्भिक काल में बंगला-भाषा में कविताएं रचा करते थे जिसका प्रमाण उनका एक दोहा है—

---

१. शांतिरंजन बन्द्योपाध्याय : आधुनिक भारतीय साहित्य, पृ० ५७
२. वही : पृ० ५८

जड समेत उखाडकर, हर
मला पथ को साफ करके ।
ज़ोर से आ मिला सागर,
उठ रहे हैं तृष्ण नभ को
स्पर्श करने के लिए द्रुत,

अनुवाद की सुन्दरता बंगला के प्रख्यात कवि सत्येन्द्रनाथदत्त के अनुवाद से तुलना करने पर और भी स्पष्ट हो जाती है —

नि शेषे निबेछे तारादल, मेघ एसे आवरिछे मेघ
स्पन्दित, ध्वनित अन्धकार, गरजिछे घूर्णवायुवेग !
लक्ष लक्ष उन्माद पराण बहिगत बन्दिशाला हते,
महावृक्ष समूल उपाड़ि फुत्कार उडाये चले पथे ।
समुद्र सग्रामे दिल हाना, उठे बेउ गिरिचूडा जिनि
नभस्तल परशिते चाय !

(२) निराला की कविताओं का बंगला-अनुवाद

निराला के अनुवादो की आलोचना के उपरान्त निराला की कविताओ के बंगला-अनुवाद का उल्लेख कर देना यहाँ अनुचित न होगा । अनुवाद साधारणतया लेखक मूल की भावनाओं से प्रभावित होकर ही करता है । परन्तु निराला जहाँ बंगला से प्रभावित हुए थे वहा बंगला को भी उन्होने प्रभावित किया है इसीलिए उनकी कविताओ का अनुवाद हमे बंगला-भाषा म प्राप्त होता है । सुधाकर चट्टोपाध्याय द्वारा अनूदित कविताओ के कुछ अश नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

कब से मैं पथ देख रही, प्रिय
और न तुम्हारे रेख रही, प्रिय ।
तोड दिये जब सब अवगुंठन
रहा एक केवल मुख लुण्ठन
तब क्यों इतना विस्मय कुण्ठन ?
असमय-समय न करो खडी, प्रिय ?

इसका बंगला-अनुवाद—

कबे थेके पथ चेये आर काल गुणे
बसेइ आछि तोमार लागि हाय प्रिय ।
टुटल यखन सकल अवगुण्ठन-इ

रइल यखन केवल सुखेर लुण्ठन—इ
तखन केन विस्मयेर एइ कुण्ठने
काल-अकालेर बाछ-विचारें चुप, प्रिय ?[1]

सुधाकर द्वारा अनूदित निराला की एक गद्य-कविता के कुछ अंश का अनुवाद भी नीचे प्रस्तुत किया जाता है :

आज ठण्डक अधिक है।
बाहर ओले पड़ चुके हैं,
एक हफ्ते पहले पाला पडा था—
अड़हर फूल-की फूल भर चुकी थी,
हवा हाड़ तक बेध आती है,
गेहूँ के पेड़ ऍंठे खड़े हैं,
खेतिहारों मे जान नहीं
मनमारे दरवाजे कौड़े ताप रहे हैं
एक दूसरे से गिरे गले बातें करते हुए,
कुहरा छाया हुआ।

इसका बंगला-अनुवाद है—

आज ठाण्डा किछु बेशि
बाइरे पड़ेछे शिल
हप्ता खानेक आगे झरेछे बरफ
अड़रेर फूल के फूल गेछे मरे
हाओया हाड़ेर भितर यान्छे बिंधे
गमेर चारा तेवड़े रयेछे खाड़ा
किसानदेर फुर्ति नेइ मने
मनमारा-दरजाय आगुन पोयाच्छे
ए ओर साथे निचुगलाय कइछे कथा
छेयेछे कुयाशा।[2]

(३) निराला की बंगला-कविताएं

निराला अपने प्रारम्भिक काल मे बंगला-भाषा मे कविताएँ रचा करते थे जिसका प्रमाण उनका एक दोहा है—

---

१. शांतिरंजन बन्द्योपाध्याय : आधुनिक भारतीय साहित्य, पृ० ५७
२. वही : पृ० ५८

जड़-समेत उखाड़कर, हर
चला पथ को साफ करके।
शोर से आ मिला सागर,
उठ रहे हैं कृष्ण नभ को
स्पर्श करने के लिए द्रुत,

अनुवाद की सुन्दरता बंगला के प्रख्यात कवि सत्येन्द्रनाथदत्त के अनुवाद से तुलना करने पर और भी स्पष्ट हो जाती है—

निःशेषे निबेछे तारावल, मेघ एसे आवरिछे मेघ
स्पन्दित, ध्वनित अन्धकार, गरजिछे घूर्ण्यवायुवेग।
लक्ष-लक्ष उन्माद पराण बहिगत बन्दिशाला हते,
महावृक्ष समूल उपाड़ि फुत्कार उड़ाये चले पथे।
समुद्र संग्रामे दिल हाना, उठे हेउ गिरिचूड़ा जिनि
नभस्तल परशिते चाय।

(२) निराला की कविताओं का बंगला-अनुवाद

निराला के अनुवादों की आलोचना के उपरान्त निराला की कविताओं के बंगला-अनुवाद का उल्लेख कर देना यहाँ अनुचित न होगा। अनुवाद साधारणतया लेखक मूल की भावनाओं से प्रभावित होकर ही करता है। परन्तु निराला जहाँ बंगला से प्रभावित हुए थे वहाँ बंगला को भी उन्होंने प्रभावित किया है इसीलिए उनकी कविताओं का अनुवाद हमें बंगला-भाषा में प्राप्त होता है। सुधाकर चट्टोपाध्याय द्वारा अनूदित कविताओं के कुछ अंश नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

कब से मैं पथ देख रही, प्रिय
और न तुम्हारे रेख रही, प्रिय।
तोड़ दिये अब सब अवगुंठन
रहा एक केवल सुख लुण्ठन
अब क्यों इतना विस्मय कुण्ठन?
असमय-समय न करो लड़ी, प्रिय?

इसका बंगला-अनुवाद—

कबे थेके पथ चेये आर काल गुणे
बसेइ आछि तोमार लागि हाय प्रिय।
टूटल यखन सकल अवगुण्ठन-इ

सहायक ग्रन्थों की सूची

हिन्दी

ग्रन्थकार	ग्रन्थ	प्रकाशक
१. केदारनाथसिंह	कल्पना और छायावाद	
२. गंगाप्रसाद पाण्डेय	महाप्राण निराला	साहित्य संसार, प्रथमावृत्ति, सं० २००६
३. गिरीशचन्द्र तिवारी	कवि निराला और उनका काव्य-साहित्य	साहित्य भवन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, २०१३ वि०
४. गुलाबराय	सिद्धान्त और अध्ययन	प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली
५. धीरेन्द्र वर्मा (सं०)	साहित्य कोष	ज्ञान मण्डल लि०, बनारस
६. नगेन्द्र	आधुनिक हिन्दी-कविता की मुख्य प्रवृत्तियां	गौतम बुक डिपो, दिल्ली, प्रथम प्रकाशन सन् १९५१
७. नामवरसिंह	छायावाद	सरस्वती प्रेस, बनारस
८. 'निराला' सूर्यकान्त त्रिपाठी	परिमल	गंगा ग्रंथागार, लखनऊ
९. 'निराला' सूर्यकान्त त्रिपाठी	अनामिका	भारती भण्डार, इलाहाबाद
१०. 'निराला' सूर्यकान्त त्रिपाठी	गीतिका	भारती भण्डार, इलाहाबाद
११. 'निराला' सूर्यकान्त त्रिपाठी	तुलसीदास	भारती भण्डार, इलाहाबाद
१२. 'निराला' सूर्यकान्त त्रिपाठी	कुकुरमुत्ता	किताब महल, इलाहाबाद
१३. 'निराला' सूर्यकान्त त्रिपाठी	नए पत्ते	
१४. 'निराला' सूर्यकान्त त्रिपाठी	बेला	
१५. 'निराला' सूर्यकान्त त्रिपाठी	अपरा	साहित्यकार-संसद्, प्रयाग

मा उसको कहती है रानी
आदर से, जैसा है नाम;
लेकिन उसका उल्टा रूप,
चेचक के दाग, काली, नक-चिप्टी,
गंजा सर, एक आंख कानी।

जैसाकि हम बता चुके है कि ये पैरोडियाँ निकृष्ट कोटि की कलागत कृत्रिमता को प्रदर्शित नही करती हैं वरन् निराला की विद्रोही भावना ने हमारी सामाजिक कुरीतियो पर व्यग्य-प्रहार करना चाहा अत: फलस्वरूप इस प्रकार की कविताएँ उन्होने लिखी जहाँ हृदय की व्यथा व्यग्य मे परिणत हो गई हैं। यही इन पैरोडियो का रूप है।

३४. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय	महाकवि निराला—काव्य, कला और कृतियां	
३५. शम्भुनाथसिंह	छायावाद युग	सरस्वती मन्दिर, बनारस
३६. शिवप्रसादसिंह	विद्यापति	
३७ हजारी प्रसाद द्विवेदी	हिन्दी-साहित्य	अतर चन्द कपूर एण्ड सन्स दिल्ली
३८ हजारी प्रसाद	हिन्दी साहित्य की भूमिका	हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, चतुर्थ संस्करण

बंगला

३६ अमियकुमार सेन	प्रकृतिर कवि रवीन्द्रनाथ	विश्वभारती ग्रंथालय, कलकत्ता
४०. अमूल्यधन मुखोपाध्याय	बांग्ला छंदेर मूलसूत्र	
४१. चारुचन्द्र बन्द्योपाध्याय	रवि-रश्मि (द्वितीय खंड)	ए० मुखर्जी एण्ड कं०, कलकत्ता
४२. तपनकुमार बन्द्योपाध्याय	रवीन्द्र-जिज्ञासा	
४३. धूर्जटिप्रसाद मुखोपाध्याय	वक्तव्य	विद्योदय लाइब्रेरी
४४. प्रवास जीवन चौधरी	रवीन्द्रनाथेर सौन्दर्य दर्शन	ए मुखर्जी एण्ड कं०, कलकत्ता
४५. प्रमथनाथ बिशी	रवीन्द्र काव्य प्रवाह (द्वितीय खण्ड)	मित्र एण्ड घोष, कलकत्ता
४६. प्रमथनाथ बिशी	नेहरू-व्यक्ति तथा व्यक्तित्व	
४७. बुद्धदेव बसु (सम्पादक)	आधुनिक बांग्ला कविता	एम० सि० सरकार एण्ड सन्स लिमिटेड, कलकत्ता
४८ मोहित लाल मजुमदार	साहित्य विचार	
४६ रवीन्द्रनाथ टाकुर	गीतांजलि	विश्वभारती ग्रंथालय, नूतन संस्करण, १३५१ बंगाब्द।
५०. रवीन्द्रनाथ टाकुर	सचयिता	

ग्रन्थकार	ग्रन्थ	प्रकाशक
१६ 'निराला' सूर्यकान्त त्रिपाठी	गीत-गुंज	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस
१७ 'निराला' सूर्यकान्त त्रिपाठी	आराधना	साहित्यकार-संसद् प्रयाग
१८. 'निराला' सूर्यकान्त त्रिपाठी	अणिमा	युग मन्दिर, उन्नाव
१९ 'निराला' सूर्यकान्त त्रिपाठी	रवीन्द्र कविता कानन	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस
२० 'निराला' सूर्यकान्त त्रिपाठी	चयन	कल्याण दास एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी
२१ 'निराला' सूर्यकान्त त्रिपाठी	प्रबन्ध-पद्म	श्री दुलारे लाल भार्गव, लखनऊ
२२ 'निराला' सूर्यकान्त त्रिपाठी	चाबुक	
२३ 'निराला' सूर्यकान्त त्रिपाठी	पंत और पल्लव	
२४ 'प्रसाद' जयशंकर	काव्य कला और अन्य निबंध	
२५ बच्चनसिंह	क्रान्तिकारी कवि निराला	काशी, प्रथम संस्करण, २००४
२६ मानव विश्वम्भरनाथ	निराला—काव्य-दिशाएं	
२७ रवीन्द्र सहाय वर्मा	हिन्दी-काव्य पर आंग्ल प्रभाव	पंकजा प्रकाशन, कानपुर
२८ महावीरप्रसाद द्विवेदी	सुकवि किंकर	
२९ रामधारीसिंह दिनकर	संस्कृति के चार अध्याय	राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली
३० रामचन्द्र शुक्ल	हिन्दी-साहित्य का इतिहास	नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी, नूतन संस्करण।
३१ रामविलास शर्मा	निराला	जन-प्रकाशन-गृह, बम्बई।
३२ रामरतन भटनागर	कवि निराला. एक अध्ययन	किताब महल, इलाहाबाद
३३ वाजपेयी नन्द दुलारे	आधुनिक साहित्य	

69. Codwell	Illusion & Reality: A History of the Sources of Poetry	People's Publishing House, Bombay, 1947
70. Cecil Day Lewis	Poetic Image	Jonathan Cape, London, 1947
71. Hurbert Spencer	The Origin and Function of Music	
72. Hippolyta Tenne	History of English Literature	
73. I.A. Richards	Principles of Literary Criticism	Routledge & Kegan Paul Ltd., London.
74. Progue	Romantic Agony	
75. Shakespeare	Hamlet	
76. T.S. Eliot	Selected Essays	Faber & Faber Ltd., London
77. W. H. Hudson	An Introduction to the Study of Literature	Geroge G. Harrap & Co. Ltd.

संस्कृत

७८. उद्भट	कवि रहस्य
७९. कालिदास	मेघदूत
८०.	यजुर्वेद

पत्र-पत्रिकाएँ

८१. काव्यालोचन विशेषांक—आलोचना का २५वां अंक

८२. नया साहित्य, निराला अंक

८३. साहित्य पत्रिका, कार्तिक २००७

८४. दी न्यू कॉस्मोलजी जनरल ऑफ फिलोसोफिकल स्टडीज, जुलाई, १९१९

ग्रन्थकार	ग्रन्थ	प्रकाशक
५१ रवीन्द्रनाथ ठाकुर	चयनिका	विश्वभारती ग्रन्थालय
५२ रवीन्द्रनाथ ठाकुर	सकलन	,, ,,
५३ रवीन्द्रनाथ ठाकुर	पुनश्च	,, ,,
५४ रवीन्द्रनाथ ठाकुर	साहित्य	,, ,,
५५ रवीन्द्रनाथ ठाकुर	निबध-सग्रह	,, ,,
५६ रवीन्द्रनाथ ठाकुर	जीवन-स्मृति	,, ,,
५७ विश्वपति चौधुरी	काव्ये रवीन्द्रनाथ	मित्र एण्ड घोष, कलकत्ता
५८ विवेकानन्द	वीरवाणी	विवेकानन्द सोसाइटी, कलकत्ता
५९ विमल काति समद्दार	रवीन्द्र काव्य कालिदासेर प्रभाव	गुरुदास चट्टोपाध्याय एण्ड सस, कलकत्ता
६० शातिरजन बन्द्योपाध्याय	आधुनिक भारतीय साहित्य	
६१ शातिदेव घोष	रवीन्द्र सगीत	
६२ सुधाकर चट्टोपाध्याय	आधुनिक हिन्दी साहित्य बागलार स्थान, प्रथम खण्ड	शरत् साहित्य, कलकत्ता
६३ सुकुमार सेन	बागला साहित्यर इतिहास, तृतीय खड (रवीन्द्रनाथ ठाकुर)	प्रथम सस्करण, १९५३, मडॅन बुक एजेन्सी, कलकत्ता
६४ सुकुमार सन	बागला साहित्यर इतिहास, तृतीय खण्ड (रवीन्द्रनाथ ठाकुर)	द्वितीय सस्करण, मडॅन बुक एजेन्सी सन् १९५२
६५ क्षितिमोहन सेन	बलाका-काव्य-परिक्रमा	

अंग्रेज़ी

66 A C Bradley	Oxford Lectures on Poetry	Macmillan & Co. London
67 Albert, D. Van (Editor)	Literary Criticism in America	The Liberal Art Press, New York
68 Arthur Compton Ricket	A History of English Literature	Thomas Nilson & Sons Ltd